॥ ओं: ॥

LIBRARY

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीता

❀ श्रीमगवद्गीता ❀

सचित्र.

भाषाटीका, दोहा और विचारदर्पण सहित.

जिसको

जोधपुर निवासी आनंदरामजी नाजिर ने

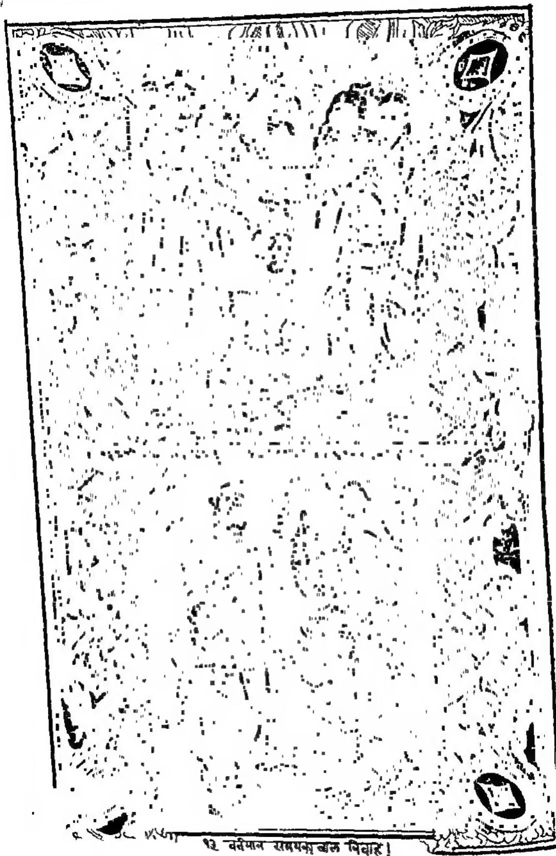
सरल अनुवाद दोहाबद्ध.

और

कलकत्ता निवासी पं० सत्याचरण शास्त्री तथा चूरू
निवासी पं० श्रीराम शर्मा ने मुमुक्षजनों के हितार्थ.
सनातनधर्मजीर्णोद्धारक, अज्ञानतिमिरनाशक और
भारतवर्षोन्नतिबोधक; 'विचारदर्पण' के दर्शन
सुन्दर सरल भाषा में गीता के प्रत्येक अध्याय
के अन्त में लिखकर सागर को गागरमें
भरने का प्रयत्न किया है।

बम्बई में

पं० श्रीधर शिवलालात्मज पं० किशनलालजीने अपने
ज्ञानसागर प्रेस स्थान माटुंगा घर नं० ३६८ मलपलेभा
टैकरोड में पं० जनकप्रसाद वाजपेयी के प्रबंध से.
छापकर प्रकाशित किया. प्रथमवार
कापी ५००० सं० १९७०



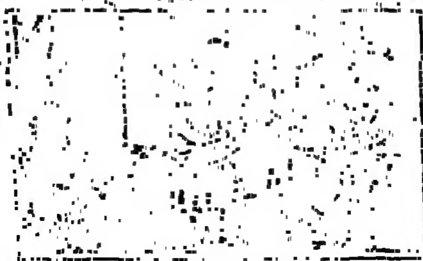
१२ वर्तमान समयका बाल विवाह !







[illegible] शबरीके हाथसे बेर खाते हैं

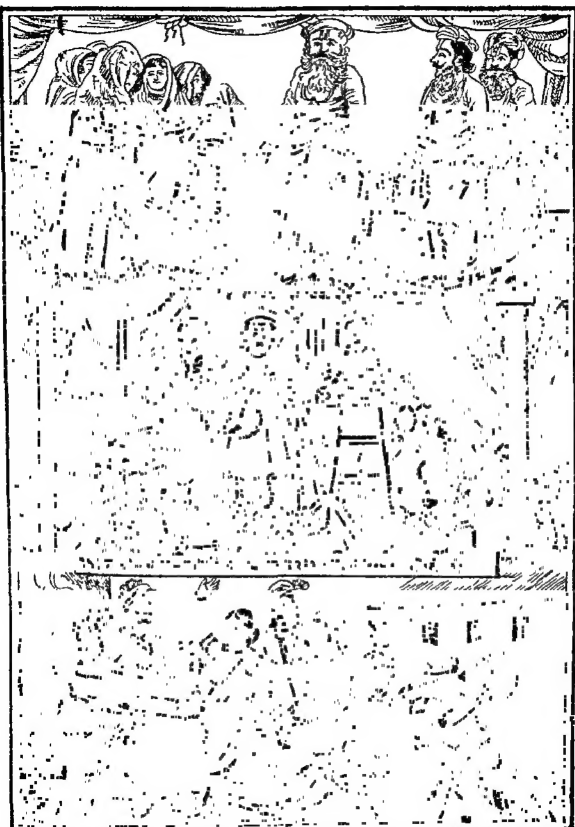


(६) दर्शनीय सम्पके अधिदैवी देवालयोंका दृश्य। [illegible]

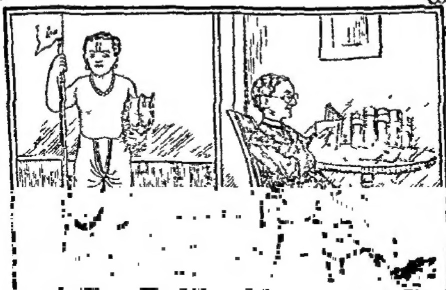
(५) प्राचीन कालका ब्राह्मण आश्रममें बैठा राजाको उपदेश देरहा है







(१०) वर्तमान समयके अधिकांश वानप्रस्थी तथा संन्यासी गृहस्थको पैसे केलिये डरारहे हैं



(११) प्राचीन कालका पुष्ट विद्यार्थी । वर्तमान समयका दुर्बलांग ब्रह्मचारी विद्यार्थी ।

श्रीमद्भगवद्गीता ।

VIDYA ... LIB

गीतामाहात्म्य भाषाटीका दोहा सहित

॥ धरोवाच ॥

भगवन्परमेशानभक्तिरव्यभिचारणी ॥
प्रारब्धंभुज्यमानस्यकथंभवतिहेप्रभो ॥ १

दो०–धरती पूछौविष्णुपै, सुनियेमाधवराव ॥
कर्मभोगजीवनको, कैसेभक्तिप्रभाव ॥

हे भगवन् ! हे परमपुरुषोत्तम ! इस संसारसागरमें अनन्त जीव अपने अपने कियेहुये कर्मोंका फल निरंतर भोगते हैं, ऐसे जीवोंको आपकी अनन्य भक्ति कैसे मिल सकती है, वह उपाय कृपापूर्वक मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

॥ विष्णुरुवाच ॥

प्रारब्धंभुज्यमानोहिगीताभ्यासरतः सदा
समुक्तःससुखीलोकेकर्मणानोपलिप्यते ॥

दो०–प्रारब्धीकर्मानको, भोगैजीवअनंत ॥
श्रीगीताकेपाठते, पावैभक्तिनिरंत ॥ २ ॥

यह सुन विष्णु भगवान बोले–हे धरणी ! प्रारब्ध कर्मोंको भोगते हुये जीव जो सदा गीताके अभ्यासमें तत्पर रहते हैं; वेही मोक्षरूपहैं वेही सुखी हैं और इस लोक में प्रारब्धकर्मभी उनका कुछ नहीं करसकते हैं ॥ २ ॥

महापापादिपापानिगीताध्यानंकरोतिचेत
कचित्स्पर्शनकुर्वंतिनलिनीदलमंभसा।३।

दोहा–महापातकी जो करै, गीताकोअभ्यास ॥
ताकोपातकनाछुवै, कमलपातजलबास ॥ ३ ॥

जो कोई पुरुष बडेसे बडा पाप करके भी प्रतिदिन गीताका ध्यान करता रहता है उसको वे पाप ऐसे स्पर्श नहीं कर सकते हैं जैसे कमलके पत्तेपर जल नहीं ठहर सकता है ॥ ३ ॥

गीतायाःपुस्तकंयत्रयत्रपाठःप्रवर्तते ॥
तत्रसर्वाणितीर्थानिप्रयागादीनितत्रवै।४।

दोहा–जाकेघरगीता बसै, पुस्तक पाठ करंत ॥
सर्वतीर्थवाठौरहैं, प्रयागआदि अनंत ॥ ४ ॥

जहाँ गीताका पुस्तक होता है अथवा जहाँ कहीं गीताका पाठ होता है वहीं प्रयागराजसे आदि लेकर सब तीर्थ निवास करते हैं॥४॥

सर्वेदेवाश्चऋषयोयोगिनःपन्नगाश्चये ॥
गोपालागोपिकावापिनारदोद्धवपार्षदाः५

दोहा–सर्वदेवऋषियोगिजन,पन्नगगोपिगवाल ॥
नारदउद्धवपारषद, बसौंतहाँ नँदलाल ॥ ५ ॥

जहां गीताका पाठ होताहै वहां संपूर्ण देवता ऋषि, मुनि, योगिजन पन्नग, गोपाल, गोपी, नारद, उद्धव, आदि भगवान्के पार्षद निवास करते हैं ॥ ५ ॥

सहायोजायते शीघ्रंयत्रगीताप्रवर्तते ॥
यत्रगीताविचारश्चपठनंपाठनंश्रुतम् ॥
तत्राहंनिश्चितंपृथ्विनिवसामिसदैवहि । ६ ।

दोहा-सहायकरौंसबपारषद, जहँगीतासुखवास ॥
जोबांचैसीखैसुनै, जिनकेरक्षकदास ॥ ६ ॥

जहां गीताका पठन पाठन होता है वहां किसी प्रकारकी विपत्ति पडनेपर भगवान् तत्काल सहायता करते हैं, जहाँ गीताका विचार होता है पठन पाठन होता है, श्रवण होता है, वहाँ हे पृथ्वी ! मैं सदाही निश्चय निवास करताहूं ॥ ६ ॥

गीताश्रयेऽहंतिष्ठामिगीतामेचोत्तमंगृहम्
गीताज्ञानमुपाश्रित्यत्रींल्लोकान्पालयाम्यहम् ।७

दोहा-मैंगीताके आसरे, सुखबासीसतिपाल ॥
श्रीगीताकेइष्टसों, त्रैलोकीप्रतिपाल ॥ ७ ॥

हे पृथ्वी ! मैं श्रीगीताजीके आश्रयपर रहताहूं गीताही मेरा परमोत्तम घर है और मैं गीताहीके ज्ञानका आश्रय लेकर त्रिलोकीका भरण पोषण करता हूँ ॥ ७ ॥

गीतामेपरमाविद्याब्रह्मरूपानसंशयः ॥
अर्धमात्राक्षरानित्यास्वानिर्वाच्यपदात्मिका ८

दोहा-मेरीविद्यापरम है, गीताब्रह्मस्वरूप ॥
अक्षरमात्रानितपढैं,पडैनभवकेकूप ॥ ८ ॥

यह गीता मेरी सबसे उत्तम विद्या है, यह ब्रह्मरूपा है इसमें कोई संशय नहीं है, जो कोई इसका पद; पदार्थ मांत्रा वा अक्षरभी नित्य पढते हैं वे अनिर्वचनीय पदको प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

चिदानंदेनकृष्णेनप्रोक्तास्वमुखतोऽर्जुनम्
वेदत्रयीपरानंदातत्वार्थज्ञानसंयुता ॥९॥

दोहा-चिदानंदघन कृष्णके, मुखतेअर्जुनधार ॥
वेदत्रयीआनंदमय, तत्वज्ञानकोसार ॥ ९ ॥

यह गीता चिदानन्द स्वरूप,आनन्दघन श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अपने मुखसे अर्जुनको सुनाई है इससे यह वेदत्रयीरूप कर्मकांडमय परमोत्कृष्ट, आनन्ददात्री और तत्वज्ञानके देनेवाली है ॥ ९ ॥

योऽष्टादश जपेन्नित्यंनरोनिश्चलमानसः ॥
ज्ञानसिद्धिंसलभते ततोयातिपरंपदम् १०

दोहा-जो अष्टादश अध्यायको, नित्यकरैपढजाप॥
ज्ञानसिद्धमोक्षहि मिलै, छूटजातसबपाप ॥ १० ॥

जो मनुष्य चित्तको स्थिरकर अठारह अध्यायका पाठ करता है उसको ज्ञानकी सिद्धि मिल जाती है और अन्तमें परमपदको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

पाठेऽसमर्थःसंपूर्णेतदर्द्धंपाठमाचरेत् ॥
तदागोदानजंपुण्यंलभतेनात्रसंशयः ११॥

दोहा-जो अशक्तसबपाठमें, आधोकरैनिदान ॥
गऊदानके पुण्यसम, पावैपदनिर्वान ॥ ११ ॥

जो कोई पूरा पाठ करनेमें असमर्थ होनेके कारण आधाही पाठ करता है उसे गोदानका फल मिलता है,इसमें कोई संदेह नहीं है॥११

त्रिभागंपठमानस्तुगंगास्नानफलंलभेत्॥
षडंशंजपमानस्तुसोमयागफलंलभेत् १२

दोहा–तीजेहिस्सेपाठते, स्नानगंगसमजान॥
छठेभागकेपाठते, सोमयज्ञपरमान॥ १२॥

जो कोई तृतीयांश अर्थात् छः अध्यायकाही पाठ कर लेता है उसे गंगास्नानका फल मिलता है और जो छठे भाग अर्थात् तीन अध्यायकाही पाठ कर लेता है उसे सोमयज्ञका फल मिलता है॥ १२॥

एकाध्यायंतुयोनित्यंपठतेभक्तिसंयुतः॥
रुद्रलोकमवाप्नोतिगणोभूत्वावसेच्चिरम्॥१३॥

दोहा–एकाध्यायजो पढतहैं, नित्यभक्तिसंयुक्त॥
गणस्वरूपह्वैकैवसै, रुद्रलोकमेंमुक्त॥ १३॥

जो भक्तिपूर्वक एकही अध्यायका नित्य पाठ करलेताहै वह रुद्रलोकमें जाकर महादेवजीका गण बन वहाँ बहुत दिनतक निवास करताहै१३

अध्यायंश्लोकपादंवानित्यं यः पठतेनरः॥
सयाति नरतां यावन्मन्वंतरंवसुंधरे॥१४॥

दोहा–एकश्लोकअध्यायपद, नित्यपढतनरकोय॥
एकमनूके राजतक, नरतनधारीहोय॥ १४॥

हे वसुन्धरे! जो कोई एक अध्याय, एक श्लोक वा एक पादका नित्य पाठ करता है वह एक मन्वन्तरतक मनुष्य देह पाताहै॥१४॥

गीतायाःश्लोकदशकंसप्तपंचचतुष्टयम् ॥
द्वौत्रीनेकंतदर्धंवाश्लोकानांयःपठेन्नरः १५

दोहा-या गीताकेश्लोकदश,सातपांचजोचार ॥
तीनदोनएकहुअरध, जोनितपढतसुधार ॥१५॥

जो कोई गीताके दस, वा सात, वा पांच, वा चार वा दो, वा तीन वा एक, वा आधा श्लोक प्रतिदिन पाठ करता है ॥ १५ ॥

चंद्रलोकमवाप्नोतिवर्षाणामयुतंध्रुवम् ॥
गीतापाठसमायुक्तोमृतोमानुषतांव्रजेत्॥१६॥

दोहा-चंद्रलोकमेंवसत है, संमतदशहुहजार ॥
गीतापठनसमेतव्है, पुनिमानुषअवतार ॥१६॥

वह मनुष्य दशसहस्र वर्षतक चन्द्रलोकमें निवास करता है और जो मनुष्य गीताका पाठ करते करते देह त्याग देता है वह मरकर फिर मनुष्य देह पाता है ॥ १६ ॥

गीताभ्यासंपुनःकृत्वालभतेमुक्तिमुत्तमाम्॥
गीतेत्युच्चारसंयुक्तोम्रियमाणोगतिंलभेत्॥१७॥

दोहा-गीताके अभ्यासते, उत्तममुक्तिलहंत ॥
गीताके उच्चारसंग, मरेसुमुक्तकहंत ॥ १७ ॥

और फिर गीताका अभ्यास करनेसे मोक्ष पालेता है.और जो गीता गीता करतेही प्राण त्याग देते हैं वे उत्तम गति पाते हैं ॥ १७ ॥

गीतार्थश्रवणासक्तोमहापापयुतोऽपिवा ॥
वैकुंठंसमवाप्नोतिविष्णुनासहमोदते।१८।

दोहा–जो गीताकेअर्थबिन, केवल करैंजुपाठ ॥
विष्णुसहितवैकुंठमें, टूटैकर्मकपाट ॥ १८ ॥

यदि कोई मनुष्य महापापीभी हो और वह गीताके अर्थके सुननेमें आसक्त होता है वह वैकुंठधाम पाता है और विष्णु भगवान्के समीप रहकर आनन्दमें रहता है ॥१८॥

गीतार्थंध्यायतेनित्यंकृत्वाकर्माणिभूरिशः ॥
जीवन्मुक्तःसविज्ञेयोदेहांतेपरमंपदम्१९॥

दोहा–बडेबडेकर्मजुकरैं, हियगीताकोध्यान ॥
जीवन्मुक्तसुजानिये, मरेपरमपदमान ॥ १९॥

जो अनेक प्रकारके कर्मोंको करता हुआ भी गीताके अर्थका नित्य प्रति ध्यान करताहै वह जीवन्मुक्त होता है और मरनेपर परमपद पाता है ॥ १९ ॥

गीतामाश्रित्यबहवोभूभुजाजनकादयः ॥
निर्धूतकल्मषायातागीतागीताःपरंपदम्।२०।

दोहा–गीताआश्रितहोयके, जनकादिकबहुभूप ॥
गयेपरमपदपापतज, भयेपारषदरूप ॥ २० ॥

गीताका आश्रय लेकर बहुतसे जनकादि राजा पापों से छूट गये हैं और गीता गीता करते हुए मोक्षपद पागये हैं ॥ २० ॥

गीतायाःपठनंकृत्वामाहात्म्यंनैवयःपठेत्।
वृथापाठोभवेत्तस्यश्रमएवह्युदाहृतः।२१।

दोहा–जोमहात्मकेपाठबिन, करैसुगीतापाठ॥
प्रेमपंथपावैनहीं, चालेऊजडवाट॥२१॥

जो गीताकों पाठ करके माहात्म्यका पाठ नहीं करताहै उसका गीतापाठ वृथाही है, केवल परिश्रम मात्र है॥२१॥

एतन्माहात्म्यसंयुक्तंगीताभ्यासंकरोतियः
सतत्फलमवाप्नोतिदुर्लभांगतिमाप्नुयात।२२

दोहा–यहमाहात्म्यसुंयुक्तकर, करगीताकोपाठ॥
दुर्लभफलजोहरिकह्यो, मिलैरतीनाहिंघाट२२

जो माहात्म्य सहित गीताका पाठ करता है वही गीताके पाठका फल पाता है और उसको दुर्लभ गति मिलती है॥२२॥

॥ सूत उवाच ॥

महात्म्यमेतद्गीतायाम्मयाप्रोक्तंसनातनम्।
गीतांतेचपठेद्यस्तुयदुक्तंतत्फलंलभेत् २३

दोहा–सूतपुराणिककहतहैं, शौनकसौंसमुझाय॥
आदिअंतकरपाठके, गीतामाहात्म्यध्याय २३

सूतजी कहते हैं–हे शौनकादिऋषियो! जो गीताका माहात्म्य मैंने तुमको सुनाया है यह सनातन है जो कोई गीताका पाठ करके इसका पाठ करता है वह गीताके पाठका फल पाता है॥२३॥

इति श्रीवाराहपुराणे श्रीगीतामाहात्म्ये श्रीधरकृतब्रजभाषान्तरं समाप्तम्॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अस्यश्रीभगवद्गीतामालामंत्रस्य ॥ श्रीभगवान्वेदव्यासऋषिः॥ अनुष्टुप्छंदः॥ श्रीकृष्णःपरमात्मादेवता ॥अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसइतिबीजम् ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रजेतिशक्तिः ॥ अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामि माशुचइतिकीलकम् ॥ नैनंछिंदंतिशस्त्राणिनैनंदहतिपावक इत्यंगुष्ठाभ्यांनमः॥ नचैनंक्लेदयंत्यापोनशोषयतिमारुतइतितर्जनीभ्यांनमः॥अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योशोष्यएवचेतिमध्यमाभ्यांनमः॥नित्यःसर्वगतः स्थाणुरचलोयंसनातन इत्यनामिकाभ्यांनमः॥ पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोथसहस्रश इतिकनिष्ठिकाभ्यांनमः॥नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिचेतिकरतलकरपृष्ठाभ्यांनमः॥अथ हृदयादिन्यासः॥नैनंछिंदंतिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकइतिहृदयायनमः॥नचैनंक्लेदयंत्यापोनशोषयतिमारुत इतिशिरसेस्वाहा॥ अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योशोष्यएवचेतिशिखायैवषट्॥ नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोयंसनातनइतिकवचायहुम्॥पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोथसहस्रश इतिनेत्रत्रयायवौषट्॥नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिचेतिअस्त्रायफट्॥ अथ ध्यानम्॥ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम् ॥ अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीमंबत्वामनुसंधामि भगवद्गीते भवेद्वेषिणीम् ॥ १ ॥ नमोस्तु ते व्यासविशालबुद्धे फुल्लारविंदायतपत्रनेत्र ॥ येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥२ ॥ प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ॥ ज्ञानमुद्राय कृष्णायगीतामृतदुहे नमः ॥ ३ ॥ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः ॥ पार्थोवत्सःसुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ ४ ॥ वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्॥देवकीपरमानन्दं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ॥५॥ भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गांधारनीलोत्पला शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला ॥ अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी सोत्तीर्णा खलु पांडवै रणनदी कैवर्तकः केशवः ॥ ६ ॥

पाराशर्यवचःसरोजममलं गीतार्थगंधोत्कटं नानाख्यानककेसरं हरिकथा संबोधनाबोधितम् ॥ लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा भूयाद्भारतपंकजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥ ७ ॥ मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ॥ यत्कृपा तमहं वंदे परमानंदमाधवम् ॥ ८ ॥ यं ब्रह्मावरुणेंद्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः ॥ ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुःसुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ ९ ॥ इतिध्यानम् ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीताभाषाटीका.

दोहासहिता आरभ्यते.

दोहा–हरिगौरीशगणेशगुरु, प्रनमौं शीस नमाय
गीताभावारथकरूं, दोहासहितबनाय ॥ १ ॥
सुथिरराजविक्रमनगर, नृपमणिनृपतिअनूप ॥
थिरथाप्योपरधानयह, राजसभाकोरूप ॥ २ ॥
नाजिरआनंदरामके, यहउपज्योचितचाउ ॥
गीताकीटीकाकरौं, सुनिश्रीधरकेभाउ ॥ ३ ॥
गीताज्ञानगंभीरलखि, रचीजुआनंदराम ॥
कृष्णचरणचितलगिरह्यो, मनमैंअतिअभिराम ४
आनंदमनउत्सवभयो, हरिगीताअवरेप ॥
दोहारथभाषाकरी, बानीमहाविशेष ॥ ५ ॥
भक्तिवश्यश्रीकृष्णजू, निगमकहैनिरधार ॥
भक्तिकरोबहुभांतिसों, यहैवेदकौसार ॥ ६ ॥

॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥
मामकाःपांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय।१।

दोहा–धर्मक्षेत्रकुरुक्षेत्रमें, मिलेयुद्धकेसाज ॥
संजयमोसुतपांडवनि, कीन्हेकैसेकाज ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र संजयसे पूछते हैं कि–हे संजय ! धर्मके क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें युद्ध करनेकी इच्छासे इकट्ठे हुए दुर्योधनादिक मेरे पुत्र और पांडुके पुत्र क्या करतेभए ? ॥ १ ॥

॥ संजय उवाच ॥

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ॥
आचार्य मुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् २

दोहा–पांडवसेनाव्यूहलख, दुर्योधनढिगआय ॥
जिन आचारजद्रोणसौं,बोल्योऐसेभाय ॥ २ ॥

यह सुन संजयने कहा हे धृतराष्ट्र! राजा दुर्योधन और पांडवोंकी व्यूहरचना देखकर अपने आचार्य द्रोणाचार्यके पास जाकर बोले॥२॥

पश्यैतांपांडुपुत्राणामाचार्यमहतींचमूम् ॥
व्यूढांद्रुपदपुत्रेणतवशिष्येणधीमता ॥३॥

दोहा–पांडवसेनाअतिबडी. आचारजतूदेखि ॥
धृष्टद्युम्नतवशिष्यने, व्यूहरच्योजुविशेषि ॥३॥

हे आचार्य ! आपके बुद्धिमान् शिष्य राजा द्रुपदके पुत्रने जिसकी व्यूहरचना की है ऐसी पांडवोंकी बडी सेनाको तो देखिये ॥ ३॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

दोहा–शूरधनुषधारीबडे, अर्जुनभीमसमान ॥
द्रुपदमहारथऔरपुनि,हैंविराट्युयुधान ॥४॥

हे आचार्य! इस सेनामें भीम और अर्जुनके समान बडे२ धनुर्धारी शूर वीर इकट्ठे हुए हैं जिनमें युयुधान,विराट और महारथी द्रुपदहैं॥४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानःकाशीराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः॥५॥

दोहा–धृष्टकेतुअरुकाशिपति, चेकितानबलवंत ॥
कुंतिभोजअरुशैब्यपुनि, पुरुजितशत्रुनिकंत ५

धृष्टकेतु, चेकितान और महाबली काशीका राजा है, तथा पुरुजित्, कुंतिभोज और मनुष्योंमें श्रेष्ठ शैब्यभी है ॥ ५ ॥

युधामन्युश्चविक्रांतउत्तमौजाश्चवीर्यवान्
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्वएवमहारथाः॥६॥

दोहा–युधामन्युअतिविक्रमी, उत्तमौजरणधीर ॥
द्रौपदिसुत अभिमन्युए, महारथीबलवीर ॥६॥

पराक्रमी युधामन्यु, बलवान् उत्तमौज, सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु और प्रतिविन्ध्यादिक द्रौपदीके.पांच पुत्र ये सबही महारथी हैं ॥६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोधद्विजोत्तम॥
नायकाममसैन्यस्यसंज्ञार्थंतान्ब्रवीमिते७॥

दोहा–मोसेनामेंजेबडे, तेसबसुनिद्विजराज ॥
नोकिजानतुमैंतिन्हैं, खडेयुद्धकेकाज ॥ ७ ॥

हे द्विजोत्तम ! अब हमारी सेनामें जो बडे बडे शूर बीर सेनापति हैं उनके नाम मैं आपके सन्मुख कहताहूं उन्हें सुनिये ॥ ७ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः
अश्वस्थामाविकर्णश्चसौमदत्तिस्तथैवच८।

दोहा–तुमअरुभीषमकर्णकृप, जिनजीतेसंग्राम॥
भूरिश्रवाविकर्णअरु, अश्वत्थामानाम ॥८॥

हमारी सेनाके मुखियाओंमें एक आपहो, भीष्मजी हैं, कर्ण हैं, कृपाचार्य हैं, अश्वत्थामाहैं, विकर्ण हैं और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा है, ये सबही युद्धमें जीतनेवाले हैं ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवःशूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः॥
नानाशस्त्रप्रहरणाःसर्वे युद्धविशारदाः॥९॥

दोहा–औरौबहुतेशूरहैं. मो हित तजैंजुप्रान ॥
भांतिभांतिआयुधलिये, सबैयुद्धबलवान ॥९॥

औरभी बहुतसे शूर बीर हैं जो मेरेलिये अपने प्राणोंका मोह छोडकर आये हैं, ये अनेकप्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हैं और सबही युद्धमें बडे चतुर हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकंबलं भीष्माभिरक्षितम्
पर्याप्तं त्विदमेतेषांबलं भीमाभिरक्षितम् १०॥

दोहा-मोसेनाअसमर्थसी, भीषम राखत ताहि॥
समरथसेनाजाहिकी,ताकोभीमसहाहि॥१०॥

हमारी सेनाके रक्षकभीष्मजी हैं इससे हमारी सेना सब तरहसे युद्ध करनेमें समर्थ है (कारण यह है कि-भीष्मजी,युद्धमें विशारद,योग्य और परिणामदर्शी हैं) तथा पांडवोंकी सेनाका रक्षक भीमसेनहै इससे वह समर्थ नहीं है (क्योंकि भीमसेन निरा गवाँरहै और हमारी अपेक्षा सेनाभी थोडी है) दूसरा अर्थ यह है कि भीष्म वृद्ध और उभयपक्षपाती हैं इससे हमारी सेना (असमर्थ दीखपडती है) और पांडवोंका सेनापति भीमसेन है इससे वह सेना समर्थ दिखाईदेती है ॥ १० ॥

अयनेषुचसर्वेषुयथाभागमवस्थिताः॥
भीष्ममेवाभिरक्षंतुभवंतः सर्वएवहि ११॥

दोहा-आसपासमोव्यूहके, तुमसबठाढेहोइ ॥
भीषमकीरक्षाकरो, धरके मनमें मोइ॥११॥

इसलिये आप सब लोगभी युद्धके सब मोर्चोंपर अपनी अपनी सेना लेकर भीष्मजीकी रक्षा करतेरहो ॥ (ऐसा करनेमें दो हेतुहैं कि-कहीं भीष्मजी शत्रुसे न जा मिलें अथवा कहीं ऐसा न हो जो कोई शत्रुदल पीछेसे आकर इनको धर दबावै)॥ ११ ॥

तस्यसंजनयन्हर्षंकुरुवृद्धःपितामहः॥
सिंहनादंविनद्योच्चैःशंखं दध्मौप्रतापवान् १२

दोहा-दुर्योधनकेहर्षको, भीषमजूचितलाइ ॥
सिंहनादऊंचोकियो, दुःसहशंखबजाइ ॥१२॥

इतनेहीमें दुर्योधनके उत्साहको बढाते हुए प्रतापी कौरवोंमें वृद्ध भीष्मपितामहने सिंहनाद करके उच्चस्वरसे शंख बजाया ॥ १२ ॥

ततःशंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यंतसशब्दस्तुमुलोऽभवत॥१३॥

दोहा–तबहिशंखभेरीपणव, आनकगोमुखभेरि ॥
ताहीछिनबाजतभए, शब्दरह्यो भरपूरि ॥१३

तब तौ शंख भेरी, पणव, आनक, गोमुख आदि अनेक प्रकारके समरोत्साही बाजे एकसाथ चारोंओर बजनेलगे, जिससे बडा भारी शब्द हुआ ॥ १३ ॥

ततःश्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥
माधवःपांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः१४।

दोहा–श्वेतवर्णघोडालये, दीरघरथहिबनाय ॥
हरिअर्जुनतापरचढे, हरषेशंखबजाय ॥ १४॥

तदनन्तर श्वेत घोडोंके जुते हुए बडे भारी ऊंचे रथपर बैठकर कृष्ण और अर्जुनने अपने अपने दिव्य शंख बजाये ॥ १४ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः॥
पौंड्रं दध्मौ महाशंखंभीमकर्मावृकोदरः १५॥

दोहा–देवदत्तअर्जुनलियो, पांचजन्ययदुराय ॥
भीमभयानकभेषसों, पौंड्रकशंखबजाय ॥१५

श्रीकृष्णके शंखका नाम पांचजन्य था और अर्जुनके शंखका नाम देवदत्त था इसके पीछे वृकोदर (बहुभोजी) भीमसेनने अपना पौंड्रनामक बडा शंख बजाया ॥ १५ ॥

अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥
नकुलः सहदेवश्चसुघोषमणिपुष्पकौ॥१६

दोहा–नृपतियुधिष्ठिरनेकियो, अनंतविजयकेघोष॥
पुनिसहदेवरुनकुलने, मणिपुष्पकजसुघोष ॥१६॥

फिर कुंतीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपना अनन्तविजय नामक शंख बजाया और नकुल तथा सहदेव अपने सुघोष और मणिपुष्पका-मक शंखको बजाते भये ॥ १६ ॥

काश्यश्चपरमेष्वासःशिखंडी च महारथः।
धृष्टद्युम्नोविराटश्चसात्यकिश्चापराजितः॥१७॥

दोहा–महाधनुर्धर काशिपति, रथीशिखंडीजानि॥
धृष्टद्युम्नविराटअति, बलीसात्यकिहिमानि॥१७॥

फिर धनुर्धारी काशीराज, महारथी शिखंडी धृष्टद्युम्न विराट और अजेय सात्यकी यादव ॥ १७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशःपृथिवीपते ॥
सौभद्रश्चमहाबाहुःशंखान्दध्मुःपृथक्पृथक्१८

दोहा–द्रुपदद्रौपदीसुतसबै, और सुभद्रापूत ॥
अपनेअपनेशंखले, धुनिकीनीतासूत ॥ १८ ॥

तथा हे राजन्! राजाद्रुपद, द्रौपदीके पांचों पुत्र, तथा सुभद्राके पुत्र महाबाहु अभिमन्युने अपने अपने शंख बजाये ॥ १८ ॥

सघोषोधार्तराष्ट्राणांहृदयानिव्यदारयत् ॥
नभश्चपृथिवींचैवतुमुलोव्यनुनादयन्॥१९

दोहा—फटयोहृदयकौरवनको, शब्दसुन्योताभार॥
पुहमीअरुआकाशमें, पूर रह्यो गुंजार ॥१९॥

वह तुमुल शब्द आकाश और पृथ्वीको गुंजाता हुआ धृतराष्ट्र के पुत्रोंके हृदयको विदीर्ण करनेलगा ॥ १९ ॥ -

अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वाधार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः
प्रवृत्तेशस्त्रसंपातेधनुरुद्यम्यपांडवः ॥२०॥

दोहा—देखेसुतधृतराष्ट्रके, अर्जुनधनुषसंभार॥
कपिवर ताकेध्वजलसे शस्त्रानि परतप्रहार॥२०

जब सब कौरव युद्धके लिये सावधान होकर यथास्थान खडे होगये और शस्त्रोंके चलनेकी तयारी होरही थी उसी समय कपिध्वज अर्जुनने धनुष उठाकर श्रीकृष्णसे कहा ॥ २० ॥

हृषीकेशंतदावाक्यमिदमाहमहीपते ॥
सेनयोरुभयोर्मध्येरथंस्थापयमेऽच्युत२१

दोहा--अर्जुनकहीजुकृष्णसों, मेरेचितयहचिंत॥
दुहुसेनाकेमांझरथ, ठाढोकरिमोमित॥२१॥

हे धृतराष्ट्र ! तब अर्जुनने श्रीकृष्णसे यह कहा कि हे अच्युत ! दोनों सेनाओंके बीचमें मेरा रथलेचलो ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहंयोद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मयासहयोद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे २२

दोहा--जबलगिदेखोंहौंनहीं, जुरेयुद्धकेदाय ॥
कौनकौनसोंहौंलरौं, यारनमेंसमपाय ॥ २२ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मैं यह देखना चाहता हूं कि, युद्ध करनेकेलिये कौन कौन आये हैं और इस रणभूमिमें मुझसे कौन कौन लडेंगे ॥२२॥

योत्स्यमानानवेक्ष्येऽहं य एतेऽत्रसमागताः
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः।२३

दोहा--युद्धकरणधायेजिते, आयेहैं सजसाज ॥
दुरबुद्धीहितकौरवनि, भलोकरनकेकाज॥२३॥

धृतराष्ट्रके दुर्बुद्धि पुत्रका हित करनेके लिये यहां कौन कौन एकत्र हुये हैं मैं यहभी देखना चाहता हूं ॥ २३ ॥

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्येस्थापयित्वारथोत्तमम् २४

दोहा--ऐसेहैश्रीकृष्णजू, सुनिअर्जुनकी बात ॥
दोउसेनामांझरथ, लैराख्योताघात ॥ २४ ॥

हे धृतराष्ट्र ! जब अर्जुन यह कह चुका तब हृषीकेश श्रीकृष्ण रथको दोनों सेनाओंके बीचमें लेगये ॥ २४ ॥

॥ संजय उवाच ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतःसर्वेषांचमहीक्षिताम्॥
उवाचपार्थपश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति॥२५॥

दोहा-भीपमगुरुपुनिअमितनृप, तिनसनमुखसुविशेषि
कहतकृष्ण अरजुनअबै, मिलेसबैकुरुदेशि ॥२५॥

और भीष्म, द्रोणाचार्य तथा सब राजाओंके साक्षने यह कहने लगे कि हे पार्थ ! इन एकत्रहुए कौरवोंको देखले ॥ २५ ॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थःपितॄनथपितामहान्
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा

दोहा-अर्जुनतेदेखेसबै, पितापितामहभाय
गुरुमामाभैयासखा, सुत नाती समुदाय॥२६॥

तब अर्जुन क्या देखते हैं कि चारों ओर पिता, पितामह, आचार्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र और मित्रादि खडेहुएहैं ॥ २६ ॥

श्वसुरान्सुहृदश्चैवसेनयोरुभयोरपि ॥
तान्समीक्ष्यसकौन्तेयःसर्वान्बंधूनवस्थितान्
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्२७

दोहा-ससुरसुहृदबंधुसंकुल, दोऊसेनामांह ॥
तिन्हेंदेखिकरुणाभई, तबबोले नरनाह॥२७॥

उनमें श्वशुरभी हैं, इष्टमित्रभी हैं ऐसे दोनों सेनाओंके भाईबंधुओंको खडे देखकर अर्जुनके जीमें करुणा उत्पन्न हो आई और विलखते हुये यह कहने लगे॥ २७ (अर्जुन उवाच)

दृष्ट्वेमंस्वजनंकृष्णयुयुत्सुंसमुपस्थितम् ॥
सीदंतिममगात्राणिमुखंचपरिशुष्यति २८

दोहा-देखेमैंसबबंधु ये, कृष्णयुद्धकेदाय ॥
मोमुखसूखतजातहै, अंगअंगशिथिलाय ॥२८

कि हे श्रीकृष्ण! युद्ध करनेकेलिये आये हुए इस अपनेही कुटुम्बके वर्ग और आत्मीयजनोंको देखकर मेरे अंग प्रत्यंग शिथिल हुएजाते हैं और मुख सूखा जाता है॥ २८ ॥

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥
गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैवपरिदह्यते॥२९॥

दोहा-रोमहर्षतनहोतहै, औरकंपहीभाय ॥
मो हाथनतेंधनुगिरै,जरतत्वचाअधिकाय॥२९

मेरा शरीर थरथराता है, रोमांच खडेहुएजाते हैं, हाथसे गांडीव धनुष गिरापडताहै और देहकी त्वचाभी जलीजाती है ॥ २९ ॥

नचशक्नोम्यवस्थातुंभ्रमतीवचमेमनः ॥
निमित्तानिचपश्यामिविपरीतानिकेशव ३०

दोहा-ठाढो ह्वैहौं नहिं सकतु,भ्रमत जुहै मनभीत ॥
केशव शकुन निदेखियत,कैसीहै इहरीत ॥ ३० ॥

हे केशव ! अब मुझमें खडे रहनेकी सामर्थ्य नहीं है, मेरा मन चक्कर खाता है, और शकुनभी बुरे दिखाई देते हैं ॥ ३० ॥

नचश्रेयोऽनुपश्यामिहत्वास्वजनमाहवे

दोहा-स्वजनहनौं संग्राममें, धरिकरवानकमान ॥
अपनोभलौनदेखियै, हैं विपरीतसुजान ॥३१॥

हे कृष्ण ! समरमें अपने आत्मीयजनोंको मारकर मुझे कुछ भलाई नहीं सूझती है ॥ ३१ ॥

नकांक्षे विजयं कृष्ण नचराज्यं सुखानिच
किंनोराज्येनगोविंद किं भोगैर्जीवितेनवा

दोहा-विजयनचाहौं कृष्णजू ,नहिंचाहौंसुखराज॥
राज्यभोगगोविंदजू ,अरुजीवनकेहिकाज ३२

हे कृष्ण ! मुझे विजयकी इच्छा नहीं है. न राज्य और न सुख चाहता हूं. हे गोविंद! सब कुटुम्बका सत्यानाश करके राज मिलजाय तो क्या? भोग भोगनेसे क्या है ? और जीनेसे क्या लाभ होता है ? ॥

येषामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगाःसुखानिच
तइमेऽवस्थितायुद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच

दोहा-राजभोगसुखकृष्णजू, करियतइनकेकाज ॥
लरतजीवनइछांडिकै, हमनहिंचाहबराज॥३३

हे कृष्ण ! जिनके लिये हम राज्य भोग और सुखोंको चाहतेथे वे सब प्राण और धनोंका लोभ छोडकर युद्धमें सन्मुख खड़ेहुए हैं ॥

आचार्याःपितरः पुत्रास्तथैवचपितामहाः
मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसंबंधिनस्तथा ३४

दोहा–गुरुमातुलसुतससुरअरु,सारेहूअवरेषि ॥
संबंधीनातीनिरखि, पितापितामहपेषि ॥३४

इनमें आचार्य हैं, पिता हैं, पुत्र हैं, पितामह हैं, मामा हैं, श्वशुर हैं नाती हैं, साले हैं, तथा और २ सम्बंधी हैं ॥ ३४ ॥

एतान्नहंतुमिच्छामि घ्नतोऽपिमधुसूदन ॥
अपित्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिंनुमहीकृते ॥३५॥

दोहा–एमारैंमोकौंयदपि, हौंनहिंहनौंअकाज ॥
वंशकटेकिहिकामको, त्रैलोकीकोराज ॥ ३५ ॥

हे मधुसूदन ! जो ये मुझको मारेंगे, तोभी मैं इनको नहीं मारूंगा, चाहे त्रिलोकीका राज्यभी क्यों न मिले, पृथ्वीका राज्य तौ किसी गिनतीहीमें नहीं है ॥ ३५ ॥

निहत्यधार्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ३६

दोहा–पापहोयइनकेहनें, यदपिलियेहथियार ॥
तातेंयेहानियेनहीं,बंधुसहितनिरधार ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन ! इन कौरवोंको मारनेसे हमें क्या सुख मिलेगा; इन आततायियोंके मारनेसे तो केवल पापही लगेगा ॥ ३६ ॥

तस्मान्नार्हावयंहंतुंधार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान्
स्वजनंहिकथंहत्वासुखिनःस्याममाधव॥३७॥

दोहा–निजबांधवधृतराष्ट्रसुत,क्योंहनियेयदुराय॥
कृष्णसुजनको मारिकें, सुखलहियतकाभाय॥

क्योंकि इनके मारनेसे केवल पाप लगैगा, इससे हम इनको नहीं मारेंगे. ये धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे बांधव हैं. (आपही बताइये) इन आत्मीयजनोंको मारकर हम किस प्रकारसे सुखी होसकते हैं॥३७॥

यद्यप्येते न पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥
कुलक्षयकृतंदोषंमित्रद्रोहेचपातकम्।३८।

दोहा–एज्ञुलुभानेंलोभसों, नहिंदेखत जो मोह ॥
कुलक्षयकीन्हेदोषहै. औरमित्रकोद्रोह ॥३८॥

लोभने इनके चित्तको भ्रष्ट कर दिया है इससे यद्यपि ये वंशनाशके दोष और मित्रद्रोहके पातकको नहीं देखते हैं ॥ ३८ ॥

कथंनज्ञेयमस्माभिःपापादस्मान्निवर्तितुम्
कुलक्षयकृतंदोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥३९॥

दोहा–जानिबूझअघकीजिये, होतपापकोपोष ॥
क्योंनटरैंहमदेखिकै, कृष्णकुलक्षयदोष ३९ ॥

तौ क्या हमकोभी यह उचित है कि–हम इस पापसे दूर होनेका यत्न न करैं. हे जनार्दन ! हम तौ कुलक्षय दोषको जानते हैं जानकर न बचना महापाप है ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माःसनातनाः ॥
धर्मेनष्टेकुलंकृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ४०॥

दोहा–कुलक्षयकीन्हेकुलधरम, जातजुमवैनसाय
धर्मनसैंकुलकोजवै, होतअधर्मसुभाय ॥४०॥

हे कृष्ण! वंशके नष्ट होनेपर सनातन कुलधर्मोंका नाश होजाता है और धर्म नष्ट होनेपर कुलका कुल अधर्मसे प्रतिष्ठाहीन होजाताहै ४०

अधर्माभिभवात्कृष्णप्रदुष्यंतिकुलस्त्रियः।
स्त्रीषुदुष्टासुवार्ष्णेयजायते वर्णसंकरः ४१

दोहा–कृष्णअधर्महिकेवढे, दुष्टहोहिंकुलनारि ॥
होंहिवरणसंकरजवै, त्रियादोषनिरधारि ४१

हे कृष्ण ! जब अधर्म कुलको ग्रसलेता है तब कुलकी स्त्रियां व्यभिचारिणी होजाती हैं, उनके व्यभिचारिणी होनेसे सन्तान वर्णसंकर होती है ॥ ४१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥
पतंतिपितरोह्येषांलुप्तपिंडोदकक्रियाः ४२

दोहा–नरकपरे संकरभये, कुलघातीजे जोय ॥
पतितहोंहितिनकेपितर, पिंडनदेईकोय ॥ ४२

वंशके नष्ट करनेवालोंके कुलमें जो सन्तान उत्पन्न होती है वह नरकमें लेजानेहीके लिये होती है और इनके पित्रीश्वर पिंड और तर्पणसे रहित होकर नरकमें गिरते हैं ॥ ४२ ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंतेजातिधर्माःकुलधर्माश्च शाश्वताः ४३

दोहा–कुलहिवर्णसंकरभये, डारत दोष वढाय ॥
जातिधर्म कुलधर्मते, तेई देत नसाय ॥ ४३ ॥

हे कृष्ण ! कुलघातियोंके इन वर्णसंकर कारक दोषोंके कारण सनातन जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणांमनुष्याणांजनार्दन ॥
नरकेनियतंवासोभवतीत्यनुशुश्रुम॥४४॥

दोहा–कुलधर्मनकेनाशते, निःसंदेहयहहोय ॥
सदानरकमें तेरहैं, कहतजु यों सब कोय ४४

हे जनार्दन ! जिन मनुष्योंके कुलधर्म नष्ट होजाते हैं उनका निश्चयही नरकमें वास होताहै; ऐसा हमने सुना है ॥ ४४ ॥

अहोवत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः

दोहा–वडे पापके करनको,निश्चयकियो विचार॥
तिनमेंजान्योराजसुख,हनतकुटुंबनिरधार४५

हाय ! हाय !! हम कैसे भारी पापके करनेमें उद्यत होगये हैं कि राज्यके लोभसे हम अपने स्वजनोंको मारनेके लिये कटिबद्ध हुएहैं४५

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ४६

दोहा-करमें लेह थियार ये, आवैं मो समुहाय ॥
मोहिं हनै जो सहज मन, मानि लेहुँ सुखभाय ४६

हे कृष्ण ! यदि धृतराष्ट्रके पुत्र हाथोंमें शस्त्र ले लेकर मुझ शस्त्रहीनको मारेंगे तौ मउनको नहीं रोकूंगा और न मैं शस्त्र चलाऊंगा और इसी बातमें मुझको अत्यन्त कुशल और भलाई मालूम होती हैं ४६

॥ संजय उवाच ॥

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ४७

दोहा-ऐसे कहि अर्जुन तबै, बैठि गयो रथमाहिं ॥
करतें डारि शर धनुष, शोक बढ्यो मनमाहिं ४७

अब संजय कहते हैं कि-हे धृतराष्ट्र ! संग्राममें अर्जुन ऐसे कहकर धनुषबाणको फेंक शोकसे दुःखी हो रथमें जा बैठे ॥ ४७ ॥

इतिश्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेअर्जुनविषादयोगो नामप्रथमोऽध्यायः ॥१॥





परब्रह्मणेनमः ।

❀ अथ विचार दर्पण ❀

भूमिका

इस बातको लिखने की कुछ आवश्यका नहीं कि-हमलोगों की वह दशा नहीं रही है जो प्राचीन कालमें थी । कहाँ उस समयका हमारा बुद्धिबल और शारीरिक पराक्रम और कहाँ इस समयका, रातादिनका सा अंतर होगया है । इस अधोगतिको देखकर बहुत दिनोंसे हमारे चित्तमें यह विचार उठरहा था कि कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे सब मनुष्यों को अपनी इस अधोगति का ज्ञान होजाय जिससे उन्नतिके उपायोंकी ओर लगकर पुनः उसी उन्नत दशाको प्राप्तकरलें जो कि पहिले थी, परन्तु यहभी बहुधा देखा जाता है कि जो उत्तम २ उपदेशकी पुस्तकें निकलती हैं लोग एकवार उनको आधी या सारी पढकर एकओर फेंक देते हैं सदा अपने पास नहीं रखते इसलिये हमने यही उपाय सोचा है कि अपने विचार दर्पणको श्रीमद्भगवद्गीता की टीका के साथ जो सरल भाषा में हो प्रकाशित किया जाय जिससे दोलाभ होंगे जो पाठकरनेवालेहों उन काध्यान इन लेखोंकी ओर आकर्षितहोगाऔर जिनकोकेवल लेख आदिपढनेकी इच्छा रहती है उनको गीताके पाठ करनेकी अभिलाषा उत्पन्नहोगी गीताको वेदही समझना चाहिये क्योंकि इसके प्रथम छःअध्यायायों में तो कर्मकांडका उपदेश है और होनाभी ऐसाही चाहिये जब मनुष्य फलकी इच्छा न करके कर्मयोगमें कुशल होजाता है तभी ईश्वरकी उपासनाका अधिकारी बनता है और पिछली छः अध्यायोंमें ज्ञानकांड है देखिये कर्म उपासना कर चुकनेके पीछे ज्ञानकी प्राप्ति होनेकी आशा होसक्ती है अजकलके अधिकांश साधुओंकी भाँति आलसी और निरुत्साही और पुरुषार्थहीन मनुष्य कभी ज्ञानको प्राप्त नहीं होसक्के, केवल अहं ब्रह्मास्मि कहना ज्ञानी बनना नहीं होसका.

आजकल ऐसा होना चाहिये कि जो उत्तम २ उपदेश समयानुकूल छपाए जावें वह धर्म पुस्तकोंके साथ छपने चाहिये जिससे लोग उनको अपने पास रक्खें। हमको पूर्ण विश्वास है कि अपना यह पुरुषार्थ अवश्य सफल होगा जहाँ कहीं कोई भूल हो उसको पंडितजन क्षमाकी दृष्टिसे देखेंगे, और हम यहभी आशा करते हैं कि भारतवर्षकी उन्नति चाहनेवाले पुरुष इस विचारदर्पण और गाताके अर्थको जहाँ तहाँ लोगोंको सुनाएगे। गुणीजन गुण ग्राहक होते हैं दुष्टजन छिद्रही ढूढते हैं-ऐसा विचार कर हमको पूर्ण आशा है कि गुणीजन हमारे "विचारदर्पण" को अपनाएंगे

कलकत्ता पौष शुक्ल पौर्णिमा विक्रमीय-सं० १९७० सृष्टयब्द ३८९३०१३	अखिलके हिन्दू(आर्य)जाति (हितेच्छुक) पं० सत्यचरण शास्त्री तथा पं० श्रीराम शर्म्मा,





परब्रह्मणेनमः ।

❀ विचार दर्पण ❀

दर्शन (१)

श्रीमद्भगवद्गीताकी महिमा

गीता संसार की सब धर्मपुस्तकों में प्रधानस्थान धारण करने वाली है। वेदोंका सार इसमें कूट २ कर भरा हुआ है इसीसे हिन्दुओं(आर्यों)का यह मुख्यधर्म ग्रंथ है विधर्मी लोगभी अर्थात् ईसाई मुसलमान आदि भी इसको उच्च मानकी दृष्टिसे देखते हैं क्योंकि गीताके समानउच्च विचार उनके धर्मग्रंथोंबाइबल कुरान इत्यादिमेंनहीं मिलते,गीतामें ऐसा एक उदाहरणभीनहींदिखलासक्तेहैंजोविज्ञानके नियमों या प्रमाणोंके विरुद्धलिखा गयाहो और बाइबल कुरानके बहुत उदाहरणदिखासक्तेहैं जिनके देखनेसे पतालगताहै कि यह बातें सर्वथा विज्ञान और प्रमाणोंकेविरुद्ध हैं और इसीहेतुसे त्याज्य हैं. धर्मके सच्चे प्रेमियों की तृषा चाहे वह ईसाई मुसलमान क्यों न हों हमारे धर्म ग्रंथों अर्थात् उपनिषद वेदांतदर्शन और गीताको देखे विना नहीं बुझ सक्ती ॥

गीतामें ब्राह्मणसे लेकर चांडाल पर्यंत सबहिन्दुओं [आर्यों] के लिये विना पक्षपात के यथाधिकार उपदेश दिया गया है भगवान श्रीकृष्णमहाराज सर्व व्यापक निराकार परब्रह्मके अवतार ये भक्तजनोंकी रक्षा औरधर्मका उपदेश करनेको उन्होंने अवतार लियाथा, आर्यसमाजी आदि कितनेही भाइयोंके मतमें परमेश्वरका अवतार लेना असंभव माना है । यद्यपि सर्व शक्तिमानकोकोई बात असंभव नहीं होसक्ती, क्योंकि जब एक सिद्धयोगीको भी इतनी सामर्थ्य है कि अपने कई शरीर रचसका है तो पर-

मात्मा यदि लीलासे अपना एकशरीर रचले तो उसकीव्यापकतामें क्या हानि होस-की है; तथापि यदि उनआर्यसमाजीआदिभाइयोंके मतानुसार श्रीकृष्णमहाराजकोप-रमेश्वरका अवतार नहीं मानाजावे तोभी कुछ हानिनहीं,क्योंकि श्रीकृष्णमहाराजको एक अद्वितीय महात्मा और पूर्ण योगेश्वर माननेमें तो उनकोभी सन्देह नहीं है महाराज श्रीरामचन्द्रजीकेपीछे श्रीकृष्णमहाराजके सदृशकोई दूसरा महापुरुष इतिहासोंमें दृष्टिगोचर नहीं आता,भागवतादि ग्रंथोंमेंश्रीकृष्णमहाराजका गोपियोंके सायचीरहरणादिरासलीलाका वर्णन देखकर कितनेहीविचारहीन और मूर्खजन यह कहने लगते हैं कि जिन श्रीकृष्णमहाराजको अवतारमाना जाता है उन्होंने कैसे २ व्यभिचार के काम किये हैं,यदि हमभी ऐसे कार्य करते हैं तो क्या दोषकी बात है परन्तु उनका ऐसा विचार करना सर्वथा अनुचित और निंदनीय है क्योंकिश्रीकृष्णमहाराजने कदापि ऐसे चीरहरणादि बुरे व्यवहार नहींकिये थे श्रीकृष्णमहाराजके सम्बंधमें ऐसी २बातें वाममार्गी और कामी पुरुषोंनेभागवतादि ग्रंथोंमें घुसादी हैं ग्रंथका पूरा.पर देखनेसे पता लगसकता है, कि यह सब बातें प्रक्षिप्त हैं ॥

जिन श्रीकृष्ण महाराजने जैसे उच्च२ उपदेश गीतामें दिये हैं उनपर एक दृष्टि डालनेसे पता लगता है, कि उनके चरित्रों पर कलंक लगाना मूर्खता और पामरता नहीं है तो क्या है, हम उदाहरणार्थ उनके कुछ उपदेश नीचे दिखाते हैं, जिनको देखकर बुद्धिमान मनुष्य स्वयं विचार सकेंगे कि श्रीकृष्ण महाराज काम सम्बन्धी लीलाओंको रोकनेवाले थे या करने वाले, श्लोक—इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ तयोर्न वशमागच्छेत् तौह्यस्यपरि पंथिनौ ॥ गीता अध्याय ३ श्लोक ॥ ३४ ॥

(अर्थ) एक २ इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयोंमें रागद्वेष स्थिर होते हैं। उन दोनोंके वशमें न आवे वह रागद्वेष निश्चय करके इस जीवके शत्रु हैं, अर्थात् उसके कल्याण के मार्ग मे विघ्नकर्ता होते हैं ॥

श्लोक—कामएषक्रोध एषरजो गुणसमुद्भवःमहा शनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् गीता अध्याय ३ श्लोक ॥ ३७ ॥

(अर्थ) यह जो काम है, क्रोधभी यही है, इसकी रजोगुणसे उत्पत्ति है फिर वह कैसा है,बहुत खानेवाला है और बडा पापी है इसको बैरी समझो इसी की प्रेरणासे मनुष्य पाप करताहै।

(श्लोक)इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥ एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्यदेहिनम्॥ गीता अध्याय ३ श्लोक ॥ ४० ॥

(अर्थ)इन्द्रिय, मन, बुद्धि इस काम का स्थान हैं इन तीनोंपर अपना प्रभाव डालकर जीवात्मा के ज्ञान को ढक के इसको मोह लेता है इसको कैसे रोकेंयहउपाय अगले २ श्लोकमें बताते हैं ॥

(श्लोक) तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्यभरतर्षभ। पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ गीता अध्याय ३ श्लोक ४१ ॥

(अर्थ) हे अर्जुन, तू प्रथम इन्द्रियोंको अपने वशमेंकरके ज्ञानविज्ञान दोनोंको नष्ट करनेवाले इस कामको नाशकर यह बड़ा पापी है॥

ज्ञान--वाह्यपदार्थों का जानना ॥ विज्ञान--आत्मिक बातोंका जानना ॥

(श्लोक) ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एवते। आद्यंतवंतःकौन्तेय नतेषुरमने बुधः ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २२ ॥

(अर्थ) निश्चय करके इन्द्रियों के सम्बन्धसे जोभोग होते हैं वह दुःखके कारणही होते हैं वह स्थायी नहीं है, उनमें बुद्धिमान मनुष्य नहीं लगते। इसलिये जो पुरुष इन इन्द्रियोंके सुखोंमें न फँसकरयोगाभ्यासादिद्वारा परमात्माको प्राप्त होनेके साधनों मे लगता है वही मुक्तिको प्राप्त होता है।

(श्लोक) वाह्य स्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्। सब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षय्य मश्नुते ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २१ ॥

अर्थ-वाहरेक पांशब्द स्पर्श रूप, रस, गंध विषय हैं उनमें जिसका आत्मा (मन फसा हुवा नहीं जिसको अंतरात्मा मेंही सुख प्राप्त है ऐसा पुरुषब्रह्मको प्राप्तहोकर सदाकेलियेस्थाई सुखकोप्राप्तहोगा

श्लोक--काम क्रोधा वियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्। अभितो। ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २६ ॥

(अर्थ) काम क्रोध से रहित, और मनको जीतनेवाले, आत्मापरमात्मा कोजाननेवाले पुरुष जीवितदशा में भी ब्रह्मानन्दको भोगते हैं और मरण पीछे भी ब्रह्मको प्राप्त होंगे

[श्लोक] यते न्द्रिय मनो बुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः। विगतेच्छा भय क्रोधोयः सदामुक्त एवसः ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २८ ॥

(अर्थ) इन्द्रिय मन और बुद्धिको जिसने पापकर्मोंसे हटाकर अपने आधीन कर लिया है और जिसको भोग विलासके पदार्थोंकी इच्छा नहीं है, और जिसको भय व क्रोध नहीं है ऐसा मुनि पुरुष अर्थात् जो आत्मा परमात्मा आदि सूक्ष्म विषयोंको विचार करनेवाला पुरुषहै, वह सदा दुःखों से मुक्त रहता है

(श्लोक) उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैवह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ गीता अध्याय ६ श्लोक ५ ॥

(अर्थ) अंतःकरणको कामक्रोधादि वृत्तियों से रहित करके कल्याणको चाहनेवाला पुरुष अपना उद्धारक रे अपनी आत्माकी अधोगतिकभी न होनेदे, अपने वशमें किया हुवा मन अपना मित्र है और विषय सुखोमें लुहाया हुवा मनही अपना शत्रु है।

उपरोक्तश्लोकोंके पढनेसे विदित होता है, किश्रीकृष्णमहाराज इन्द्रियोंको दमनकरने और कामक्रोधरूपी शत्रुओंको जीतने के कैसे पक्षपातीथे; और दूसरी बात यहभी है कि उनका अवतार धर्मको संस्थापन करनेको हुवाथा, वह संसारमें धर्म

जन्मको विषमय करने वाला कालीनाग है. सो काल समझना, मुमुक्षु कालको मर्दन करनेसे कालातीत होते हैं. इसलिये कवियों ने कृष्णचन्द्रको कालीनागके फणपर नाचते वर्णन किया है।

महाभारतके समयसे लेकर अबतक भारतवर्षके बडे २ ऋषि मुनि और विद्वान्लोग श्रीकृष्णमहाराजको परमेश्वरका अवतार मानते चले आये हैं। इस पांचसहस्र वर्षके समयमें बुद्धदेवको छोडकर भारतवर्ष में किसीभी दूसरे मनुष्यको अवतार नहीं माना है। श्रीबुद्धदेवभी एक महापुरुष हुए हैं। वह जाति भेद नहीं मानते थे उनके उपदेश निम्न लिखित प्रकार हैं। सब्ब पापस्स अकरनम् कुशलस्स उपासम्पदसचित। परियोदापानम् एतंबुद्धन सासनम्॥ तथा गातो॥
(अर्थ) बुराकाम मतकरो, अच्छे काम बार २ करो, अपने अन्तःकरणको शुद्ध करो।
दशपाप जिनसे बचना चाहिये "दशअकुशल" कहलाते हैं इनसे विपरीत "दश कुशल" हैं जो इस प्रकार हैं। (१) शारीरिक-हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, परस्त्री गमन नहीं करना. (२) वाचिक-मिथ्या भाषण नहीं करना,अश्लील शब्दोंका उच्चारण नहीं करना, कटुवचन किसीको नहीं बोलना। धर्म, अर्थ, मोक्ष जिससे सिद्ध न हो. ऐसी वार्तालाप नहीं करना। (३) मानसिक-किसीके धन हरने या किसीके अनिष्टकरनेको विचार नहीं करना, विज्ञान और प्रमाण विरुद्ध बातोंको नहीं मानना। इहलौकिक या पारलौकिक बातोंमें कार्यकारण का बिचार करना अर्थात् अंध विश्वास नहीं रखना। (४) कक्कवचीसूत्र, दीर्घ निकायमें लिखा है कि-भगवान बुद्धदेवने निम्नलिखित पांच उपदेश समस्त संसारके मनुष्योंकी भलाई के लिये दिये हैं यथा-किसीभी प्राणीका वध मत करो, बिना आज्ञा किसीकी वस्तु या सम्पत्तिकोमत लो, परस्त्रीसे सर्वथा बचो। मिथ्या, कटु और अश्लील भाषण कदापि न करो। [कक्कवचीसूत्र एक बौद्धधर्म ग्रंथकानाम है जो पालीभाषा में है। पालीभाषा संस्कृतभाषाकी अपभ्रंश भाषा है] (५) मादक पदार्थोंका सेवन कदापि मत करो. क्योंकि यह शरीर और मनबुद्धिको नाश करते हैं॥

यह उपरोक्त पांच उपदेश गृहस्थ लोगों को नित्य पालने चाहिये. यह बुद्धदेवका अभिप्राय था। भगवान बुद्धदेवके उपदेशोंका इतना भारी प्रभावपडाया कि,

(१) देखो बुद्धका जीवन चरित्र। अनागारिक धर्मपालकृत अंग्रेजीभाषा पृ० ६९।७०।

एक समयमें समस्त भारतवर्षसे हिंसाका नाम उठगया था। चीन, जापान, श्यामके पचास करोड निवासी और भारतवर्षके पचीस करोड हिंदु [आर्य] बुद्धदेवको अवतक अवतार मानते हैं । श्रीकृष्णमहाराजके पीछे भारतवर्षमें बुद्धदेवको छोड कर और किसीकोभी अवतार नहीं माना है. इसीसे जान पडता है कि भारतवासी बिना परीक्षा कियेही किसी साधारण व्यक्तिको अवतार नहीं मानलेते ॥

ऊपर जो हमने यह लिखा है कि, भागवतादि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण महाराजके सम्बधमें काम सम्बंधी बातें वाममार्गी और कामी पुरुषोंकी घुसाई हुई हैं उससे यह अभिप्राय नहीं है कि, ऐसी सभी बातें ऐसे लोगों द्वारा डाली हुई हैं और मूलमें पहिले से न थीं। सारांश यह है कि, बहुतसी बातें जो मूलमें अलंकार रूपसे लिखी गई थीं उनके अर्थ पलट दिये गये। प्राचीन हिन्दुओं (आर्यों) की यह शैली सदासे चली आई है कि, वह अपने अधिकांशविचार अलंकार रूपमें ही प्रगट किया करते थे,क्योंकि यहांपर कविता और साहित्य सदासे उन्नतदशामें रहे हैं। वेदोंमेंभी ऐसे अलंकार बहुत देखनेमें आते हैं.यथा (१) सरस्वती के पीछे ब्रह्माका भागना, यहां ब्रह्माका अर्थ है सूर्य और सरस्वतीका अर्थ है रात्रि, अर्थात् सूर्यदेव रात्रिको हटाकर प्रकाश करते हैं। (२) परमात्माके मुखारविन्द अर्थात् मुखसे ब्राह्मणोंका उत्पन्न होना, बाहुसे क्षत्रियों का, जंघासे वैश्योंका और पैरोंसे शूद्रोंका । यहां उपदेश, बल, वाणिज्य, और सेवा प्रधान वृत्तियों के सम्बन्धमें अलंकार काममें लायागया है कोई साक्षात् मुखादि अंगोंसे परमात्माने चार वर्ण उत्पन्न नहीं किये ।

(३) शुक्र उदय होनेपर विवाह संस्कार होना चाहिये, वहां प्रयोजन यह है कि, शुक्र अर्थात् वीर्य पकनेपर विवाह होना चाहिये, न कि इससे पूर्व छोटी अवस्थामें। अब लोगोंने इस अलंकार को न समझकर शुक्र अर्थ तारेका मानलिया है. अबभी बहुधा कविलोग अपने विचार अलंकारोंमें प्रगट करते हैं और अलंकारोंके जानने वाले कविके तात्पर्यको यथार्थ जान लेते हैं, परन्तु अलंकारोंको न जानने वाले यथार्थ अर्थ नहीं समझ सक्ते। प्राचीन कालके ग्रंथों की टीकाएं पिछले शृंगाररस प्रेमी टीकाकारोंने काम सम्बन्धीकर दीं और बहुतसे श्लोक मूलमें स्वयं बनाकर मिला दिये और उनके अर्थभी काम सम्बन्धी ही करादिये । अतः हमें सभी बातोंको न तो प्रक्षिप्त जानना चाहिये और न सभी को अलंकार । सत्यासत्य के ठीक ठीक निर्णय के लिये विवेक से पूरा २ काम लेना चाहिये । पिछले दो सहस्र वर्ष में एक ऐसा अंधकारमय समय

भारतवर्ष में आया था कि, जिसमें प्रमाद और अज्ञान अधिक बढ गये थे, उसी समय में इन्द्रियोंके दास और विषय प्रिय पुरुषों ने वाममार्ग आदि घृणित मतोंका प्रचार किया और धर्मग्रंथों में भी उसी समय उन दुष्टोंने अपने कुत्सित और निन्दनीय बिचारोंको मूल या टीकारूप में प्रविष्टकर दिये जिनको साधारण मनुष्य पढकर भ्रममें पडजाते हैं परन्तु विद्वान् और विवेकी जन तुरन्तही जानलेते हैं, कि अमुक २ बातें मिलावटी हैं। शोक है! कि, अब तक भी हमलोग इन मिथ्या और अश्लील मूल, या टीकाओं को हमारे धर्म ग्रंथोंमें से निकालने की चेष्टा नहीं करते। यदि कहीं २ थोडा बहुत परिश्रम इस ओर हुआ भी है, तो मूर्ख लोगोंके द्वेष करनेपर लोग इसकामसे पीछे हट गये हैं परन्तु सत्यकी खोज करनेवालोंको ऐसे मूर्ख लोगोंकी धमकियों से न डरकर अपने कार्य में लगा रहना चाहिये, हां साथमें हमको इसबात का हर्ष है कि वेद, उपनिषद, दर्शनशास्त्र, और गीता में वह दुष्ट लोग अपने कुत्सित और निंदित विचारों को प्रविष्ट नहीं करसके। इसका कारण यह हुवा कि, वेदकी भाषा और ऋचाओंकी बनावट अति कठिन हैं और गीता, उपनिषद और दर्शन शास्त्रोंको लाखों हिन्दु [आर्य] लोग कण्ठस्थ करते चलेआये हैं। अतः उनमें मिलावटी, मूलके श्लोक, सूत्र, और टीकाओं का प्रवेश कठिन होगया। भगवान् श्रीकृष्ण महाराजने यही जानकर गीताका उपदेश किया था कि, जब अभी से लोगोंमें प्रमाद आना प्रारम्भ होगया है, तो भविष्य में संभव है कि, लोगोंकी अध्यात्म विद्यापर रुचि न रहे और सांसारिकसुखोंकी ओर अधिक प्रवृत्ति बढती जाए तो रातदिन ऐसी२विद्याओंकी खोजमें पडे रहेंगे जिनसे इहलौकिक सुखों के साधन प्राप्तहों। जिस प्रवृत्ति का फल यह होगा कि, वेदोंका पठन पाठन छूट जायगा और उनके गूढ तत्वों का समझनाभी उनके लिये कठिन होजायगा, तो गीताके द्वारा सरल रीतिसे वेदों के गूढ तत्व समझ में आसकेंगे। किसी कविने सच कहा है कि—गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः॥

अर्थ—गीता के तात्पर्य को ही यथार्थ समझलेना बहुत लाभकारी होसक्ता है, बहुत विस्तार पूर्वक अन्य शास्त्रों के पढने से क्या प्रयोजन।

परंतु इससे यह अभिप्राय नहीं हैं कि अन्य शास्त्रोंको न पढे। कविका आशय केवल गीताकी महिमा दिखानेका है। श्लो०—सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः पार्थो वत्सःसुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

अर्थ-सब उपनिषद गोरूप हैं. श्रीकृष्ण महाराज इस गौको दोहने वाले हैं, गीता रूपी अमृत अर्थात् दुग्ध दुहा गया, जिसका पान बुद्धिमान् अर्जुन रूप बच्छा ने किया। अपने २ घरोंमें रक्खें और नित्य इसके अमूल्य उपदेशोंका श्रवण, मनन करते रहें. क्योंकि इन उपदेशों द्वारा हमको इस लोक और पर लोक सम्बन्धी दोनों प्रकारके सुख प्राप्त हो सकेंगे।

गीता माहात्म्य समीक्षा—

पृथ्वी और विष्णु भगवानके प्रश्नोत्तर रूप आख्यायका (अलंकार) द्वारा गीतापाठका महत्व वर्णनकिया गया है। पापी भी गीताके पाठसे उत्तमगति को प्राप्त होसक्ता है, यह कोई असंभव बात नहीं है, क्योंकि गीताके पाठ करनेसे अर्थ को जाननेकी रुचि होगी. अर्थ जाननेपर किये हुए दुष्कर्मोंके लिये पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करेगा और आगेको पापरूप कर्म करनेसे बचता रहेगा, इस प्रकार पापी भी गीताके पाठसे कल्याण को ही प्राप्त होसकाहै। और यहभी अर्थ है कि,पृथ्वी अर्थात् भूमि के लोगोंने परमात्मा से प्रार्थना की कि, सब प्रकारके सुख देनेवाली आपकी भक्ति प्राप्त करने को क्या करें तो उत्तर में यह प्रेरणा हुई कि, गीताभ्यास। गीताभ्यास !! गीताभ्यास !!!

 इति प्रथम दर्शन समाप्तः 





द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ संजय उवाच ॥

तंतथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥ १॥

दोहा–ले उसास अंसुवा भर, अर्जुनकरुणाभाय॥
बहुविषाद संयुक्त लख, बोले श्रीयदुराय ॥१॥

राजा धृतराष्ट्रसे संजय कहने लगे कि–इसप्रकार कृपासे परिपूर्ण आसुओंसे डबडबाये नेत्रवाले, विषाद करते हुये अर्जुनसे मधुसूदन भगवान् यह कहने लगे ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

कुतस्त्वाकश्मलमिदं विषमेसमुपस्थितम्
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

दोहा–अर्जुनया संग्राममें,कत दुख पायो मीत ॥
कीरति अरु स्वर्गहिहरै, कायरज्यों भयभीत॥

कि–हे अर्जुन! ऐसे कठिन समयमें तुझे यह मोह कहांसे हुआ, ऐसा मोह नीच पुरुषोंको होताहै, इससे (मरनेपर) नरक मिलेगा और (इस लोकमें) अकीर्ति होगी ॥ २ ॥

क्लैब्यंमास्मगमःपार्थनैतत्त्व्युपपद्यते ॥
क्षुद्रंहृदयदौर्बल्यंत्यक्त्वोत्तिष्ठपरंतप ॥३॥

दोहा-कायरता तूं जानिकरै, यह तो कौनहिजोग
छांडिकचाईहीयकी, देशत्रुनकोरोग ॥ ३ ॥

हे पार्थ ! कायर मत बनै, तुझे यह उचित नहीं है, हे शत्रुसूदन ! अपने मनकी इस तुच्छ दुर्बलताको छोडकर खडे हो जाओ ॥ ३ ॥

कथंभीष्ममहंसंख्येद्रोणं च मधुसूदन ॥
इषुभिःप्रतियोत्स्यामिपूजार्हावरिसूदन ४

दोहा-हरिपूजा संग्राममम, हैंभीषमअरुद्रोन ॥
पूजौंके शरसोंहनौं, मोसोंकहिये तौन ॥ ४ ॥

हे मधुसूदन ! मैं संग्राममे भीष्म पितामह और द्रोणाचार्यसे युद्ध किसतरह करूं हे शत्रुनिकंदन । ये दोनों तौ पूजाके योग्य हैं. इनपर बाण कैसे चलाऊं ॥ ४ ॥

गुरूनहत्वाहिमहानुभावाञ्छ्रेयोभोक्तुंभै-
क्ष्यमपीहलोके॥हत्वार्थकामांस्तुगुरूनिहै
वभुंजीयभोगान्‌ रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

दोह-भीखमांगिबरुखाइये, गुरुहानिबौजुअनीति
गुरुहिमारिभोगहिकरौं, भषौंसुलोहूरीति ॥५॥

हे कृष्ण ! इस लोकमें महानुभाव गुरुजनोंको मारे बिना जो भीखका अन्न खाकर कालक्षेप होजाय तौ यह भी बहुत उत्तम है, जो गुरुओंको मारकर इन सांसारिक भोगोंको भागगा. वह रुधिरसे सनेहुए भोगोंको भोगैगा ॥ ५ ॥

नचैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयोयद्वाजयेमय-
दिवानोजयेयुः॥ यानेव हत्वा नजिजीवि-
षामस्तेऽवस्थिताःसंमुखेधार्तराष्ट्राः ॥६॥

दोहा-इहौजुहमनहिंजानहीं, हारिहोइ कै जीत॥
जिनहिंमारिहमनहिंजियें, ते ठाढे हैं मीत॥६

हे कृष्ण ! जो हम अधर्म करनेको तत्पर हो भी जांय तौ हमको नहीं मालूम है कि–हममें कौन बली है, ये हमको जीतेंगे वा हम इनको जीतेंगे. जिनको मार कर हम जीना नहीं चाहते हैं. वे धृतराष्ट्रके पुत्र हमारे सन्मुख खडे हैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामित्वांध
र्मसंमूढचेताः॥ यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितंब्रूहि-
तन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम्॥७

दोहा--धर्ममांझिहौंमूढहौं. पूछतकृष्णसुभाय॥
दीनतुमारोशरणहौं, दीजैयुक्तिबताय॥७॥

इनको मारकर हम कैसे जियेंगे यह कार्पण्य है और कुलक्षयका दोष है कार्पण्य और दोष इन दोनों बातोंसे मेरा स्वभाव बिगड गया है. अब मेरा मन ऐसा मूढ होगया है कि–मुझे धर्म अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा है. इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ कि–युद्ध करना वा भिक्षा मांगकर जीवन करना. इन दोनोंमें कौनसी बात श्रेष्ठ है

इनमें जो बहुत ठीक होय सो कहिये मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरण आया हूँ, जिस प्रकार मेरा धर्म बचै और निश्चय कल्याण होनेवाला उपाय हो वही कहिये ? ॥ ७ ॥

नहिप्रपश्यामिममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणाम् ॥ अवाप्यभूमावसपत्नमृद्धं राज्यंसुराणामपिचाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

दोहा--भूमिलोकसुरलोकको, लहौंअकंटकराज ॥
इंद्रियशोकेजीवको, जाइ न शोकसमाज ॥८॥

हे प्रभो ! जो संपूर्ण पृथ्वीकाभी मुझे निष्कंटक राज्य मिल जाय और देवताओंकाभी अधिपति बनजाऊँ तौ भी मुझे कोई उपाय नहीं सूझता है, जिससे इन्द्रियोंका सुखानेवाला मेरा यह शोक दूर होजाय ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ॥ नयोत्स्यइतिगोविंदमुक्त्वातूष्णींबभूवह ।

दोहा—ऐसेकहिश्रीकृष्णसों, अर्जुनताहीवार ॥
युद्धनहींहरिजूकरौं, कीनोयहनिर्धार ॥ ९ ॥

तब संजयने कहा—हे धृतराष्ट्र ! निद्राको जीतनेवाला और शत्रुओंको संताप देनेवाला अर्जुन श्रीकृष्णसे यह कहकर चुप होगया कि, मैं अब युद्ध नहीं करूंगा ॥ ९ ॥

तमुवाचहृषीकेशःप्रहसन्निवभारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्येविषीदंतमिदंवचः॥१०

दोहा–दोउसेनामांझयों,अर्जुनकियोविषाद ॥
कृपावंतव्हैकृष्णजू, कीनोबचनप्रसाद ॥ १० ॥

"हे भरतवंशसमुद्भव धृतराष्ट्र ! दोनों सेनाओंके बीचमें खडेहुए अर्जुनको शोकयुक्त देख इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण कुछ हंसतेहुएसे यह कहने लगे ॥ १० ॥

अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे॥
गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः११

दोहा–शोचअशोचीक्योंकरत, करतज्ञानकीबात
शोच न पंडितकरत हैं, जीवनउपजतजात११

प्रथम श्रीकृष्णने विचारकिया कि-अर्जुनको देह और आत्माके अविवेकसे शोक उत्पन्न हुवा है. सो जबतक इसको ज्ञान न होगा तबतक शोक न मिटेगा यह सोचकर कहने लगे कि हे अर्जुन ! जिन वस्तुओंका सोच करनाउचित नहीं है. उनका सोच करते हो और पंडितोंकीसी बाते बनाते हो. यह तुमारा हठ ठीक नहीं है. विद्वान लोग जीते और मरे हुओंका सोच नहीं करते हैं, क्योंकि जीना मरना दोनों मिथ्या हैं ॥ ११ ॥

समीक्षा–अर्जुनने जो " दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्णेति " अध्याय १ श्लोक २८ से लेकर " यदि मामप्रतिकारमिति " अध्याय १ श्लोक ४६ पर्यंत उन्नीसश्लोकोंमें और " कथं भीष्ममहं संख्येति " अध्याय २ श्लोक ४ से लेकर "नहि प्रपश्यामीति " अध्याय २ श्लोक ८ पर्यंत पांच श्लोकोंमें शोक मोह और संशयकी बातें कहीं तो श्रीकृष्ण महाराजने "अशोच्यानन्वशोचस्त्वमिति"

अध्याय २ श्लोक ११ से प्रारम्भकरके "सर्वधर्मान्परित्यज्येति" अध्याय १८ श्लोक ६६ पर्यंत सिद्धांतरूपसे अनेक बातें अर्जुनके शोक मोह और संशयको दूर करनेको कहीं, यथा अर्जुनको शोक और मोह होगया था, कि जब युद्धमें हमारे कुलके पुरुष सब मरजाए जायेंगे तो हमारे स्वर्गस्थपितर, उनके नाम से श्राद्धादिके न होनेपर, नरकमें गिरपडेंगे, तो इस शोक और मोहको यह कहकर निवृत्त किया कि "ते तं भुक्त्वा स्वर्ग लोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंतीति" अध्याय९ श्लोक २१ अर्थात् स्वर्ग में रहने वाले मनुष्य उत्तम स्वर्ग लोकके सुखोंको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मर्त्यलोकमें आजाते हैं. अतः हे अर्जुन! तू इस मोहको त्याग दे कि, हमारे पितरोंके निमित्त जब कोई श्राद्धादिक्रिया न करेगा तो वह स्वर्गलोकसे निकाले जायेंगे.इस बातकोतू सिद्धांत मान कि,दूसरोंके किये हुए पुण्योंसे जीव नतो स्वर्गमें ठहरसकेहैं,और न दूसरोंकेकिये पापोंसे स्वर्गसे निकालेजासकेहै,भला विचारो तो सहीक्या यह न्यायकी बातहै कि,अपराध करे तो कोई और पकडा जावे कोई।

ऐसा कदापि नहीं होसक्ता यहापर एक सूक्ष्मरूपसे एक दृष्टांत है कि जिससमय वाल्मीकजी बाल्यावस्थामें बहेलियाभेषमें भ्रमण करते हुये अनेक मनुष्योंको मार २ कर उनका वस्त्र धन लेकर जीविका का कार्य्य करते थे. एक दिन सप्तऋषि उसी मार्गसे आते भये ज्योंही वाल्मीकने अपने धनुषबाणसे मारना चाहा त्योंही उन महर्षियोंने आवाज दी कि ठहरो पहिले हमारे प्रश्न का उत्तर देकर मारना उचित है. दूरदर्शी महर्षियोंने विचार करके कहा हे वीर पुरुष! जो प्रतिदिन आप जीवहिंसाकर धन लेआते हैं, क्या उस पापके भागी केवल आपही हैं? या तुह्मारे कुटुम्बी भी हैं?इतना सुन वाल्मीकजीने कहा अभी पूछकर उत्तर देताहूँ घरमें जाकर सबसे पूछा, सब कुटुम्बियोंने पापके भाग लेनेसे इन्कार किया. उसी समयसे विचार वाल्मीकजीके बदल गये और उन ऋषियोंके शरणमें जापडे. उन महर्षियों की शिक्षा दीक्षासे वाल्मीकजी परमपदको प्राप्त होगये इससे सिद्ध होसक्ता है कि जो पाप करेगा वही भोगेगा.

नत्वेवाहंजातुनासंनत्वंनेमेजनाधिपाः ॥
न चैवनभविष्यामःसर्वेवयमतःपरम्॥ १२

दोहा–हमतुमअरुनरपतिजिते, जिनकोनाशनहोइ ॥
तिहूँकालमेंथिररह्यो, ऐसे सबकोजोइ ॥ १२॥

हे अर्जुन! क्या मैं, तुम और ये सब राजा पहिले नहीं थे? क्या आगे नहीं होंगे? यह बात नहीं है, पूर्वकालमें मैंभी था, और तुमभी थे और ये सब राजाभी थे, अबभी हैं और आगेभी हम तुम और ये राजाभी सब होंगे ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथादेहेकौमारंयौवनंजरा।
तथादेहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्रनमुह्यति ॥१३

दोहा-बाल्युवा अरु वृद्धता,या देही को होय॥
तैसेदेहांतरलहै, धीरनमोहितकोय ॥ १३ ॥

हे अर्जुन! जैसे इस देहमें जीवकी बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था होती है. उसी तरह जीव इस देहको छोडकर दूसरी देह पालेता है, इसमें ज्ञानी पुरुषोंका मोह करना व्यर्थ है.

समीक्षा-जिसप्रकार बाल्यावस्था जानेपर कौमारावस्था आजाती है और कौमारावस्थाके पीछे यौवनावस्था आजाती है और यौवनावस्थाके पीछे जरावस्था आजाती है और मनुष्य लोग एक अवस्थाके जाने और दूसरीके आनेपर चिंता और शोक नहीं करते और न रोते पीटते हैं इसीप्रकार एक देहके पीछे दूसरी देह प्राप्त होनेपरभी शोक करना और रोना पीटना व्यर्थ है ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तुकौंतेयशीतोष्णसुखदुःखदाः
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत

दोहा-अर्जुनइंद्रियचितामिली, विषयजुसुखदुखदेत॥
आवैजाइनथिररहै, सहतनयाकोहेत ॥ १४॥

हे कौंतेय! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जो इन्द्रियोंके विषय हैं ये शरदी गरमी,और सुख,दुःखके देनेवाले हैं ये अनित्य हैं. और आते जाते रहते हैं अर्थात् कभी दुःख और कभी सुख, कभी सर्दी कभी गर्मी आती जाती रहती है इससे हे अर्जुन! इनका सहना उचित है १४

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषंपुरुषर्षभ ॥
समदुःखसुखंधीरंसोऽमृतत्वायकल्पते १५

दोहा–जाकेविथा न होइ कछु, सुखदुखगिनैसमान ॥
वहै धर्मकरिमोक्षहै, बातयहैपरमान ॥ १५ ॥

हे पुरुषोमें श्रेष्ठ अर्जुन ! जिनको इन्द्रियोंके विषय नहीं सताते और जो सुखदुःखको समान जानते हैं वे धीर पुरुष मोक्षके अधिकारी होते हैं ॥ १५ ॥

नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥
उभयोरपिदृष्टोंतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।

दोहा–जो है सो विनशैनहीं, जोविनशैसोनाहिं ॥
जोइनतत्वनकोलखै, गनियेज्ञानिनमाहिं॥१६

हे अर्जुन ! असत जो सुखदुःखादि नाशवान् पदार्थ हैं. वे अनित्य हैं. और सत जो आत्मा है. उसका नाश नहीं है. तत्वदर्शियोंने अभाव और अनभाव इन दोनोंकाभी सिद्धांत देखा है ॥ १६ ॥

अविनाशितुतद्विद्धि येनसर्वमिदंततम् ॥
विनाशमव्ययस्यास्यनकश्चित्कर्तुमर्हति ।

दोहा–जासों जग यह है भयो,सो अविनाशीजानि
जाहिविनाशनकोउसकै. ताहिआतमामानि॥

हे अर्जुन ! जो सबमें व्यापक है वह अविनाशी है और इस अविनाशीका नाश कोईभी नहीं करसकता है ॥ १७ ॥

अंतवंतइमेदेहानित्यस्योक्ताःशरीरिणः ॥
अनाशिनोप्रमेयस्यतस्माद्युद्धस्वभारत ॥

दोहा—अंतवंतसबदेहहैं, जीवरहतहौनित्त ॥
अविनाशीवहवस्तुहे, युद्धकरौ किन मित्त१८

हे भारत ! यह देह बिनाशी है अर्थात् अवश्य नष्ट होजाता है और इसमें जो जीव रहता है वह अविनाशी और प्रमाणरहित है, फिर इस अनित्य देहके लिये अपना धर्म क्यों त्यागता है, तिससे हे अर्जुन ! खडा होकर युद्ध कर ॥ १८ ॥

य एनंवेत्ति हंतारंयश्चैनंमन्यतेहतम् ॥
उभौ तौनविजानीतोनायंहंतिनहन्यते ॥

दोहा--जोयाकोहन्तागनै, हन्योगनैजोकोय ॥
यह न मरैमारैनहीं. अज्ञानीवेदोय ॥ १९ ॥

जो किसी आदमीको इस आत्माका मारनेवाला समझते हैं वा इस आत्माको किसीके द्वारा माराहुआ समझते हैं ये दोनोंही वार्ते अज्ञानकी हैं इस आत्माको न कोई मारही सक्ता है और न यह मरताही है इस श्लोकमें यह दिखाया है कि, तू जो भीष्मादिकके मारनेका सोच करता है वह व्यर्थ है क्योंकि आत्मा तो किसी प्रकारसे मरनहीं सकती है और देह अनित्य है ॥ १९ ॥

नजायतेम्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वाभ-
विता वा न भूयः॥ अजोनित्यःशाश्वतोऽयं
पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥

दोहा–यहनमरैउपजैनहीं, भयो न वह्नुर्योहोइ॥
अजरपुरातननित्यहै, मारेमरैनसोइ ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा न कभी जन्म लेता है न मरता है न कभी पहिले हुआथा, न आगे होगा. यह जन्मरहित है, नित्य है, पुरातन है (सदासे है यह बातभी नहीं है कि नया हुआहो) शरीरके मारने परभी इसका नाश नहीं होता है ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनंनित्यंयएनमजमव्ययम् ॥
कथंसपुरुषःपार्थकंघातयतिहंतिकम् २१

दोहा--जोजानैहैआतमा, अजअविनाशीनित्त ॥
सोनरमारैकोनको, ताहि हनै को मित्त ॥ २१

हे अर्जुन ! जो इस आत्माको अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अविकारी, समझता है- वह किसको मारता है ॥ २१ ॥

वासांसिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णा-
तिनरोऽपराणि ॥ तथाशरीराणिविहाय-
जीर्णान्यन्यानिसंयातिनवानिदेही॥२२॥

दोहा-जैसेपट जीरन तजै, पहिरत नरजु नवीन॥
देह पुरातन जीवताजि, नईगहतपरवीन॥ २२॥

हे अर्जुन! जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंका त्याग कर और नये वस्त्रों-को धारण कर लेता है, वैसेही जीव पुरानी देहको त्यागकर नई देह धारण करलेता है. आशय यह है कि-जैसे पुराने वस्त्रोंको त्यागनेमें कुछ कष्ट नहीं होताहै वैसेही पुरानी देहके त्यागनेमेंभी कुछ कष्ट नहीं हैं

नैनं छिंदंतिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकः॥
नचैनं क्लेदयंत्यापोनशोषयतिमारुतः २३

दोहा-यहनकटैहथियारसों, पावकसकैनजारि॥
भीजसकैजलनाहिंसो, सोखिसकैनबयारि॥

हे अर्जुन! इस आत्माको शस्त्र छेद नहीं सकते हैं, अग्नि जला नहीं सकता है, जल इसे भिगो नहीं सकता है, और पवन सुखा नहीं सकताहै

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योशोष्यएवच॥
नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽयंसनातनः॥

दोहा--कटैजरैसूखैनहीं, और न भिजवनयोग॥
नित्यजवैसबठौरथिर, अविनाशीविनरोग॥

हे अर्जुन! यह आत्मा न छिद सकती है, न जल सकती है, न भीग सक्ती है, न सूख सकतीहै! क्योंकि नित्य है, सर्वव्यापक है, स्थिर है, अचल है और सनातन है॥ २४॥

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवंविदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥

दोहा–प्रगटनहींजुअचिंत्यहै, अविकारीतूजानि ॥
ऐसे याकोजानिकै, शोकलेहुजनिमानि ॥२५॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा इन्द्रियोंद्वारा जानानहीं जाता है, मनसे विचारनेमें नहीं आता है और विकाररहित है, आत्माको उक्तरीतिका जानकर इसके लिये तेरा सोच करना व्यर्थ है ॥ २५ ॥

अथचैनंनित्यजातंनित्यंवामन्यसेमृतम्॥
तथापि त्वं महाबाहोनैनं शोचितुमर्हसि ॥

दोहा–जो तुम जानों जीवको, जन्ममरणपुनिहोइ॥
तऊशोकतूजनिकरै, मनदृढतामेंहोइ ॥ २६ ॥

हे महाबाहो ! जो तुम इस आत्माको नित्यही जन्मा और नित्यही मरा मानते हैं तौभी इसके लिये तेरा सोच करना अनुचित है॥ २६॥

जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थेनत्वंशोचितुमर्हसि ॥

दोहा–जो उपजै सो विनासिहै, मरै सु उपजै आइ ॥
होनहार सोहोतहै, तहां न शोच बढाइ ॥ २७ ॥

हे अर्जुन! जिसने जन्म लिया है वह अवश्य मरेगा और जो मरा है वह अवश्य जन्म लेगा,इससे उपाय रहित बातोंके लिये तुह्मारा शोच करना व्यर्थ है ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्यानिभारत॥
अव्यक्तनिधनान्येवतत्रकापरिदेवना।२८

दोहा-पाछे जाहि न जानिये, आगे परै न जानि॥
मांझआयु कछु देखिये,ताको शोच न मानि॥

हे भारत! मनुष्यादि प्राणी जन्म लेनेसे पहिले प्रकट नहीं हैं और न मरनेसे पीछे दिखाई देते हैं, केवल जन्ममरणके बीचवाली मध्यमावस्थामें दीख पडते हैं, फिर इसमें शोक करनेकी बातभी क्या है ॥२८

आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति-
तथैवचान्यः॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यःशृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद नचैव कश्चित ॥ २९ ॥

दोहा-जो याको देखै कहै, सोई अचरज भाय ॥
सुनैअचंभोसोलगै, यहजान्योनहिंजाय॥२९॥

हे अर्जुन! कोई तो इस आत्माको आश्चर्यवत् देखता है, कोई आश्चर्यवत् कहता है; और कोई आश्चर्यवत् सुनता है और कोई इसे सुनकरभी नहीं समझता है ॥ २९ ॥

देहीनित्यमवध्योऽयंदेहेसर्वस्यभारत ॥
तस्मात्सर्वाणिभूतानिनत्वंशोचितुमर्हसि ३०

दोहा-जीव न मार्‍यो जातुहै, बसतसबनकीदेह॥
ताते शोच न कीजिये, करि काहूसों नेह ॥३०

हे भारत ! सबकी देहमें जो यह आत्मा है,वह अवध्य है. अर्थात् इसे कोई मार नहीं सकता है, फिर इन प्राणियोंके लिये जो तुम्हारा सोच करना है सो व्यर्थ है ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपिचावेक्ष्यनविकंपितुमर्हसि ॥
धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्यनविद्यते॥

दोहा-अपनोधर्मविचारतू, जनिछाँडैसंग्राम ॥
धर्मयुद्धतेक्षात्रियहि, औरनकछुअभिराम ॥३१

हे अर्जुन ! जो तू अपने क्षत्रियधर्म परभी दृष्टि करता है तौभी तुझे डरना नहीं चाहिये, क्योंकि क्षत्रीके लिये युद्ध धर्मसे उत्तम और कोई धर्म नहीं है ॥ ३१ ॥

यदृच्छयाचोपपन्नंस्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनःक्षत्रियाःपार्थ लभंते युद्धमीदृशम्

दोहा-अपनी इच्छा ते लह्यो,खुल्यो स्वर्गको द्वार ।
भाग्यवंत क्षत्री लहैं, लरैं सुरणहिं मझार ३२

हे पार्थ! यह समय अपने आप उपस्थित होगया है इसमें स्वर्गका द्वार खुल जाता है,पुण्यवान् क्षत्रियोंको ही यह युद्धसमागम मिलता है अर्थात जो क्षत्री युद्धमें मरते हैं वे सीधे स्वर्गको चले जाते हैं॥३२॥

अथचेत्त्वमिमंधर्म्यंसंग्रामंनकरिष्यसि ॥
ततःस्वधर्मंकीर्तिंचहित्वा

दोहा-यही धर्म संग्रामको,जो तू करिहै नाहिं ॥
तजिकै कीरत धर्मको, परिहै पापनिमाहिं ३३

और जो तू (इस अवसरको पाकरभी) अपने क्षात्रिय धर्मरूप संग्रामको न करैगा तो तेरा धर्म नष्ट होजायगा, कीर्ति जाती रहेगी और तुझे पाप लगैगा ॥ ३३ ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंतितेऽव्ययाम्
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥

दोहा-तेरो अपयश जगतमें, बोलैंगेसबकोय ॥
मानवंतको मानघट, अधिकमरणतेहोय ॥३४

और मनुष्य तुझको सदा बुरा कहेंगे (देख) प्रतिष्ठित पुरुषकी अपकीर्ति होना मरनेसेभी बुरा है ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंतेत्वांमहारथाः ॥
येषांचत्वंबहुमतोभूत्वायास्यसिलाघवम् ॥

दोहा-भयते अर्जुनरणतज्यो, जगयोंकहिहैंवीर ॥
तोहिंबहुतकरिमानते, अबलघुव्हैहोधीर ॥३५॥

ये सब महारथी तुझको रणभीरु कहेंगे और जो तुझको वडा मानते हैं उनकी दृष्टिमें तू तुच्छ हो जायगा ॥ ३५ ॥

अवाच्यवादांश्चबहून्वदिष्यन्तितवाहिताः
निंदंतस्तवसामर्थ्यंततोदुःखतरं नु किम् ॥

दोहा–तेरे अरिसबकहहिंगे, जो अनकहनी वात॥
निजघटियाईके सुने, बहुदुखलागेतात ॥ ३६ ॥

येही तेरे बडे बडे वैरी अनकहनी वात तुझसे कहेंगे और तेरे बल पौरुषका तिरस्कार करेंगे.(कहो तौ सही) इससे बडा दुःख कौनसाहै ॥

हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गंजित्वावाभोक्ष्यसेमहीम्
तस्मादुत्तिष्ठकौंतेययुद्धाय कृतनिश्चयः ॥

दोहा–लरतमरैलहिहैस्वरग, जीतेंउहमीभोग ॥
उठिअर्जुनतूंयुद्धकारि, शत्रुहतोयहयोग ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन! जो तुम इस संग्राममें मारेजावोगे तौ सीधा स्वर्गको जावोगे और जोजीतोगे तौ इस पृथ्वीका राज्य करोगे(तुह्मारी दोनों तरह जीतहै) इससे दृढ विचारकर कमरकस युद्धके लिये खडे होजावो

सुखदुःखेसमेकृत्वालाभालाभौजयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि

दोहा–लाभहानिअरुसुखदुखी,जीत्योहारिसमान
तातेंअर्जुनयुद्धकारि, पापलेहुजनिमान ॥ ३८ ॥

सुख, दुःख, हानि, लाभ और जय, पराजयको समान जानकर युद्धके लिये तैयार होजाओ ऐसा करनेसे तुझे पाप न होगा ॥ ३८ ॥

एषातेऽभिहितासांख्येबुद्धियोगेत्विमांशृणु
बुद्ध्यायुक्तोयथापार्थकर्मबंधंप्रहास्यसि॥

दोहा-सांख्यबुद्धितोसोंकही, कहतयोगबुधितोहि
ताबुधिकेसंयोगते, रहैनकर्मनिमोहि ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! जो कुछ मैंने अबतक तुझसे कहा है वह सांख्यशास्त्रके अनुसार आत्मा और देहका तत्व समझाया है. अब उसी बुद्धिको योगमें कहताहूं उसे सुन इस बुद्धिके द्वारा सुख दुःखादि जो कर्मबंधन हैं उनसे छूट जाओगे ॥ ३९

नेहाभिक्रमनाशोऽस्तिप्रत्यवायोनविद्यते
स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात्

दोहा-कर्मकरैबिनुकामना, ताकोहोइ न नाश ॥
अल्पकियेहूधर्मयह, काटतभवभयपाश॥४०॥

हे अर्जुन ! इस कर्मयोगमें प्रारंभका नाश नहीं है अर्थात् प्रारम्भ होनेपर समाप्त न भी होय तौ भी उसका फल मिलताहै, न इसमें कुछ पाप है. इस धर्मका किंचिन्मात्र करनाभी जन्ममरणादि रूप बडे भयसे रक्षा करता है ॥ ४० ॥

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनंदन ॥
बहुशाखाह्यनंताश्चबुद्धयोऽव्यवसायिनाम्

दोहा-बुद्धिजुनिश्चैवतसों, एकैहैतूजानि ॥
जिनकैनिश्चैनाहिनै, तिनकीबहुबिधिमानि॥

हे कुरुनन्दन ! व्यवसायात्मिक बुद्धि एकही है अर्थात् जिनकी बुद्धि निश्चल होगई है वे मोक्षके साधनरूप इस कर्मयोगमें लग जा-

तेहैं और जिनकी बुद्धि चलविचल है उनकी बुद्धि अनेक हैं अर्थात् तरह तरहके झगडोंमें फँसजाती है और उनकी शाखाभी अनेक हैं ॥

यामिमांपुष्पितांवाचंप्रवदंत्यविपश्चितः॥
वेदवादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ॥

दोहा–वेदहिमानतस्वर्गफल, तेअज्ञानीलोइ ॥
कहतजुद्यांकछुनाहनें, तिनमेंज्ञाननहोइ॥ ४२॥

हे अर्जुन ! जो अविवेकीहैं वे वेदवाणीमें कर्मफल दिखाय मीठी-मीठी वातें कहते हैं और वे कहते हैं कि, कर्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥

कामात्मानःस्वर्गपराःजन्मकर्मफलप्रदाम्
क्रियाविशेषबहुलांभोगैश्वर्यगतिंप्रति ४३

दोहा–स्वर्गलोककीकामना, रहतजुतिनकेचित्त ॥
लोगबडाईकेलिये, करतक्रियायोंहित्त ॥ ४३ ॥

इससे हे अर्जुन ! स्वर्गप्राप्तिकी है,अत्यन्त कामना जिनके, ऐसे सकाम पुरुष भोग और सुखकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके यज्ञादिक करते हैं, यह क्रिया, जन्म और कर्म फलकी देनेवाली है ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानांतयाऽपहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौनविधीयते

दोहा–भोगबडाईकामना, तिनकोमनहरलेत ॥
निश्चयकरिकैबुद्धिको, नाहिंसमाधिमेंदेत॥४४॥

हे अर्जुन ! भोग और ऐश्वर्यमें जिनके मन फँसगये हैं और कर्म-फलके बतानेवाली वाणीसे जिनके चित्त हरे गयेहैं उनका मन निश्चयात्मक बुद्धिमें स्थित नहीं होताहै ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्यविषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥
निर्द्वंद्वो नित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान्

दोहा–त्रिगुणकर्मकोकहत हैं, वेदसु ताजितूमित्त ॥
धीरजधरिदुखसुखसहो, योगक्षेमतजिचित्त४५

हे अर्जुन ! ये वेद सत, रज. तम इन तीनों गुणोंके विषयहैं, तू इन तीनोंको छोड दे. दुख सुख, लाभ अलाभ, इन द्वन्द्वोंको छोड निर्द्वन्द्व होजा, नित्यही सत्वमें स्थितहो, अप्राप्तवस्तुकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षामें चित्त मत लगाओ और आत्मस्वरूपमें सावधान हो४५

यावानर्थउदपानेसर्वतः संप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषुवेदेषुब्राह्मणस्यविजानतः ४६

दोहा–जैसे वापीकूपसों, सरतजितेजलकाज ॥
जितेसबैइकठौरहीं, करतसरोवर राज ॥ १ ॥
जैसेजितेकवेदमें. कहेसकलविधिकाज ॥
ज्ञानीमेंइकठौरहीं, तेपैयेकुरुराज ॥ २ ॥ ४६ ॥

हे अर्जुन ! जैसे तालाव, सरोवर आदि पानीसे भरेहुए हैं, इनमेंसे मनुष्य अपने प्रयोजनमात्र जल ले लेता है ऐसेही ब्रह्मवेत्ता संपूर्ण वेदोंमें अपने प्रयोजन मात्र ले लेता है ॥४६ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन ॥
माकर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि ॥

दोहा--तोअधिकारजुकर्ममें, नाहींफलसोंहेत ॥
कर्मनकेफलछांडिदे, करहुकामहीचेत ॥ ४७ ॥

हे अर्जुन ! कर्महीमें तेरा अधिकार है, फलमें कभीभी अधिकार नहीं और जो तू करै उसके हेतु वा उसके फलके भोक्ताभी मतहो, और जो तूने कहाकि "मैं युद्ध न करूंगा" ऐसे अकर्ममें तेरी निष्ठा न हो

योगस्थःकुरुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाधनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते

दोहा--योगस्थितव्हैकर्मकरि, सबैसंगको त्याग ॥
सिद्धअसिद्धसमानगानि, यहैयोगअनुराग ॥४८

हे धनंजय! सब संगको त्यागकर योगमें स्थितहो कर्म कर, सिद्धि और असिद्धिमें समान भावसे देख. क्योंकि सिद्धि और असिद्धिकी समानताही योग है ॥ ४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ॥
बुद्धौशरणमन्विच्छकृपणाःफलहेतवः४९

दोहा--बुद्धियोगतेंकर्मको, अर्जुनतोघटिजानि ॥
शरणहोहुतुमबुद्धिकी. दीनकामनामानि॥४९

हे धनंजय ! बुद्धियोगसे कर्म नीचहै. इससे बुद्धिका आश्रय लेकर कर्म करो; जो फलकी कामनासे कर्म करतेहैं वे दीन हैं, सिद्धि और असिद्धिमें जो समत्व है उसीका नाम बुद्धियोग है ॥ ४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभेसुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाययुज्यस्वयोगःकर्मसुकौशलम्

दोहा--बुद्धियुक्तदोउतजत, कहापुण्यकहँपाप ॥
योगकर्ममेंचतुरहैं, सोईतूकरिआप ॥ ५० ॥

जो बुद्धियोगसे कर्म करता है वह इसी संसारमें संचित पापपुण्योंका त्याग कर देता है, इससे तुम बुद्धियोगमें प्रवृत्त होओ, ऐसा योगही सब कर्मोंमें कुशलकारक है ॥ ५० ॥

कर्मजंबुद्धियुक्ताहिफलंत्यक्त्वामनीषिणः
जन्मबंधविनिर्मुक्ताःपदंगच्छंत्यनामयम्

दोहा--चाहतनहिंजेकर्मफल, ते पंडितबडभाग ॥
कर्मबंधकोछांडिकै, लहतमुक्तिअनुराग ॥ ५१॥

हे अर्जुन !जो पंडितजन बुद्धियोगयुक्त हैं, वे कर्मफलको त्यागकर जन्मबंधनसे छूट कर निश्चय परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

यदातेमोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदागंतासिनिर्वेदंश्रोतव्यस्यश्रुतस्यच

दोहा–मोहसघनताजबतजै, अर्जुनतेरीबुद्धि ॥
तबपैहो वैरागको, चितमेंकरिकैशुद्धि ॥५२ ॥

हे अर्जुन ! जब तेरी बुद्धि इस मोहरूपी सुखदुःखके पार होकर अत्यन्त शुद्ध होजायगी तब अबतक जो कुछ तू सुन चुका है, और जो आगे सुननेयोग्य है उसके वैराग्यको प्राप्त होगा ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला॥
समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि

दोहा–तेरीबुद्धिवैरागपै, स्थिररहिहैनित्त ॥
तबसमाधिमेंजोलगहि, व्हैहैनिश्चलचित्त॥५३

हे अर्जुन ! अनेक विषयोंके सुननेसे जो तेरी बुद्धि अस्थिर होरही है जब वह मेरे वाक्यमें स्थिर हो जायगी तब तू योग पावैगा५३

स्थितप्रज्ञस्यकाभाषासमाधिस्थस्यकेशव
स्थितधीःकिंप्रभाषेतकिमासीतव्रजेतकिम

दोहा–जाकीबुद्धिनिश्चलसदा, ताको चिह्नबताइ ॥
कैसेबोलतक्योंरहत, चलतसुहैकेहिभाइ॥५४॥

जब श्रीकृष्ण यह कह चुके तब अर्जुनने पूछा कि हे सर्वान्तर्यामिन् केशव ! समाधिमें स्थित पुरुष जिसकी बुद्धि स्थिर होगई है उस स्थितप्रज्ञपुरुषके लक्षण क्याहैं? और ये किस तरह बोलते बैठतेहैं? और किसतरह चलते फिरते हैं ? ॥ ५४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

प्रजहातियदाकामान्सर्वान्पार्थमनोगतान्
आत्मन्येवात्मनातुष्टःस्थितप्रज्ञस्तदोच्यते

दोहा—जैहैमनकीकामना, तिनकातजैजुकोय ॥
आतममेंसंतोषगहि, निश्चलबुद्धिसुहोय ॥५५॥

यह सुन भगवान् बोले—हे अर्जुन ! जो प्राणी अपने मनकी कामनाओंका सर्वथा परित्याग कर देता है और अपनी आत्माहीमें आत्मसुखका अनुभव करता है वही स्थितप्रज्ञ है ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाःसुखेषुविगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधःस्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दोहा—दुःखदेखिभागैनहीं, सुखचाहैं नहिंचित्त॥
तजैनेहअरुक्रोधभय, निश्चलबुद्धिसुमित्त॥५६॥

जिसका मन दुःख पडनेसे घबडाता नहीं है. और सुखमें जिसे हर्ष नहीं होता है, तथा राग, भय और क्रोध जिसके पासभी नहीं आते हैं वेही स्थितप्रज्ञ है ॥ ५६ ॥

यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्यशुभाशुभम्
नाभिनंदतिनद्वेष्टिस्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

दोहा—नेहनकाहूसोंकरैं, भलेबुरेकीचाहि ॥
रागद्वेषहूनाकरै, थिरबुधिलषियेताहि ॥ ५७ ॥

अब अर्जुनने जो पूछाथा कि–स्थितप्रज्ञ किस रीतिसे बोलते हैं उस के उत्तरमें भगवान कहते हैं कि–हे अर्जुन ! जिसका किसी पदार्थमें स्नेह नहीं है. और न शुभप्राप्तिमें हर्षित होता है और न अशुभमें शोक करता है, न किसीसे राग है न द्वेष, वही पुरुष स्थितप्रज्ञ है ॥ ५७ ॥

यदासंहरतेचायंकूर्मोंगानीव सर्वशः ॥
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

दोहा–जोकछुवा निजअंगको, खैंचिआपुमेंलेत ॥
तैसेखेंचोइंद्रियन, बुधिनिश्चलकेहेत ॥ ५८ ॥

जैसे कछुआ अपने सब अंगोको अपने भीतर सकोड लेता है. इसी तरह वह मनुष्य जो अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे मोडकर समेट लेता है उसी पुरुष की बुद्धि स्थिर होती है ॥ ५८ ॥

विषयाविनिवर्तंतेनिराहारस्यदेहिनः ॥
रसवर्जंरसोप्यस्यपरंदृष्ट्वानिवर्त्तते ॥ ५९ ॥

दोहा–विषयनकरतजुदूरिसों, तजतजुहेआहार ॥
आतमदेखेजातुहै, अभिलाषानिरधार ॥ ५९ ॥

जो कहो कि–निराहार रहनेसेभी पुरुषोंकी विषयासक्ति दूरहोजाती है, सो ठीक है यद्यपि उसकी आसक्ति दूर होजाती है पर इच्छा बनीहि रहती है और स्थितप्रज्ञ पुरुषकी परमात्माके दर्शनसे विषयवासनाभी दूर होजाती है ॥ ५९ ॥

यततोह्यपिकौंतेयपुरुषस्यविपश्चितः ॥
इंद्रियाणिप्रमाथीनिहरंतिप्रसभंमनः ॥६०

दोहा–ज्ञानवंत जे पुरुष हैं, जतनकठिणतासाधि
इंद्रियअतिबलवंतहैं, तऊलगावतव्याधि ॥६०

हे कौन्तेय! इन्द्रियां बडी प्रबल और क्षोभकारक हैं, यत्न करते करते ज्ञानी पुरुषके मनकोभी हठपूर्वक हरलेती हैं अर्थात् विना समाधिमें स्थित हुए इन्द्रियोका रोकना कठिन है ॥ ६० ॥

तानिसर्वाणिसंयम्ययुक्तआसीतमत्परः ॥
वशेहियस्येंद्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥

दोहा–तातेंरोकेइंद्रियन, मोमेंचित्तलगाय ॥
वसकीनेजिनएसबै, सोथिरबुद्धिस्वभाव ॥६१॥

जो योगी इन सब इन्द्रियोंका दमन कर मुझमें तत्पर होरहा है अर्थात् आत्मामें निष्ठा कर बैठे, और जिसके वशमे इन्द्रियां हैं वही स्थितप्रज्ञ है ॥ ६१ ॥

ध्यायतोविषयान्पुंसःसंगस्तेषूपजायते ॥
संगात्संजायतेकामःकामात्क्रोधोभिजायते

दोहा–ध्यानकरतनरविषयकों, तासोंउपजतसंग ॥
कामजुउपजतसंगते, तातेंक्रोधउमंग ॥ ६२ ॥

इन्द्रियोंके वशीभूत किये विना मनमें विषयोका चिन्तवन बना

रहता है, चिन्तवन करते करते उसमें आसक्ति उत्पन्न होजाती है,तथा आसक्तिसे कामना और कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है ॥६२ ॥

क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति

दोहा–मोहहोतहैक्रोधतैं, क्रोधहितेबुद्धिनास ॥
शुद्धिगयेबुधिनसतहै, बुद्धिनशेयमपास ॥ ६३॥

हे अर्जुन ! क्रोधसे मोह उत्पन्न होता है और मोहसे मतिभ्रम होता है अर्थात् मति चक्करमें पडजाती है, मतिभ्रमसे बुद्धिका नाश होजाता है और बुद्धि नष्ट होनेपर प्राणी स्वयं नष्ट होजाताहै ॥ ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिंद्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्माप्रसादमधिगच्छति६४

दोहा–रागद्वेशकोजबतजै, करैविषयकीसेव ॥
इन्द्रियजोनिजवशकरै, लहै शांतिकोभेव॥६४॥

वह पुरुष जिसने अपना मन वश करलिया है वह रागद्वेषसे रहित होकर इन्द्रियोंके विषयोंको सेवन करताहुआभी शान्ति पाता है॥६४

प्रसादेसर्वदुःखानांहानिरस्योपजायते ॥
प्रसन्नचेतसोह्याशुबुद्धिःपर्यवतिष्ठते॥६५॥

दोहा–शांति जबहि यहगहतुहै, होतदुखनकोहानि॥
बुद्धितबहिंथिरहोतहै, तुमलीजोयहमानि ॥६५॥

हे अर्जुन ! शान्तिके प्राप्त होनेपर पुरुषके सब दुःख मिट जाते हैं और उस शान्त चित्तवाले पुरुषकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होजाती है

नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना।
न चाभावयतःशांतिरशांतस्यकुतःसुखम्

दोहा–योगविनाबुद्धिहुनहीं, बुधिविनहोइनज्ञान ॥
ज्ञानविनाशांतीनहीं, ताविनसुखनसुजान॥६६॥

जिस पुरुषने अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है उसकी बुद्धि स्थिर नहीं हो सक्ती है और वह आत्माकी भावना(ध्यान) का भी अधिकारी नहीं होता और ध्यानरहितको शान्ति कहां और विना शांतिके परमानंद जो सुख है सो कहां ॥ ६६ ॥

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवांभसि।६७

दोहा--इन्द्रियजिततितफिरतुहैं,तितमनलावतुखैंचि ॥
मनजुबुद्धिहरिलेतुहै, वायुनाँवज्योंऐंचि ॥ ६७ ॥

मन विषयोंको भोगनेवाली इंद्रियोंके पीछे लगा लगा फिरताहै और फिर वह मन बुद्धिकोभी खींचकर ऐसे लेजाताहै जैसे जलमें वायु नावको घुमाती है ॥ ६७॥

तस्माद्यस्यमहाबाहोनिगृहीतानिसर्वशः।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ६८

दोहा-जिनइंद्रियरोकीसबै, ठौरठौरतैंआनि ॥
विषय त्यागजिनहीकियो,थिरबुद्धिताहीमानि
हे महाबाहो अर्जुन ! इसलिये जिसने इंद्रियोंको उनके विषयोंसे हटाकर दमन करदियाहै उसीकी बुद्धि स्थिर है ॥ ६८ ॥

यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्तिसंयमी॥
यस्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुनेः ॥

दोहा-ज्ञानतत्वसोइजगतनिशि, तहँजागतऋषिराय
जागतजीवअनेकतहँ,सोनिशियाकेभाव॥ ६९ ॥

जिसमें संपूर्ण प्राणी सोते हैं वह आत्मनिष्ठावान् पुरुषोका दिन है और जिसमे प्राणी जागते हैं वह आत्मनिष्ठावान् पुरुषोंकी रात्रि है अर्थात् विषयासक्त पुरुषोंको आत्मतत्वका ज्ञान नहीं है अर्थात् इस विषयमे उन्हे कुछ नहीं सूझता है इससे उनकेलिये यह रात्रिरूप है और संयमी पुरुषोंको यह आत्मतत्व दिनके समान है, इसीतरह सांसारिक विषयोका सुख मूढ प्राणियोंके लिये दिन है और योगियोंको रात्रिके समान है अर्थात् वे विषयभोगोंको कुछ नहीं जानते ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापःप्रविशंतियद्वत् ॥ तद्वत्कामायंप्रविशंतिसर्वे सशांतिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

दोहा-जैसेजबजलसरितको, मिलैसमुद्रहिजाय ॥
त्योंयामेंसबकामना, शांतिरहैतहँआय ॥ ७० ॥

हे अर्जुन ! जैसे समुद्रमें पूर्णरीतिसे जल भराहुआ है और उसमें बहुतसी नदी और नदोंका जल चारोओरसे आकर गिरता है. परंतु तोभी वह अचल और प्रतिष्ठित रहताहै और अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता, इसीतरह विवेकी पुरुषोमेंभी सब कामना लीन होती हैं और उसकी शान्ति बनी रहती है, परन्तु कामनाकी इच्छा करनेवालेको शान्ति नहीं मिलती है ॥ ७० ॥

विहायकामान्यःसर्वान्पुमांश्चरतिनिःस्पृहः
निर्ममोनिरहंकारःसशांतिमधिगच्छति ॥

दोहा–तजिक सबमनकामना,जो नर निःस्पृह होय।
अहंकार ममतातजै,लहैशांतिशुठि सोय ॥ ७१ ॥

जो पुरुष संपूर्ण कामनाओंका परित्याग कर निःस्पृह होकर विचरता है और ममता तथा अहंकारको छोड देताहै. वही शान्तिको पाताहै ॥ ७१ ॥

एषाब्राह्मीस्थितिःपार्थनैनांप्राप्यविमुह्यति।
स्थित्वास्यामंतकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति

दोहा–ब्रह्मज्ञानतोसोंकह्यो, जातेमोहनसाय ॥
जोबुद्धिअंतरमेंरहे, मिले ब्रह्ममेंजाय ॥ १ ॥
शोकपंकमेंमगनलखि, अरजुनकौंअनपार ॥
सांख्ययोगदुसरेकह्यो, हरिकीन्होउद्धार ॥ २ ॥
सांख्ययोगवरन्योविषद, हरिकोंकरपरनाम ॥
पुरवोआनंदरामको, सकलमनोरथकाम ॥७२

हे पार्थ ! यह मैंने तुमसे ब्रह्मज्ञानकी निष्ठाका वर्णन कियाहै. इस ब्रह्मज्ञानकी निष्ठाको पाकर फिर सांसारिक मोह नहीं रहताहै अन्तसमयमें जो क्षणभरभी इस ब्रह्मज्ञान निष्ठामें स्थित होजाते हैं वे ब्रह्मज्ञान निष्ठामें स्थित होजातेहैं और ब्रह्मनिर्वाणपदको प्राप्त होतेहैं ७२

इतिश्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोग-
शास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेसांख्ययोगोनाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

समीक्षा-श्रीकृष्ण महाराजने इस दूसरे अध्यायमें अर्जुनको मोक्षका मार्ग कर्म योग द्वारा बताया है अर्थात् फलकी इच्छा न करके सुख दुःखको समान समझकर कर्म करते रहनाही मोक्षका मार्ग है.

अथ विचारदर्पण द्वितीय दर्शन प्रारम्भः

प्राचीन हिन्दुओं (आर्यों) का गौरव.

यह बात सबप्रकारसे प्राचीन इतिहास वेत्ताओं द्वारा सिद्ध होगईहै कि हिन्दु [आर्य] धर्म संसारके सब धर्मोंमें सबसे प्राचीन है । सृष्टिके आदिमें यही धर्मथा। ईसाईमत १९०० उन्नीससौ वर्षसे और मुसल्मानी मत १३००तेरहसौ वर्षसे प्रचलित हुए हैं । प्राचीन कालमें हिन्दुओं [आर्यों] का राज्य यावन्मात्र भूमण्डलमें फैला हुवाथा । हिन्दुओं (आर्यों)के चक्रवर्ती राजाओंकी यह प्रणालीथी कि किसी स्थानका राज्यलेकर उसी स्थानके पराजित राजाको दे देते थेवर्तमान समयकी भांति अन्यराजाओंके देश और धन हरनेको उनकी अभिलाषा नहीं रहती थी । लोगोंके हृदयपर उनका गौरव और यश जमारहे यही एकमात्रअभिलाषा उनको रहती थी। जिससमय योरोपका अधिकांश भाग असभ्य और जंगली था और केवल चीन, अफगानिस्तान, ईरान, मिश्र और रूमादि देशही सभ्य थे, उससमय हिन्दु (आर्य) जातिका प्रताप इतना बढा हुवाथा कि इन उपरोक्त चीनादि देशोंमें भी क्षत्री राजाही राज्य करते थे वहांके लोग वैदिक धर्मको मानते थे और भारतवर्षके चक्रवर्ती राजाओंका विवाहादि

सम्बन्ध इन उपरोक्त देशोंके राजाओंके साथ हुवा करताथा। इनदेशोंके लोग भारतवर्षमें आया करते थे और यहाँ माल वहां जाया करते थे, यही कारण था कि भारतवर्षकी विद्याएं इनदेशोंमें फैलतीरयोरोप तक पहुंची जैसाकि अंकगणित,रेखागणित,ज्योतिष, वैद्यक इत्यादि। योरोपवालोंने अधिक परिश्रम, धैर्य, और खोज से इन्हीं विद्याओंद्वारा आजकलकी आश्चर्यजनक कलाओं और यंत्रोंको निकालकर संसारको मोहित कर दिया। यदि कोई यह प्रश्न करे कि जब भारतवर्षके पूर्वज ऋषि मुनि इन विद्याओंको जानतेथे तो उनके समयमें आजकल जैसे यंत्र क्यों न प्रचलित हुए, तो इसका यही उत्तर है कि प्राचीन ग्रंथोंमें यद्यपि पुष्पक विमानादिका वर्णन है; और अन्य २ भी अनेक बातोंका वर्णन आता है, यथा रावणके घरमें पवन झाडू देताथा, वरुण देवता जलका प्रबन्ध करताथा, अग्निदेवता दीपक जलाताथा। इसका अर्थ यही है कि रावणके घरपर आजकलकी भांति यंत्रोंसे, विद्युत (बिजली), और पवन आदिका व्यवहार किया जाताथा।इसी प्रकार अग्निमुखवाण और ब्रह्मास्त्रसे प्रयोजन स्फोटक अर्थात् (भभक उडनेवाले)पदार्थोंसे था। शोक! अब हमारे धनुर्वेदके लुप्त होनेसे हम अपनी प्राचीन अस्त्र, शस्त्र विद्याको भूल गये।
बात यह है कि आजकलकी भांति उन्होंने कलों और यंत्रोंको रातदिन धनोपार्जनका साधन नहीं बना रक्खाथा।उससमयके लोग इसभांति धनके दास नहींथे।प्राचीनसमयके अधिक मनुष्योंकी प्रवृत्ति केवल इसी धुनमें थी कि धर्मोपार्जन करके अनंत और स्थायी सुखको प्राप्त करें। इससमयके अधिकांश लोग केवल धनोपार्जनमें लगे हुएहैं। यही कारणहै कि नित्य नयेरयंत्र और कलाएं निकालीजाती हैं।बुद्धिका धर्म है कि जिधर यह लगाई जाएगी उधरही अधिक खोज करेगी हमको अधिक शोकतो इसबातका है कि उन्हीं माननीय ऋषिमुनियोंकी आजकलकी अधिकांश सन्तान इन यंत्रोंको देखकर बडे आश्चर्यमें आजाती है और अपने पूर्वजोंको अलौकिक बुद्धि वाले माननेमें सन्देह कर बैठती है।

इससमय अधिकांश हिन्दुओं (आर्यों) की तो यह दशा होरहीहै कि इन यंत्रादिकी बनावटोंकी विद्याओंको स्वयं जानना तो दूर रहा इनको समझानेपरभी नहीं समझ सक्ते। ऐसी अधोगति होनेका कारण यही है कि महाभारतके समयमें जो विरोधकी अग्नि भडक उठीथी उससे नित्य यहांपर लडाई झगडे रहने लगे और विद्याओंका पठन पाठन एकप्रकारसे रुकगया और लोग शनैः २ मूर्ख होतेगये। उसी मूर्खताका परिणाम अब भोग रहेहैं। अब समय आगया है कि हम सब परस्परका द्वेष छोडें और इसराज्यके शान्तिमय समयमें अनेक विद्याओंको सीखकर पुनः अपनेको योग्य बनाएं और अपने पूर्वज ऋषियोंकी कीर्ति पताकाको पुनःउच्चशिखरपर पहुंचाएं।

इति विचारदर्पण दर्शन द्वितीय समाप्तः

तृतीयोऽध्यायः ।

॥ अर्जुन उवाच ॥

ज्यायसीचेत्कर्मणस्तेमताबुद्धिर्जनार्दन ॥
तत्किंकर्मणिघोरेमांनियोजयसिकेशव ॥

दोहा–बुद्धिभलीहैकर्मते, कृष्णकहीतुमजोहि ॥
कर्मभयानकमेंकहा, केशवडारतमोहि ॥ १ ॥

अर्जुनने कहा कि-हे जनार्दन! जो आप कर्मयोगसे ज्ञानयोगको श्रेष्ठ मानते हो तो आप 'तस्माद्युध्यस्व' 'तस्मादुत्तिष्ठ' ऐसे ऐसे वाक्य कहकर क्यों मुझको घोर कर्ममें प्रवृत्त करतेहो ? ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणेववाक्येनबुद्धिंमोहयसीवमे ॥
तदेकं वद निश्चित्ययेनश्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥

दोहा–वचनसुनेसन्देहको, मोबुद्धिहैभरमाति ॥
निश्चयकरियाकोकहो, मुक्तिहोइजेहिभांति ॥२

हे कृष्ण! जो तुमने कभी कुछ और कभी कुछ अनेक प्रकारकी बातें कही हैं, इससे मेरी बुद्धि औरभी बडे संदेहमें पड गईहै आपकी इन बातोंसे मुझे यह कुछभी ज्ञान नहीं हुआ कि–मैं क्या करूं? इससे अब एक बात निश्चय होके कहो जिससे मेरा कल्याणहो ॥ २ ॥

लोकेऽस्मिन्द्विविधानिष्ठापुराप्रोक्तामयानघ

 कर्मयोगेनयोगिनाम्

दोहा–निष्ठाजोहै भाँतिकी, पहिलेकहीबनाय ॥
सिद्धनकोज्ञानीभलौ, कर्मनिकर्मबताय ॥३॥

यह सुन श्रीकृष्ण बोले–हे अर्जुन! मैंने जो प्रथम इस संसारमें तत्वज्ञान निष्ठा और कर्मयोगनिष्ठा जो दो प्रकारकी निष्ठा कहीहैं उनमेंसे सांख्यवालोंको तत्वज्ञान निष्ठा है और योगियोंको कर्मयोगनिष्ठाहै ॥

नकर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यंपुरुषोऽश्नुते ॥
नचसंन्यसनादेव सिद्धिंसमधिगच्छति ४

दोहा–कर्मविनाकीन्हेपुरुष, ज्ञानहिलहै न कोय ॥
ज्ञानरहितसंन्यासके, कवहुँ न मुक्तिजुहोय ॥४॥

हे अर्जुन ! कर्म किये विना मनुष्य नैष्कर्म्य जो तत्त्वज्ञान है, उसको नहीं पाताहै, क्योंकि केवल संन्यास लेनेहीसे निष्काम कर्म करते चित्त शुद्ध किये विना सिद्धि प्राप्त नहीं होसकती है॥४॥

नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत॥
कार्यतेह्यवशःकर्मसर्वःप्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

दोहा–कर्मकरेबिनाछिनकहू, रहेनकोऊजंतु ॥
विवशभयेकर्मनिकरे, बांधेमायातंतु ॥ ५ ॥

किसी अवस्थामें कोई प्राणी कायिक,मानसिक, वा वाचिक, कर्म किये बिना क्षणभरभी नहीं रह सकताहै.क्योंकि प्रकृतिके जो राग, द्वेषादि गुण हैं उनके वशीभूत होकर सब प्राणियोंको कर्म करना पडताहै॥

कर्मेंद्रियाणिसंयम्यय आस्तेमनसास्मरन्
इंद्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारःसउच्यते

दोहा—कर्मेंद्रियनकोरोकिकै, मनविषयनकोध्यान
कपटीमूरखमेंबडो. तेहिकोदंभीजान ॥ ६ ॥

जो हाथ पांव आदि कर्म करनेवाली इन्द्रियोंको वशीभूत करके भगवान्के स्मरणके बहानेसे मनमें इन्द्रियविषयोंका ध्यान करता रहताहै. वह मूढबुद्धि मिथ्याचारी कहाजाताहै ॥ ६ ॥

यस्त्विंद्रियाणिमनसानियम्यारभतेऽर्जुन
कर्मेंद्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते ॥

दोहा—रोकेइंद्रिनचित्तसों, कर्मनियमनिरचाइ ॥
फलअभिलाषाकोतजे, तातेंयहअधिकाइ ॥७॥

हे अर्जुन ! जो कोई नेत्र आदि इंद्रियोंको मनसे रोककर अर्थात् अपने सब कर्मोंमें अपनेको भगवान्के आधीन जान कर्मइन्द्रियोंसे कर्मयोगका आरंभ करताहै और फलकी अभिलाषा नहीं करता वही श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

नियतंकुरुकर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्रापिचतेनप्रसिद्ध्येदकर्मणः॥८॥

दोहा—अनकरिबेकर्महिकहे. भलेकर्मकरिमीत ॥
बिनुकीनेतेकर्मके, देह न निवहे रीत ॥ ८ ॥

इससे हे अर्जुन ! तू निश्चय करके कर्म कर, कर्म न करनेसे कर्म करना श्रेष्ठ है. और कर्म करना छोड देनेसे तेरे शरीरका निर्वाह होना भी कठिन होजायगा ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयंकर्मबंधनः
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगःसमाचर ॥९॥

दोहा—यज्ञसुकर्मविकर्मते, जगबंधनतेहोत ॥
तिहिंकाजेकर्मनिकरो, मेटिफलनकेगोत ॥९॥

यज्ञ जो विष्णु भगवान उनके आराधनार्थ जो कर्म हैं, उन्हे छोडकर जितने इस संसारमें कर्महैं वे सब बन्धनरूप हैं. इसलिये हे अर्जुन ! विष्णुभगवान्‌की आराधनाके निमित्त तू निष्काम होकर कर्म करनेमें प्रविष्ठ हो ॥ ९ ॥

सहयज्ञाःप्रजाःसृष्ट्वापुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक्

दोहा—यज्ञसहितरचिजगतको, कहीविधाताबात॥
उदयतुह्मारोयज्ञतें, कामधेनु यह तात ॥ १० ॥

परमात्माने सृष्टि रचनेके समय यज्ञके साथ प्रजाको रचकर कहा कि, इससे तुह्मारी वृद्धि होगी और यही तुह्मारे सब मनोरथोंको पूर्ण करैगा ॥ १० ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः ॥
परस्परंभावयंतःश्रेयःपरमवाप्स्यथ ॥ ११

दोहा-यज्ञनिकरिदेवनितजो, देवतुह्मेंफलदेहु ॥
वृद्धि परस्परयोंकरौ, मनवांछितफललेहु ॥ ११ ॥

तुम यज्ञादि कर्मसे देवताओंका पूजन कर उनकी वृद्धि करो, तब वे देवताभी वर्षादिसे अन्नादिकी वृद्धि कर तुह्मारी वृद्धि करेंगे. इस तरह आपसमें एक दूसरेकी वृद्धिकरनेमें तुम सबका बहुत भला होगा ॥ ११

इष्टान्भोगान्हिवोदेवादास्यंतेयज्ञभाविताः
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेनएवसः ॥

दोहा-इष्टभोगकूँदेतहैं, देवतजैतेमित्त ॥
बिनपूछेतेलेतहैं, तेहैंचोरनचित्त ॥ १२ ॥

यज्ञोंसे पूजे हुए ये देवता तुमको अभीष्ट भोग देंगे और जो कोई इनके दिये भोगोंको इनहीके निमित्त दिये बिना भोगेंगा वे चोरहैं १२

यज्ञशिष्टाशिनःसंतोमुच्यंतेसर्वकिल्बिषैः।
भुंजते तेत्वघंपापायेपचंत्यात्मकारणात् ॥

दोहा-यज्ञशेषजोखातहैं, पापनडारतधोइ ॥
यज्ञविनाजोखातहैं, अघनि ग्रहतहैंसोइ ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो बलिवैश्वदेवादि पंचयज्ञकरके भोजन करते हैं वे महात्मा गृहस्थियोंके पांच पापोंसे छूट जाते हैं और जो कोई अपने लिये भोजन बनाते हैं और बिना देवताओंके अर्पण किये आपही खालेतेहै वे पापी पापोंको भोगते हैं ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवंतिभूतानिपर्जन्यादन्नसंभवः ॥
यज्ञाद्भवतिपर्जन्योयज्ञःकर्मसमुद्भवः १४

दोहा–जीवअन्नतेंहोतहै, अन्नमेहतेहोय ॥
मेहयज्ञतेंहोतहैं, यज्ञकर्मतेंजोय ॥ १४ ॥

हे अर्जुन! संपूर्ण प्राणी अन्नसे होतेहैं अर्थात् जब अन्न पेटमें जाताहै तब रसरूप हो शुक्र शोणितकी वृद्धि कर प्राणियोंकोउत्पन्नकरताहै यह अन्न मेहसे होताहै. मेह यज्ञसे होता है और यज्ञ कर्मसे होताहै १४

कर्मब्रह्मोद्भवंविद्धिब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतंब्रह्मनित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् ॥

दोहा–कर्मजुउपजैवेदतें, वेदब्रह्मतेमानि ॥
ब्रह्मजुभाषतसबनिमें, ताहियज्ञकरिजानि॥१५

कर्मकी उत्पत्ति वेदसे होती है और वेद अक्षर जो परब्रह्म उससे होताहै, वह ब्रह्म सबमें व्यापक है और यज्ञमें सदैव रहताहै इससे यज्ञादि कर्म अवश्यही कर्तव्यहैं ॥ १५ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः ॥
अघायुरिंद्रियारामोमोघंपार्थसजीवति१६

दोहा–वेदवंतयाकर्मको, जे न करतजनकोय ॥
पापी इंद्रीवशभये, जनम रहतहैंखोय ॥ १६ ॥

हे अर्जुन! वेदसे कर्म, कर्मसे यज्ञ, यज्ञसे मेह, मेहसे अन्न, अन्नसे प्राणी और प्राणियोंसे फिर कर्मकी प्रवृत्ति इस प्रकार ईश्वरने यह चक्र घुमायाहै इसलिये ईश्वराराधनरूप यज्ञादिके कर्ममें जो प्रवृत्त नहीं होते हैं केवल इन्द्रियोंके विषय भोगोंमें लगेरहते हैं उनका जीवन निष्फलहै

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्चमानवः॥
आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते ॥

दोहा–आतमसोंसंतुष्टजे, आतमसोंरतिहोय॥
तृप्तिजुआतमसोंरहै, ताहिनकरनोकोय ॥१७॥

हे अर्जुन ! जिसकी आत्माहीसे प्रीति है, और जिसकी आत्माही से तृप्तिहै और जो आत्माहीमें संतुष्ट है. जिसे इन्द्रियविषयोंसे कुछ आसक्ति नहीं है ऐसे तत्वज्ञानी पुरुषको किसी कर्मके करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १७॥

नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥
नचास्यसर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः१८

दोहा–जाहिकरेते पुनिनहीं, विनुकीन्हेंनहिंदोष॥
ब्रह्मादिकसोंकाजनहीं, आत्माहीसोंमोष॥१८॥

ऐसे ज्ञानीपुरुषको कर्म करनेसे कुछ पुण्य नहीं है और कर्म न करनेसे पापभी नहीं हैं। क्योंकि ज्ञानी निरहंकार है, इससे उसे कुछ बिधि निषेध नहीं है, और न ज्ञानीको प्राणीमात्रका आश्रय लेनेकीभी कुछ आवश्यकता है ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोतिपूरुषः१९

दोहा–फलकामनिकोछाँडिके, कर्मकरोतुमनित्त॥
संगविनाकर्मनिकरैं, मुक्तिलहतहैंमित्त ॥ १९॥

इससे हे अर्जुन ! फलकी अभिलाषाको छोड जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं, उन्हें निरंतर कर। जो फलकी अभिलाषा छोड कर्म करते हैं उन्हे अवश्य मोक्ष मिलती है।संध्यावन्दनादि नित्यकर्म हैं और पुत्रादिके जन्म होनेके निमित्त जो कर्म किये जाते हैं जैसे जात कर्मआदि, सो नैमित्तिक कर्म हैं ॥ १९ ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥

दोहा—लहीसिद्धिजनकादिहूं, कीन्हेकर्मसमाज ॥
तुम्हैंदेखिऔरउकरे,याते करोसुकाज ॥ २० ॥

जनकादिक जो ज्ञानी होगये हैं उनकोभी कर्म करनेहीसे सिद्धि मिलीथी, इससे जो तू अपने को बडा ज्ञानी समझता है तोभी लोक संग्रहके लिये तुझको कर्म करना उचित है। अर्थात् जो ज्ञानी कर्म छोड देंगे तो उनकी देखा देखी अज्ञानीभी कर्मको त्याग बैठेंगे २०

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ॥
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते २१

दोहा—बडेजु आचारहिकरैं, सोईमानतआन ॥
ताही मगसबजनचलैं, बडेकरैंजुप्रमान ॥२१॥

हे अर्जुन ! बडे आदमी जो जो कर्म करते हैं उन्ही कर्मोंको साधारण मनुष्य किया करते हैं और जिन बातोंको वे प्रमाण मानते हैं लोगभी उसीके अनुगामी हो जाते हैं ॥ २१ ॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

दोहा–मोकोंकछुकरनोनहीं, तिहूंलोकमेंकाज ॥
कछुनलह्योलहिबेनकछु,कर्मकरतयासाज ॥२२

हे पार्थ! तू मुझको देखले,तीनों लोकमें मुझे कुछ करना नहीं है न कोई वस्तु मुझे अलभ्य है, न किसी वस्तुके प्राप्त करनेकी अभिलाषा है तथापि कर्म कियाही करता हूं ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतंद्रितः ॥
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

दोहा–जोहूंकर्मनिनहिंकरौं. रहुंआलसहितमीत ॥
सोहीसबनरहूरहैं, मेरेमनयहरीत ॥ २३ ॥

हे पार्थ! जो मैंही, आलस्य छोड सावधान हो कर्म करनेमें प्रवृत्त न होऊं तौ ये मनुष्य सब प्रकारसे मेरेही अनुगामी होंगे, अर्थात् कर्म करना छोड देंगे ॥ २३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाःप्रजाः॥

दोहा–जोहौंकर्मनिनहिंकरौं, होइसबनकोनास ॥
प्रगटाऊंसंकरतबै, हनौंप्रजायहत्रास ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जो मैं कमकरना छोड दूं तौ कर्मके लोप होजानेसे धर्म नष्ट हो जायगा. जिससे ये सब लोक नष्ट हो जायंगे और सृष्टि वर्णसंकर होने लगैगी, तौ यह संकरकर्ता मैंही ठहरूंगा और इस प्रजाको नष्ट करनेवालाभी मैंहीं होऊंगा ॥ २४ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्ताश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्

दोहा–मूरखजोकर्मनिकरै, करवहुप्राप्तिसुभाइ ॥
लोककाजज्ञानीकरै, ममतासोंनलगाइ ॥ २५ ॥

हे भारत ! जैसे अज्ञानी लोग काम करनेमें आसक्त होकर कर्म करते हैं. वैसेही लोकसंग्रहके निमित्त अर्थात् सबको शिक्षा देनेके लिये विद्वान् लोग कर्ममें आसक्त न होकर कर्म करते हैं ॥ २५ ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥

दोहा–तिनबुद्धिभेदनतजे, रहैकर्मलपटाइ ॥
सावधानज्ञानीरहै, पोषैतेइदाइ ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! जो अज्ञानी हैं और कर्म करनेमें आसक्त हैं उनको कर्म न करनेका उपदेश देकर उनकी बुद्धिमें भेद उत्पन्न न करै. विद्वान लोगोंको उचित है कि,आपभी सावधान होकर उनसे कर्म करावै२६

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

दोहा-मायाकेगुणरहितहैं, सबैकर्मयहजानि ॥
अहंकारकरिमूढजे, लेतअपनपैंमानि ॥ २७॥

हे अर्जुन! प्रकृतिके गुणोंसे ये संपूर्ण कार्य हो रहे हैं, परन्तु अहंकारसे विमूढ होगई है बुद्धि जिनकी सो अपनेको इन सब बातोंका करनेवाला मानते हैं ॥ २७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः॥
गुणा गुणेषु वर्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥

दोहा-गुणअरुकर्मविभागको,जानततत्वजोकोय
इंद्रीविषयनसोंलगी, आपमगननहिंहोय॥२८

और हे महाबाहो! जो गुण और कर्मके विभागोंके तत्त्वको जानते हैं वे यही मानते हैं कि, सत्त्वादिक गुण अपने २ कार्योंमें वर्तमानहैं. इससे उनमें आसक्त नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्नविचालयेत

दोहा-मायागुणकरिमूढजे, रहैंविषयलवलाय ॥
तेहिमगतेजानैतिन्हैं, देइनकहूंचलाय ॥ २९॥

प्रकृति जो माया उसके सत, रज, तम गुणोंमें जो मनुष्य अत्यन्त मोहित होरहे हैं वेही उसके गुणकर्ममें आसक्त होतेहैं उन अल्पज्ञ मन्द पुरुषोंको ज्ञानी मनुष्य कर्ममार्गसे न हटावे. इसका यह अभिप्राय है कि तू अल्पज्ञ है अतः कर्मकर ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धयस्व विगतज्वरः

दोहा-चितअध्यातमआनिकै,कर्मनसौंलौराखि॥
व्हैअकाममममतातजौ,युद्धहिकौंअभिलाखि॥

हे अर्जुन! क्षत्रियोंका जो शूरवीरपनेका स्वभाव है, उस स्वभावसे आत्मामें मन लगाय संपूर्ण कर्मोंको मुझमें आरोपण कर फलकी आशा और ममताको छोड सब संतापोंसे रहितहो युद्ध करो॥३०॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः॥
श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ३१

दोहा-जे नित या मेरे मतहि, श्रद्धासों गहिलेत॥
जिनकेजियनिहकर्म्महै,करैकर्मनहिंचेत॥ ३१

हे अर्जुन जो मनुष्य श्रद्धालु होय, और मेरे वाक्यकी निन्दा न करके इस मेरे मतको नित्य स्वीकार करतेहैं अथात् कर्म करनेमें प्रवृत्त होजातेहैं वेभी इन कर्म बंधनोंसे छूट जाते हैं॥ ३१॥

येत्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम्॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः॥३२॥

दोहा-जोयामेरेमतहिको,-करतसदोषलगाय॥
तेमूरखजानतनहीं, हैं अचेतकेभाय॥ ३२॥

हे अर्जुन! जो मेरे इस मतको अंगीकार नहीं करतेहैं और उसकी निन्दा करते हैं उनको किसी प्रकारका ज्ञान नहीं है और उनको विचारहीन तथा नष्ट समझो ॥ ३२॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्याति ३३

दोहा–ज्ञानवंतजूकरतहैं, अपनीप्रकृतिसमान ॥
सबकोऊनिजप्रकृतिवश, ऐकेतेजुअज्ञान ॥ ३३

ज्ञानवान् मनुष्यभी अपने स्वभावहीके अनुसार काम करतेहैं, फिर जो अज्ञानी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करें तौ कहनाही क्या है, संपूर्ण प्राणी अपनी प्रकृतिके अनुसार काम करतेहैं क्योंकि प्रकृति बलवान है इसमें इन्द्रियोंका निग्रह कुछ नहीं कर सकताहै ॥ ३३ ॥

इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थेरागद्वेषौव्यवस्थितौ ॥
तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरिपंथिनौ ॥

दोहा–सबइंद्रिनकेविषयमें, रागद्वेषजोहोइ ॥
तिनकेवशनरजाइनहिं, रहैजुअरिसमहोइ॥ ३४

हे अर्जुन! प्रत्येक इन्द्रियका अपने अपने विषयमें राग द्वेष है, इस राग द्वेषके वशीभूत होना उचित नहीं है, क्योंकि ये दोनों मोक्षमें विघ्न करनेवाले हैं. ॥३४ ॥

श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मेनिधनंश्रेयःपरधर्मोभयावहः॥ ३५

दोहा–ऊनहोयनिजधरमह्न, परतेंअधिकौमानि ॥
मीचंभली निजधर्ममें,परधर्महिभयजानि३५

हे अर्जुन! अच्छीतरह कियेहुएभी परधर्मसे अपना धर्म अंगहीन अर्थात् गुणरहित होनेपरभी श्रेष्ठ है, अपने धर्ममें तो मरनाभी श्रेष्ठ है और परधर्म भयानक है अर्थात् तेरा जो युद्धरूप क्षत्रियधर्म है इसमें मरनेपरभी स्वर्ग मिलेगा और इसको छोड देनेसे नरक होगा ॥३५॥

समीक्षा–यहां इस श्लोकके तीन अर्थ हैं. प्रथम तो यह कि शरीर मरण धर्मी है, आत्मा मरण धर्मी नहीं है, आत्मा तो केवल नवीन और जीर्णवस्त्रोंकी भांति नवीन और जीर्ण शरीरोंका ग्रहण और त्याग करता है. अतः जो तू (अर्जुन) यह समझता है कि इससमय यह जो मैं हूं और यह जो मेरे सम्बन्धी हैं,यदि हम युद्ध में मरखप जायेंगे (अर्थात् वर्त्तमान शरीरोंको त्याग देंगे) तो हम सदाके लियेही नष्ट होजायेंगे, यह तेरा समझना अज्ञान मात्रही है, क्योंकि नित्य (आत्मा) को अनित्य (शरीर) मानना मूढता नहीं तो क्या है ! अतः यह सिद्ध हुवा कि स्वधर्मको अर्थात् आत्माके नित्यतारूपी धर्मको छोड दूसरेका धर्म अर्थात् शरीर के अनित्यता-रूपी धर्मको धारणकरना भयकारी है अर्थात् ऐसा माननेसे बहुत हानि है। अथवा इसी अर्थको इस प्रकार समझना चाहिये कि जीवात्मा शुद्धस्वरूप है अज्ञानसे इंद्रियोंके धर्मोंको अपने धर्म समझ बैठा है. इसलिये इस जीवात्माको अपने शुद्धस्वरूपमें स्थिर होनेकी चेष्टा करनी चाहिये अर्थात् आत्माको तो निर्मल ब्रह्मज्ञानसेही आनंद प्राप्त होसक्ता- है, इंद्रियोंके विषयोंमें फंसनेसे न तो बहुत हानि उठानी होगी. दूसरा अर्थ यह है कि अर्जुनने क्षत्रियधर्मके पालने की गुरुकुलमेंही जब गुरूके सामने प्रतिज्ञा कीथी तो इसको अबभी

युद्धादि क्षात्रधर्मका ही पालन करना चाहिये. यदि ऐसा नहीं करनाथा तो वहां बिना विचारे प्रतिज्ञा क्यों की, प्राचीन कालमें यही नियम था कि गुरूके सामने अपना २ वर्ण स्वीकार करना होताथा. तीसरा अर्थ यह है कि युद्ध भूमिमें आनेसे पूर्वही अर्जुनने दुर्योधनादिके साथ लडनेकी प्रतिज्ञाकीथी और इस समय युद्धसे हटना चाहता है तो इसमेंभी प्रतिज्ञाका भंग होता है, और यहभी बातथी कि श्रीकृष्ण महाराजका अभीष्ट दुष्टोंको नष्ट करके लोक मर्यादा स्थापित करना था, जो इस समय अर्जुनको युद्धसे हटनेकी अनुमति देते तो लोकमें धर्ममर्यादा स्थापित नहीं हो सकीथी, अतः उन्होने वीरताके साथ युद्ध क्षेत्रमें रहकर फलाफल-का विचार न देखते हुए लडनेकाही उपदेश अर्जुनको दिया.

॥ अर्जुन उवाच ॥

अथकेनप्रयुक्तोऽयंपापंचरतिपूरुषः ॥
अनिच्छन्नपिवार्ष्णेयबलादिवनियोजितः

दोहा–जाकेइच्छानाहिनैं, कर्मदेतसंताप ॥
कहिये प्रेरैकौनके, पुरुषकरतहैंपाप ॥ ३६ ॥

हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! पापकर्म करनेकी इच्छा किसीकी नहीं होतीहै. फिरभी ऐसे, जैसे कोई बलपूर्वक कराता है. वह मनुष्य पाप करने में प्रवृत्त होजाता है. इसलिये इस पापकर्ममें प्रवृत्ति करानेवाला कोई न कोई अवश्य है. सो हे कृष्ण ! वह कौन है ? ॥ ३६ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

कामएषक्रोधएषरजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनोमहापाप्माविद्धयेनमिहवैरिणम्

दोहा-यहजुकामअरुक्रोधहै, रजगुणहीतेहोइ ॥
क्योंहूंपूरणहोइनहिं,पापीकेअरिजोइ ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! यह काम अर्थात कामनाही है-जो किसी प्रकारसे फलवती न होनेपर क्रोधमें परिणत होजाती है, इस क्रोधकी उत्पत्ति रजोगुणसे है, यह काम बडा खानेवाला है, अर्थात अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआभी नहीं अघाता है और यह क्रोध बडा पापी है, इसे मनुष्योंका परम शत्रु समझो ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियतेवह्निर्यथाऽऽदर्शोमलेनच ॥
यथोल्वेनावृतोगर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

दोहा-आगिढपैज्योंधूमसों,दर्पनमलकेभाइ ॥
गर्भजरासोंज्योंढपै, जगे न ताही दाइ ॥३८॥

जैसे अग्नि धुंयेंसे ढका रहता है, दर्पण मलसे आच्छादित होता है और गर्भ जरासे आवृत रहता है-वैसेही यह ज्ञानभी कामनासे ढका-हुआ रहता है ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेनज्ञानिनोनित्यवैरिणा ॥
कामरूपेणकौंतेयदुष्पूरेणानलेनच ॥३९

दोहा-ज्ञानीहूकेज्ञानइन, वैरीराख्योढाँपि ॥
कामदुसहयहआग्नि है, सकैनकोऊदाँपि ॥३९॥

हे कुंतीपुत्र ! यह मनुष्यका सदा बैरी है, भोगोंका भोगतेहुएभी कभी नहीं अघाता है और जैसे अग्नि ईंधन मिलनेसे बढता है वैसेही ज्यों ज्यों इसेभोग्य वस्तु मिलती है वैसेही वैसे बढताहै और भोग्य

पदार्थोंके न मिलनेपर अग्निकी तरह जलाता है. ऐसे इस कामने ज्ञानियोंका ज्ञानभी ढक रक्खा है ॥ ३९ ॥

इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते। एतैर्विमोहयत्येषज्ञानमावृत्यदेहिनम् ॥

दोहा--इंद्रीमनअरुबुद्धिहै, येईजाकौथान ॥
इन करिकैसोनसतुहै, ज्ञानीहूकोज्ञान ॥ ४० ॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण इन्द्रियां, मन और बुद्धि ये कामके उत्पत्तिस्थान और रहनेकी जगह हैं यह काम इन्हींके द्वारा ज्ञानको ढककर आत्माको मोह उत्पन्न करता है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौनियम्यभरतर्षभ पाप्मानंप्रजहिह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्

दोहा--अर्जुनतातेप्रथमही, तूं इंद्रिनको रोकि ॥
हरतज्ञानविज्ञानको, पापमूल लखिठोकि ॥४१

हे भरतकुलभूषण ! ऊपर कहेहुए हेतुओंसे तू प्रथम इन्द्रियगण, मन और बुद्धिको रोककर इस कामको वश करले क्योंकि यह बडा पापात्मा है और आत्मज्ञान तथा शास्त्रज्ञान दोनोंको नष्ट कर देता है

इंद्रियाणिपराण्याहुरिंद्रियेभ्यःपरंमनः ॥ मनसस्तुपरा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तुसः ४२

दोहा--इन्द्रियहैसबतेपरे, तिनतेपरमनजाय ॥
मनतेपरेजुबुद्धिहै, तातेंआतमहोय ॥ ४२ ॥

बाह्य जो स्थूल पदार्थ हैं, उनसे इन्द्रिय पर और श्रेष्ठ हैं. इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है. मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है और जो बुद्धिसे परे है वही आत्मा सर्व श्रेष्ठ है इसी आत्माको यह दुष्ट काम मोहित करता है ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥

दोहा–आतमलखियेबुद्धिपर, मनकोकरिवशमाह।
कामरूपअरिदुसहको, मारिडारिनरनाह ॥४३
कह्योतीसरेध्यायमें, कर्मयोगयदुनाथ ॥
पूजैयाकोभक्तिसों, हरितारैदेहाथ ॥ १ ॥
कीनोआनंदरामयह, कर्मयोगबहुभाय ॥
कृष्णकृपाकरिहेरिये, रहियेसदासहाय ॥ २ ॥

हे महाबाहो अर्जुन ! इस तरह बुद्धिसे परे आत्माको जानकर और मनको निश्चलरूपसे वशमें लाकर इस महाअजेय कामरूप शत्रुका दमन कर ॥ ४३ ॥

इतिश्रीभवगद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णाऽर्जुन संवादेविचारदर्पणदोहासहितभाषाटीकायां कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

समीक्षा–इस अध्यायमें श्रीकृष्ण महाराजने अर्जुनको यह उपदेश दिया है कि जो मनुष्य परोपकारादि कार्योंमें कुछ भाग न लेकर केवल अपने भरण पोषणमें लगे रहतेहैं.उनका जीना व्यर्थही है, अतः हम सबको चाहिये कि यथा संभव और यथाशक्ति " यज्ञ " अर्थात् परोपकारादि कामोंमें लगे रहें.

'यज्ञ' शब्द यज धातुसे बनता है. जिसका अर्थ यह है देवपूजा, संगति करण और दान,

१—देव शब्द कई अर्थोंमें प्रयुक्त होता है परंतु इस अध्यायमें मुख्य दोही अर्थ है अर्थात् (क) विद्वानोंका संग करना 'देवपूजा' है (ख) अग्निमें सुगंधित और आरोग्यकारक पदार्थोंका हवन करना 'देवपूजा' है।

विद्वानोंके संगसे ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति होती है और अग्निमें हवन करनेसे वायुके रोगकारक जंतुओंका नाश होकर, अथवा रोग कारक सूक्ष्म पदार्थोंका परिवर्तन होकर हम लोगोंकी आरोग्यता बढती है और वही अग्निमें दी हुई आहुतियां सूर्य किरणों द्वारा आकाशमें जाकर उत्तम वर्षाकी हेतु होती हैं अर्थात् यथा-समयपर वर्षा होने लगती है और अतिवृष्टि और अनावृष्टि न होकर देश अकाल पीडित नहीं होने पाता है।

मेघ वर्षाने वाली परमात्माकी शक्तिका नाम इंद्रदेव है. हवन करनेसे वह शक्ति विशेष उत्तम वर्षा देती है यह "इंद्रदेव" का प्रसन्न होनाहै. अतः अग्नि, सूर्य, वायु आदि पदार्थोंको यथावत जानना और उनसे कामलेना तथा विद्वानोंका संग करना "देव पूजा" हुवा।

२—संगति करण—प्रमाणों द्वारा अपने संशय और भ्रमको दूर करना "संगति करण" है अथवा संसारमें न्यायसत्ताकी व्यवस्था स्थापित करना संगति करण है.

३—देश हितकारी कामोंमें तन, मन, धनसे सहायक बनना "दान" का अर्थ है.

"यज्ञोवै विष्णुः" ब्राह्मण ग्रंथोंमें लिखागया है, अर्थात परमेश्वरका नामभी यज्ञ है, अतः

परमात्माकी इच्छा पर सब कर्मोंका फल छोड निष्काम होकर कर्म करनाभी "यज्ञ" कहलाता है.

अध्याय ३ के दश, ग्यारह, बारह, तेरह श्लोकों में इसी आशयको लेकर "यज्ञ कर्म" की महिमा बताई गई है अर्थात् तात्पर्य यह है कि अपने नित्यके भोजनमेंसेभी कुछ भाग परोपकारार्थ निकाल देना चाहिये नहीं तो नित्य भोजन बनानेमें पांच पाप ही होतेहैं. यथा (१) चूल्हामें अग्नि जलाना (२) झाड़ू देना. [३] चाकी [४] ऊखल मूसलको काममें लाना और [५] बर्तनोंमें पानी रखना. इनसे छोटे २ जीव जंतुओंकी हिंसा होतीहै यही पंच पाप हैं. जब इन क्षुद्र पापोंके बंधनसे छुटकारा नहीं होसक्ता है तो बडे २ पापोंकी वार्ताही क्या है. हम लोगोंको चाहिये कि सदा परोपकारादि उत्तम पुण्य कार्योंको करते रहें, यही प्रेरणा सृष्टिके आदिमें परमात्माकी ओरसे वेदोंके रूपमें महर्षियोंके अंतःकरणमें हुईथी (देखो अ० ३ श्लो० १०)

अथ विचारदर्पण तृतीय दर्शन प्रारम्भः

प्रचीन और वर्त्तमान समय के हिन्दुओं (आर्यों) में भेद

[हमने जो प्राचीन समय और वर्तमान समयका नीचे भेद दिखाया है उससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि वर्तमान समय के सभी स्त्री पुरुष अच्छे नहीं हैं।परंतु प्रयोजन यह है कि वर्त्तमान समयमें अधिक लोग प्राचीन समयके मनुष्योंकी अपेक्षा उत्तम गुणोंमें इस समय गिरे हुए दिखाई देते हैं । इसलिये इस भेद को देखकर हम लोग अपनी २ दशाको सुधारें और हमारी भारत माताके मुखको उज्वल करें, हमको यही अभीष्ट है]

हम नीचे यह दिखाना चाहते हैं कि पूर्व कालके हिन्दुओं (आर्यों) की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक दशा कैसी थी और आजकल हमारी दशा क्या होरही है।

(१) प्राचीन समय-ब्राह्मण लोग समस्त भूमंडलमें भ्रमण करनेवाले और योग, ज्योतिष द्वारा अखिल ब्रह्मांडका वृत्तांत जाननेवाले होते थे। वेद, वेदांगपारग होनेके कारण लोगोंको धर्म, अर्थ दोनोंके उपार्जन करनेकी विधि बता सकनेसे " महाराज " कहलानेके योग्य थे।

वर्त्तमान समय-अधिकांश ब्राह्मण लोग ऐसे कूपमंडूक बनगये हैं कि लोक लोकांतरोंका वृत्तात जानना तो दूर रहा भारतवर्ष के भिन्न २ प्रांतोंकाही पूरा ज्ञान नहीं रखते। दूसरोंको अर्थोपार्जन की विधि बताना तो दूर रहा स्वयं मांगने और सेवावृत्ति करने के अतिरिक्त कोई वृत्तिका साधन नहीं जानते जिसका फल यह हुवा कि " भिक्षुक " और " महादास " कहलाने के योग्य बन गये हैं॥

(२) प्राचीन समय- क्षत्री लोग विद्वान, जितेन्द्रिय, न्यायकारी रक्षक और प्रजा पालक होते थे।

वर्त्तमान समय-अधिकांश क्षत्री अपठित विषयप्रेमी, स्वयं दीन और येन केन प्रकारेण पर द्रव्य हरने की इच्छा वाले होते हैं। प्रायः अपना और अपने कुटुंबका भरण पोषण करनेमें भी असमर्थ दिखाई देते हैं।

(३) प्राचीन समय- वैश्य विद्वान, जितेन्द्रिय, समुद्रयात्रा करके देशदेशांतरों में व्यापार करने वाले, प्रायःसत्यवादी और सात्विक दान करने वाले थे, और इतने धनाढ्य होते थे कि जिनके पास हाथियों की अगणित संख्या रहती थी, जैसा कि नलदमयंती के उपाख्यानमें एक वैश्य के हाथियोंके यूथका वर्णन है। आबू पर्वतपर एक जैनी वैश्य का बनाया हुवा मंदिर है, जिसपर दश करोड़ रुपयोंसे अधिक लागत आई थी।

वर्त्तमान समय-अधिकांश वैश्य ऐसे देखने में आते हैं जो देवनागरीका लिखना पढ़ना, भी नहीं जानते। यज्ञोपवीत संस्कारसे रहित, भीरु, समुद्रयात्राके नामसे डरने वाले, नामके लिये कुपात्रों को दान देनेवाले, कामी, प्रतिज्ञा भंग करनेवाले, देशाभिमान शून्य, व्यापार विज्ञान न जाननेके कारण देशकी दरिद्रताको बढाने वाले पराधीन व्यापार करते दीख पडते हैं।

(४) प्राचीन समय-जो पुरुष मलीनता, मूर्खता और दरिद्रता लिये रहताथा उसीको शूद्र कहते थे।

शूद्र शब्द की व्युत्पत्तिही स्पष्ट बतारही है कि शुद्धिको त्यागने वाला

अर्थात्. मलीनता को धारणकरनेवालाही शूद्र कहलाता है यथा–
शूचं द्रवतीति शूद्रः ।
(अर्थ)–शुद्धि अर्थात् स्वच्छता को जो त्यागता है वह शूद्र है ।

जन्मसे शूद्र होतेहुवेभी जो लोग विद्वान और धर्मात्मा बन जातेथे, उनका पूर्ण आदर और सन्मान भी होताथा. यथा विदुरमहाराज और वाल्मीकि मुनिका वर्णन हुवा; कितनेही मनुष्य कहतेहैं कि पुराणोंमें शूद्रोंकी उत्पत्ति श्रीविष्णु भगवानके चरणोंसे लिखी है इसलिये वह इतर तीन वर्णोंसे नीच माने जाने चाहियें और विद्वान धार्मिक होनेपरभी ब्राह्मणोंके सदृश पूजापानेके योग्य नहीं हैं। परन्तु उन्होंने इस बातपर कभी भी ध्यान नहीं दिया कि श्रीगंगाजीकी उत्पत्ति भी श्रीविष्णु भगवान के चरणोंसे मानी गई है।श्रीगंगाजी की कितनी बडी महिमा हिन्दुओं(आर्यों) के हृदयमें है? यहांतक कि श्रीगंगाजीके जल में स्नान करने से ब्राह्मण लोग अपना अहोभाग्य मानते हैं । इसीलिये प्राचीनकाल के शूद्र, शूद्रमाता पिताकी सन्तान होने परभी अपनी मलीनता, मूर्खता, और दरिद्रता का नाशकरतेहुए विद्वान धर्मात्मा और पूजनीय होनेकी चेष्टा करते थे, और अपनी सफलता का फल भोगसक्ते थे ।

वर्तमान समय– शूद्र लोग अपनी जाति को नीची मानकर निरुत्साही और आलसी बनरहे हैं; उत्तमजनों द्वारा उपदेश मिलने परभी अपने शूद्रभावको न छोडने की इच्छावाले देखने में आरहे हैं। अपनी मलीनता और दरिद्रता और मूर्खता में ही संतुष्ट बन रहे हैं । धर्मसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। अज्ञानी होनेके कारण भूत प्रेतादिको पूजते हैं। आर्य धर्मके गौरवसे शून्य दिखाई देरहे हैं, जिससे हिन्दू (आर्य) जाति सब प्रकार से बडी निर्बल होगई है। क्योंकि अधिकांश मनुष्य दरिद्रता, मलीनता और मूर्खताके कारण शूद्रों और अतिशूद्रों की पंक्ति में होगये हैं। जबतक यह भाग नीचभावको त्यागकर अपनी योग्यता न बढालेगा तबतक यह हिन्दूसमाज कदापि सुखी नहीं बन सक्ता।

(५) प्राचीन समय– ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थीजन बल बुद्धि बढानेवाले साधन ब्रह्मचर्य को अधिक मानकी दृष्टि से देखते हुए बीस पचीस वर्ष की अवस्था पर्यंत पूर्णरूप से वीर्यरक्षा करके बलिष्ठ, दृढांग और नेत्रों की ज्योति धारण करने वाले और विद्वान होतेथे ।

वर्त्तमानसमय–में विद्यार्थी प्रायःऐसेदेखनेमेंआरहेहैं कि दशबारह वर्षकी अवस्थामेंविवाह होनेसे वह गृहस्थी बन जाते हैं।जिससे अल्पायु रोगी, निर्बल, और वैद्य डाक्टरकी इच्छा रखनेवाले शोकातुर,आलसी, निरुत्साही और आंखोंकी ज्योति खो बैठनेवाले चश्माधारी दिखाई देरहे हैं. शोक! भारतवर्षकी उन्नतिकी जड इसीलिये निर्बल और ढीली होगई है।

(६) प्राचीन समय– गृहस्थजन माता पिता की सेवा करने वाले, विद्वान जितेन्द्रिय,धर्मात्मा,सन्तानोत्पत्ति के निमित्त ऋतु समय मेंही अपनी स्त्री से प्रसंग करने वाले यथाशक्ति उत्तम कार्यों में द्रव्य लगाने वाले, ईश्वरभक्त, विद्याप्रेमी और अपनी सन्तानोंको बालकपनसे विद्वान, धर्मात्मा और बलिष्ठ बनाकर बडी अवस्था में उनका विवाह करनेवाले, कुरीतियों के शत्रु और शूर वीर होते थे। चतुर्थअवस्था में घरका मोह छोडकर एकांत वास करके ईश्वरका भजन करने वाले होते थे। उस समय के मनुष्य सौ पीछे नब्बे पठित और विद्वान होते थे। धन धान्यसे इतने समृद्ध थे, कि मूर्ख और निर्धनता का कोई नाम नहीं जानता था।

वर्त्तमान समय– अधिकांश गृहस्थ लोग जीवित माता पिताको दुःख देने वाले, उनके मरने पर अपनी नाम बडाई के लिये उनके नाम पर कुपात्रों और मूर्खोंको भोजन खिलाकर निरर्थक रुपये का व्यय करने वाले, देशसेवा और जाति सेवासे दूर भागने वाले, विद्या और उन्नति के कामों से पीछे हटनेवाले, अपने बालकों को विद्वान और धर्मात्मा न बनाकर छोटी अवस्था में ही उनका विवाह करके उनको मूर्ख, निर्बल, और भीरु बनाने वाले, मरणांत समय तक अन्याय से द्रव्योपार्जन करते हुए सदा सांसारिक पदार्थोंमें लिपटनेवाले दीखपडतेहैं। प्रतिसैकडा पीछे तिरानवे अपठित हैं। देखो मनुष्य गणना रिपोर्ट सम्वत् १९६७। भारतवर्षसे भिन्न जापान, इंग्लेन्ड (विलायत) आदि देशोंकी अत्यन्त विपरीत दशा अर्थात् सौ पीछे पंचानवे मनुष्य पठित हैं, और उनकी वार्षिक आय प्रत्येक मनुष्य पीछे हम लोगोंकी प्रत्येक मनुष्य की आजीविका से बीस गुनी अधिक है हमारी दशापर शोक! शोक!! शोक!!!

(७) प्राचीन समय– वानप्रस्थी और संन्यासी लोग स्थान २ पर जाकर गृहस्थोंको सदुपदेश देने वाले होते थे. और स्वयं अध्यात्म विद्या की खोजमें लगे हुए जितेन्द्रिय और ईश्वरभक्त पाये जाते थे।

वर्त्तमान समय– अधिकांशवानप्रस्थी और संन्यासी मूर्ख, गंजेडी, भंगेडी, क्रोधी और अनेक प्रकारसे गृहस्थोंको दुःखदायी देखनेमें आरहेहैं। अनेक प्रकारसे कपटके स्वांग रचकर देश को भार रूप होते हुए इन आश्रमों को लजा रहे हैं। स्मरण रखना चाहिये कि इन बावन लाख भिखमंगे नामधारी साधुओं के पालन पोषणकरने में हिन्दु (आर्य) जातिको बीस करोड रुपया वर्ष भरमें निरर्थक नष्ट करना पडता है जिससे देशकी दारिद्रता बढ रही है। इसीसे राजा प्रजा दोनों को चाहिये कि इनमें पात्र कुपात्र देखकर इनके साथ वर्ताव करें, जिससे मूर्खोंकी वृद्धि न हो।

(८) प्राचीन समय–में स्त्रियां विदुषी, पण्डिता, पतिव्रता और गृहकार्य में चतुरा, पति और सास ससुरकी आज्ञामें चलने वाली, कलह से दूर भागने वाली, और अपनी सन्तान को विद्वान, धर्मात्मा, और जितेन्द्रिय, शूरवीर, और बलवान बनाने वाली, उत्तम संगीत द्वारा अपने बच्चोंको नीति और धर्म के सदुपदेश देकर उनको प्रसन्न करने वाली साक्षात् सरस्वती रूप होती थीं और गृहस्थ आश्रम की शोभा बढाती थीं।

वर्त्तमान समय– अधिकांश स्त्रियेंमूर्खा, कलहकारिणी, सास ससुर और पतिकी आज्ञा न मानने वाली, व्यर्थ रुपयेको नष्ट करके पतिको दरिद्र बनाने वाली, आभूषण और कपडोंसे कदापि तृप्त न होनेवाली, पीर पैगम्बर, प्रेतपिशाचोंको पूजने वाली भूतप्रेतोंकी अपने में छाया आनेका दंभकरके मूर्ख घरवालोंकोडराने वाली। (मारवाड प्रांतमें तो संगीत विद्याको न जानकर मार्गों और) घरोंमें ऐसेअश्लील शब्दोंका उच्चारण करती हुई व्यभिचारका मार्ग दिखाने वाली देखपडती हैं कि जिनको वेश्याभी अपने मुखसे बोलती समयलजावे। यद्यपि भारतवर्षके सभी प्रांतोंकी स्त्रियां उपरोक्त विशेषण युक्त नहीं हैं। तथापि अधिक प्रांतोंमें तो यही दशा है जो ऊपर वर्णन की गई है।

(९) प्राचीन समय– देवालय ऐसे होते थे, कि जहां नित्य भक्ति और शांति की कथाएं होती थीं, जहांपर जाकर लोग हवन, जप, पूजा, पाठ करते थे। प्रत्येक देवालय में जो द्रव्य आताथा, वह सब विद्यालय, महाविद्यालय खोलने चलाने में और अन्य २ धर्म कार्यों में लगाया जाता था।

वर्त्तमान समय–अधिकांश देवालयों की दशा प्राचीन कालसे विपरीत देखने में आरही है। भक्तजनों के भक्तिके गान होनेकी उपदेश वेश्याओं के मुखसे उत्सवों पर गान सुनने में आता है। शांतिरसकी कथाओं के स्थानपर बनावटी, मिथ्या और व्यभिचार सूचक कामरस की कथाएं सुनाई जारही हैं। जो द्रव्य देवालयों में आता है उसको अच्छे कामों में न लगाकर पुजारी और महंतलोग भोग्य पदार्थों और व्यभिचारके साधनों की प्राप्ति में नष्ट कर देते हैं।

१०–सारांश यह है किः–

प्राचीन समय का भारतवर्ष, बल, विद्या, बुद्धि और समृद्धि के कारण सब देशोंमें शिरोमणि गिना जाता था।

वर्त्तमान समय का भारतवर्ष, बल, विद्या, बुद्धि और समृद्धि में सब देशों से हीन हुवादेख पडता है।

उपरोक्त तुलनाकरनेसे हृदय विदीर्ण होजाता है शोक ! शोक !! शोक !!!.... ....
हमारी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक दशा बडीही गिरी हुई देखने में आरही है। कितनेही विचार हीन मनुष्य कहतेहैं कि कालियुगमें उन्नति होनी कठिन है ऐसा कह कर लोगों को निरुत्साही करदेते हैं। परंतु वेद और शास्त्रोंको देखने से और श्रीकृष्ण महाराजका गीतामें दिया हुआ उपदेश देखनेसे यही परिणाम निकलता है, कि कलियुगको मानकर निरुत्साहीहोना बुद्धिमत्ता नहीं है, क्योंकि हमारे ऋषीमुनि और अवतारों ने पुरुषार्थ कोही प्रधान और उन्नतिका कारणमाना है। यह बात कहीं भी उन्होंने नहीं लिखा कि कलियुगमें पुरुषार्थ करना व्यर्थ होगा। यहबात इस समयभी प्रत्यक्ष सिद्ध है कि पुरुषार्थ करनेवालोंकी शारीरिक मानसिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक दशा उत्तम देखनेमें आती है। वीसवर्षमें बौद्धधर्मीयजापान देश वालोंकी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दशा इतनी उन्नत होगई कि उसने रूस जैसे प्रबल राष्ट्र को भी युद्धमें हराकर विजय पाई, यह पुरुषार्थका ही तो फल है।

भारतवर्षमें भी पुरुषार्थ करनेवाले अनेक मनुष्योंकी शारीरिक, मानसिक आर्थिक, और धार्मिक उन्नति प्रत्यक्ष देखनेमें आरहीहै। इसलिये कलियुगको उन्नतिका बाधक माननेवाले मूर्खोंकी बातोंका विश्वास न करके पुरुषार्थियोंपर परमेश्वरकी कृपा का भरोसाकरके हमको भी पुरुषार्थी बनना चाहिये हमको पूर्ण आशा है कि सर्व शक्तिमान जगदीश,पुरुषार्थ करनेपर हमको सन्मार्ग दिखाकर हमारा शीघ्र उद्धार करेंगे. जिससे हमारा भारतवर्षदेश भी अन्य उन्नत देशोंके सदृश कीर्ति पानेवाला होकर,देशोंकी गणनामें उच्चस्थान रखनेवाला होगा औरहिन्दू (आर्य) जाति अपना खोयाहुआ गौरव प्राप्त करके संसारकी उन्नत जातियों की गणनामें आएगी. [इति विचार दर्पणदर्शन तृतीय समाप्तः]



॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्

दोहा–यहैयोगहैमैंकह्यौ, पहिलेरविसोंआय ॥
तिनहूँसबमनुसोंकह्यौ,मनुइक्ष्वाकुसिखाय ॥१॥

हे अर्जुन ! यह कर्मयोग प्रथम मैंने सूर्यको सुनाया था सूर्यने मनुसे कहा था और मनुने अपने पुत्र इक्ष्वाकुसे कहा था. (इससे यह दिखाया है कि–यह कर्मयोग परम्परासे चला आताहै कुछ अर्जुनकोही नया उपदेश नहीं है) समीक्षा–उपरोक्त श्लोकमें सूर्यसे अभिप्राय तपोबलके तेजसे सूर्य सदृश तेजस्वी ऋषि विशेषसे है.

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥

दोहा–परंपरायायोगको, जानतहैं ऋषिराय ॥
बहुतदिनाबीतिगयो, सोयहयोगनसाय ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! यह योग इसी तरह परम्परासे चलाआताथा. अर्थात् एकसे दूसरेने सुना, दूसरेसे तीसरेने सुना, इसे राजऋषिलोग जानते थे, हे परंतप ! यही योग फिर बहुत कालबीतनेपर नष्ट होगया.

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्

दोहा-यहैपुरातनयोगमैं, तोसोंदियोबताय ॥
याते तू मोमीतहै, औरभक्तिकेभाय ॥ ३ ॥

वही यह प्राचीन योग आज मैंने तुझे सुनायाहै और तुझे सुनानेका कारण यह है कि-तू मेरा परम भक्त है और सखाभीहै, इसीलिये यह उत्तम गुप्त भेद तुझे सुनायाहै ॥ ३ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

अपरं भवतोजन्म परंजन्मविवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयांत्वमादौप्रोक्तवानिति॥

दोहा-तुमतोप्रगटेहो अवै, सूर्यपुरातनदेव ॥
तुमकवतासोंयहकह्यो, क्योंजानूँयहभेव ॥४॥

यह सुन अर्जुनने पूछा-हे कृष्ण! तुह्मारा जन्म पीछे हुआ है और सूर्यका जन्म पहिले हुआ है फिर हम यह कैसे जान सकते हैं कि आपने यह कर्मयोग सुनाया था ॥ ४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

बहूनिमेव्यतीतानिजन्मानितवचार्जुन ॥
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥५॥

दोहा-तेरे औ मेरे जनम, बीतेहैंवहुबार ॥
तूतिनकोजानतनहीं, हौंजानतनिरधार ॥५॥

अर्जुनकी बात सुन श्रीकृष्णने कहा कि-हे अर्जुन! मेरे और तेरे बहुतसे जन्म व्यतीत होगयेहैं, हे शत्रुनिकंदन! उन सब जन्मोंका वृत्तान्त मैंही जानताहूं तुम नहीं जानते हो ॥ ५ ॥

अजोऽपिसन्नव्ययात्माभूतानामीश्वरोऽपिसन्
प्रकृतिंस्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्ममायया

दोहा–अजअविनाशी प्रगटहौं, जगतईशकरतार
अपनीइच्छालेतहौं, सावधानअवतार ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! यद्यपि मेरी आत्मा अव्यय अर्थात् अविनाशी है. मैं प्राणियोंका ईश्वरभी हूं और जन्मकर्मसे रहित भी हूं तौभी अपनी सात्विकी प्रकृतिका अवलम्बन कर अपनी मायासे अवतार लेताहूँ ६

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्

दोहा–जबअर्जुनजगमेंघटत, परमधरमकेभाइ ॥
जहँतहँबढतअधर्मअति, तबजनमतमैंआइ ७

हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होतीहै तब तब मैं अवतार धारण करताहूँ ॥ ७ ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

दोहा–साधुनकीरच्छाकरौं, पापिनडारौंमारि ॥
थापितयुगतजुधर्मकी,युगयुगमाहिंविचारि॥८

हे अर्जुन! जो साधु महात्मा अपने धर्मपर स्थित हैं उनकी रक्षाके लिये पापियोंके नाशके लिये और धर्मकी संस्थापनाके निमित्त मैं युगयुगमें अवतार लेताहूं ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वत
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोर्जुन

दोहा-मेरेजन्मरुकर्मको, तत्वलहैजोकोय ॥
देहतजैमोकोमिलै, बहुरिनजनमैसोय ॥ ९ ॥

हे अर्जुन! जो मेरे इन जन्म कर्मोंको अलौकिक जानकर इनके लिये, तत्त्वको जान लेते हैं वे इस देहको छोड फिर जन्म नहीं लेतेहैं और मुझको प्राप्त होजाते हैं अर्थात् आवागमनसे छूट मुझसे मिल जातेहैं

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥

दोहा-रागक्रोधभयकोतजे, मोमें राखेभाय ॥
बहुतज्ञानतपकरिसुजन, मोहीमांझसमाय १०

मेरे अवतारोंका अलौकिक तत्त्व जाननेसे बहुतेरे मनुष्योंके राग, भय और क्रोध जाते रहतेहैं और वे सब पदार्थोंमें मेरा स्वरूप देखते हैं, मेरेही आश्रित रहेहैं, ऐसे पुरुष ज्ञान और तपसे पवित्र होकर मेरे भावको प्राप्त होगये हैं ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

दोहा-जोमोको जैसेभजे, हौंतैसोफलदेत ॥
अर्जुननरसबजगतमें, मेरोमगगहिलेत ॥११॥

हे अर्जुन ! जो मुझे सकाम वा निष्काम जैसे भजता है मैंभी उसे वैसाही फल देता हूं अर्थात् जो सकाम पूजन करतेहैं उनको कर्मानुसार फल देता हूं और जो निष्काम भजते हैं वे मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाते हैं, ये सब मनुष्य मेरेही मार्गका अनुसरण करते हैं, अर्थात् ये चाहे जिसका भजन करें वे सब मुझी को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः॥
क्षिप्रंहि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा

दोहा—कर्मसिद्धिकीचाहकारि, पूजतदेवनिलोइ ॥
कर्मनकीनरलोकमें, सिद्धिवेगहीहोइ ॥ १२ ॥

इस संसारमें जो कर्मकी सिद्धिको चाहते हैं वे इन्द्रादि देवताओंकी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्यलोकमे कर्मकी सिद्धि शीघ्र होती है और मेरी सक्षात् सेवासे ज्ञानका फलरूप जो मुक्ति है सो कठिनतासे मिलती है ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्

दोहा—चारौंवर्णजुमैंरचे, करिगुणकर्मविभाग ॥
मैंइनकोकरतारहौं, ताहिमोहिंअनुराग ॥१३॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण अपने २ गुण और कर्मसे मैंनेही बनाये हैं, यद्यपि इनका कर्त्ता मैंही हूं, तौ भी मुझे अकर्त्ता समझो क्योंकि मैं अविनाशी हूं और इनमें मेरी आसक्ति नहीं है ॥ १३

न मां कर्माणि लिंपंति न मे कर्मफले स्पृहा
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते

दोहा–कर्मनमोकोलगतुहै. मोहि न फलकीचाहि
ऐसोजोमोकोंलखै. कर्मनबांधैताहि ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! कर्म मुझको लिप्त नहीं होते हैं और न कर्मफलमें मेरी इच्छा है क्योंकि म पूणकाम हूं जो मुझको ऐसा जानते हैं वे कर्मसे नहीं बँधते हैं ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥

दोहा–जोचाहतहैमुक्तिकों, करैकर्मतिनआइ ॥
तातेंतूहूंकर्मकरि, पहिलनकोमतपाइ ॥ १५ ॥

पहिले जनकादिक मुमुक्षुजनोंने भी ऊपर कही हुई सब बातें समझकर कर्म किया था. इससे अब तुमभी वही कर्म करो जो पूर्व पुरुषोंने पहिले किया है ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात

दोहा–कौनसुकर्मअकर्मकों, नरहतपंडितमोहिं ॥
मुक्तिकाजसोईकरम, कहेदेतहौंताहिं ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! कौनसा कर्म कर्तव्य है और कौनसा कर्म अकर्तव्य है इस बातके विचारमें बडे २ पंडितोंकी बुद्धि भी चकरमें पडजाती है,

उसी कर्मका वर्णन मैं तुमसे करूंगा, जिसे जानकर संसारके बन्धनोंसे छूट जाओगे ॥ १६ ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

दोहा–जान्यों चहिये कर्म हूं, और विकर्म सुभाइ ॥
सुनि अकर्मगति कीजिये, गहन कर्म के दाइ ॥ १७

एक तौ वे कर्म हैं जो शास्त्रोक्त रीतिसे अवश्य कर्तव्य है, एक विकर्म है जो निषिद्ध है और एक अकर्म है जिनका तत्त्वज्ञान होनेपर त्याग कहा है. इस तरह इन तीनों प्रकारके कर्मोंका विचार करना बहुत आवश्यकीय है, क्योंकि कर्मोंकी गति बडी कठिन है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ॥
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्

दोहा–कर्म न्रिमांझ अकर्म जे, औ वै कर्म अकर्म ॥
बुद्धिवंत तिन सब किए, मेटे मनके भर्म ॥ १८ ॥

जो कर्मको अकर्म और अकर्मको कर्म समझता है अर्थात् कर्म करना जिसके ज्ञानमें बाधा नहीं करता है और शास्त्रोक्त कर्मके न करनेहीमें जो कर्तव्यता देखता है वही मनुष्योंमें बुद्धिमान है. वही योगी और संपूर्ण कार्योंका करनेवाला है ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः

दोहा–जाकेसबआरंभते, बिनाकामनाहोत ॥
तासोंपंडितकहतजन, दहतकर्मकेगोत ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! जो संपूर्ण कामोंको किसी प्रकारकी कामनाकी इच्छासे नहीं करता है- और जिसके संपूर्ण कर्म ज्ञानरूपी अग्निसे जल गये हैं उसीको ज्ञानी पुरुष पण्डित कहते हैं ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपिनैव किंचित्करोति सः

दोहा–कर्मफलनिछांडेसदा, तृप्तकरैनहिंआस ॥
ताकर्मनकेकरतही- लगैनभवकीफाँस ॥ २० ॥

जो कर्म फलकी इच्छा नहीं करता है और न उनमें आसक्ति रखता है और सबका आश्रय छोड नित्य संतुष्ट रहता है, यद्यपि ऐसा मनुष्य कर्ममें प्रवृत्त रहता भी हो (पर यह समझलो कि) वह कुछ नहीं करता है ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्

दोहा–जीतइंद्रियदेहनहिं- कामपरिग्रहजाहि ॥
देहकाजकर्मनिकरत- पापनलागतताहि॥२१॥

जो संपूर्ण आशाओंको छोड चित्त और आत्माको वशीभूत कर सब संसारी झगडोंसे मुख मोड केवल शरीरमात्रसे कर्म करते हैं वे भी कर्मबंधनोंसे पीडित नहीं होते हैं ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते

दोहा–यथालाभसंतोषजो, सुखदुखरहैनकोइ ॥
सिद्धि असिद्धीएकसो, कर्मनबंधनहोइ ॥ २२ ॥

हे अर्जुन! वे पुरुष जो वस्तु अपने आप मिलजाय उसीपर संतोष करते हैं, दुख सुख हानि लाभसे जिनके मनको वेदना नहीं होती है, जो मत्सरतारहित हैं, जिनकी सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धि है, वे कर्म करकेभी कर्मबंधनमें नहीं बंधते हैं ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः॥
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥२३

दोहा--तजैसबैजोकामना, ज्ञानलगावैचित्त ॥
यज्ञकाजकर्मनिकरै, सोनबांधियेमित्त ॥ २३ ॥

जो भाईबंधु स्त्रीपुत्रादिकी आसक्तिसे छूटगया है, सांसारिक विषय वासनासे दूर होगया है और ज्ञानमें जिसका चित्त स्थित है वह यज्ञके लिये जो कर्म करताहै वे सब कर्मवासनासहित लीन होजाते हैं ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना २४

दोहा–होमअगनिहविब्रह्महै, अर्पैब्रह्महिजानि ॥
जाइब्रह्ममेंसोरहै, कर्मसमाधिहिठानि ॥ २४ ॥

ब्रह्मके अर्थ और ब्रह्मही हवि तथा ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्महीने दि-

या है. इस प्रकार जो जानता है अर्थात् होम, अग्नि, स्रुवा, हवि, कर्त्ता घृत आदि सब सामग्री ब्रह्मरूप है, जिसकी ब्रह्मकर्ममें समाधि अर्थात् चित्तवृत्ति है वह अवश्य ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५

दोहा–देवनकोइकयजतहैं, करतयज्ञबहुभाइ ॥
एकब्रह्ममें यजतुहै, ज्ञानयज्ञकेदाइ ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! कितनेही कर्मयोगी श्रद्धापूर्वक इन्द्रादि देवताओंकी पूजा करते हैं और कितनेही ज्ञानयोगी ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्मयज्ञरूपसे हवन करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनींद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति
शब्दादीन्विषयानन्य इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥

दोहा–एकजुहोमतइंद्रियनि, संयमअगनिस्वरूप
विषयनहोमतएकही, इन्द्रीअगनिअनूप ॥२६

हे अर्जुन ! कितनेही ऐसे योगी हैं जो अपने नेत्र, कान आदि इन्द्रियोंको संयमरूप अग्निमें होम देते हैं और कितनेही इन इंद्रियोंके रूप शब्दादि विषयोंको इन्द्रियरूप अग्निमें होम देते है ॥ २६ ॥

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे॥
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते

दोहा-तेसबइंद्रिनकेकरम, औरकरमसबप्रान ॥
होमतसंयमअग्निमें, प्रकटकरैंविज्ञान ॥ २७ ॥

कितनेही ऐसे योगी हैं जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियके कर्मोंको तथा प्राण अपान आदि दस प्राणोंके कर्मको ज्ञानसे जलतीहुई मनके निग्रहरूप अग्निमें होमते हैं अर्थात सब विषयवासनासे दूर हो केवल ब्रह्ममें लीन होजाते हैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः

दोहा-एकयजतहैद्रव्यसों, एकतपस्यायोग ॥
एकजुपढिवेदहिपजे, एकजुज्ञानसोंलोग ॥२८

जो अपने नियममें बडे तत्पर हैं उनमेंसे कितनेही द्रव्यदानरूप यज्ञ करते हैं, कितनेही कृच्छ्रचान्द्रायणादिरूप तपोयज्ञ करते हैं, कितनेही योग यज्ञ करते हैं और कितनेही वेदका पठन पाठनरूप यज्ञ करते हैं ॥ २८ ॥

अपाने जुहति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ॥
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः

दोहा-होमअपानहिप्रानमें, प्रानअपानहिमाँह ॥
प्रानअपानहिरोकिकै, रहतजुहै नरनाँह ॥२९॥

और कितनेही प्राणायाममें तत्पर प्राण और अपानकी गतीको रोककर अपानमें प्राणका हवन करते हैं और प्राणमें अपानका हवन करते हैं ॥ २९ ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ॥
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः

दोहा–प्राणनहीमेंप्रानको, होमतजियतअहार ॥
एसबजानतयज्ञको, मेटतपापविकार ॥ ३० ॥

कितनेही आहारको नियमितकर प्राणोंमें प्राणको होमते हैं अर्थात् कुंभक करते है ये सब यज्ञको जानते हैं और यज्ञहीसे इनके सब पाप दूर होगये हैं ॥ ३० ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥

दोहा–यज्ञशेषअमृतभषत, होतब्रह्मसोंलीन ॥
यहौलोकबिनुयज्ञनाहिं, परलोकैंहैछीन ॥ ३१ ॥

जो यज्ञ शेष अमृतरूप अन्नका भोजन करते हैं वे सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, हे अर्जुन । जो यज्ञ नहीं करते हैं उनको न यह लोक है न परलोक ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे

दोहा–बहुतभांतिवेदनकही, यज्ञसबैलेमानि ॥
तेसबजानैकर्मते, लेहु मुक्तिसुखसानि ॥ ३२ ॥

ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदमें वर्णन किये गये हैं. इन सबकी उत्पत्ति कर्मसे है. इनको जाननेसे तेरी मुक्ति होजायगी ॥ ३२ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ३३

दोहा–द्रव्ययज्ञतेंहैबडो, ज्ञानयज्ञइहभाय ॥
जितेकर्मवेदनिकही. ज्ञानाहिरहितसमाय॥३३॥

हे परंतप ! द्रव्ययज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, हे पार्थ ! जितने कर्म हैं वे सब ज्ञानमें समाप्त होते हैं अर्थात् फलसहित ज्ञानमें लीन होते हैं.

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥
उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

दोहा–कीजैबहुतैनम्रता, प्रश्नऔरअतिसेव ॥
तौज्ञानीउपदेशिहैं, तुझेंज्ञानकोभेव ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन ! तत्त्वदर्शी ज्ञानीलोग इस तत्त्वज्ञानका तुझे उपदेश करेंगे, जब तू उनकी सेवा करेगा, हाथ जोडैगा, प्रणाम करैगा और अनेक भांतिसे पूँछेगा कि इस संसारसे मेरी मुक्ति कैसे होगी ३४

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि

दोहा–अर्जुनयाकोलहतही, मोहनरहिहैतोहिं ॥
सवजीवनकौंदेखिहै, आपमांझकेमोहिं ॥३५॥

हे अर्जुन ! इस ज्ञानके प्रतापसे तुझको ऐसा मोह फिर कभी न होगा और इसी ज्ञानसे संपूर्ण प्राणियोंको अपनी आत्मामें और मुझमेंभी देखोगे अर्थात् कुछ भेदबुद्धि न रहैगी ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥ ३६॥

दोहा–सबपापिनमेंजोबडो. पापीहूतूहोय ॥
ज्ञाननावचढिउतरिहै, पापसिंधुसमजोय ३६

जो तू सब पापियोंसेभी अधिक पापी होगा- तोभी तू इस ज्ञानरूपी नौकापर चढकर विना परिश्रमही इस दुःखसागरसे पार होजायगा ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा

दोहा–जैसेज्वालहुताशकी, डारतसबहीजारि ॥
ज्ञानअग्निसोप्रबलहै, डारतकर्मनिवारि ॥३७॥

हे अर्जुन ! जैसे जलती हुई अग्नि काष्ठको जलाकर भस्म कर देती है.वैसेही ज्ञानरूपी अग्नि सपूर्ण कर्मोंको जलाकर नष्टकर देतीहै. केवल यह बात नहीं है कि ज्ञानद्वारा पापोंसे पारही होजाते हैं ॥३७॥

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति

दोहा–ज्ञानसमानजुलोकमें, पावतनाहींऔर ॥
योगसाधनाजोकरै, लहैज्ञानकीठौर ॥ ३८ ॥

इस संसारमें ज्ञानके समान और कोई बात पवित्र अर्थात् चित्तके शुद्ध करनेवाली नहीं है यह ज्ञान कुछ कालपर्यन्त अभ्यास करते करते कर्मयोगके द्वारा सिद्ध हो अपने आपही उपस्थित होजाताहै॥३८

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ॥
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति

दोहा–इंद्रियजितश्रद्धासहित, पावैऐसोज्ञान ॥
तापायेततकालही, पावैशांतिसुजान ॥ ३९ ॥

अपने गुरुके उपदेशमें श्रद्धावाले, ज्ञानकी प्राप्तिमें तत्पर जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको पाता है और इस ज्ञानको पाकर फिर थोडेही कालमें मोक्षको पा लेता है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति॥
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः

दोहा–जोमूरखश्रद्धाविना, ताकोहोइविनाश ॥
जाकेयहसंदेहहै, सोदुहुंलोकनिराश ॥ ४० ॥

और जो अज्ञानी, श्रद्धारहित हैं और जिनके मनमें संदेह बना रहता है वे नष्ट होजाते है, संदेह रखनेवालेको न इसी लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें, कहींभी उसको सुखका नाममात्र नहीं मिलता ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय॥

दोहा–मोकौंअर्पैकर्मकरि, करिसंदेहहिदूरि ॥
ज्ञानीबँधैनकर्मसों, रहैसदासुखपूरि ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन ! ईश्वराराधनरूप योगसे जिसके कर्म छूट गये है और

ज्ञान प्राप्तिद्वारा जिसके सब संशय छिन्नभिन्न होगये हैं ऐसे आत्मवान् पुरुषोंको कर्मोंका बन्धन नहीं होता है. कर्म तो केवल लोकसंग्रहके लिये हैं ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२

दोहा–संदेहजुअज्ञानतैं, उपज्योअर्जुनआहि ॥
ज्ञानखड्गसोंकाटिक, योगकरौकिनताहि ॥ ४२ ॥
याचौथेअध्यायतैं, निष्ठाहैंद्वैभाय ॥
कहीअवस्था भेदतैं, कर्मज्ञानसमुझाय ॥ १ ॥
कृष्णचरनपरनामकरि, वरन्योकर्मसंन्यास ॥
सकलजगतकेहितकह्यो, आनंदरामप्रकास २ ॥

हे भरतवंशीय अर्जुन ! इन ऊपर कहे हुये हेतुओंसे तेरे हृदयमें जो अज्ञानसे उत्पन्न हुवा संशय जम गया है. इसे ज्ञानरूपी खड्गसे काटडाल और युद्धरूप जो यह कर्मयोग उपस्थित हुआ है इसके करनेमें कटिबद्ध हो ॥ ४२ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां कर्मसंन्यासयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ विचारदर्पण चतुर्थ दर्शन प्रारम्भः

हिन्दुओं (आर्यों) की उन्नतिके उपाय.

[१] सबसे प्रथम, कुरीतियोंको देशमें से हटाना चाहिये। सबसे प्रधान हानिकारक कुरीति बालविवाहही है। लड़कोंका अठारहवर्षसे पूर्व और लड़कियोंका तेरह वर्षकी अवस्थासे पूर्व कदापि विवाह न होने पावे; पुरुषोंका पैंतालीस वर्षकी अवस्थासे उपरांत सर्वथा विवाह न होना चाहिये। पंचायतों और राजाओं द्वारा कड़ाईके साथ ऐसे प्रबन्ध होनेकी आवश्यक्ता है। हमलोग बालविवाहसे अल्पायु, निर्बल, और क्षीणवीर्य होगये हैं, और वृद्धविवाहसे विधवाओंकी संख्या बढ़रही है। इसी प्रकार वृद्धविवाह और बहुविवाह [एकसे अधिक स्त्रियोंके साथ विवाहकरना] कोभी रोकना चाहिये. जहाँतक बनसके बालविवाहकीकुरीतिको सबसेप्रथम हटानेकी चेष्टा करें. हम नित्य देखतेहैं कि, उत्तम धान्यके बीजसेही उत्तम धान्यकी प्राप्तिहोतीहै और उत्तम पशुओंसेही उत्तमपशु उत्पन्न होतेहैं; परन्तु शोक तो इस बातकाहै कि, बालविवाहकेकारण पूर्ण अवस्थासे पूर्वही स्त्रीपुरुषोंकासंगमहोनेसे निर्बल, निर्बुद्धि और अल्पायु संतानोंकी उत्पत्ति हमलोग अपनी आँखोंसे देखते जातेहैं और इस हानिकारक प्रथाको रोकनेकी चेष्टा नहीं करते. देखिये वैद्यशिरोमणि वाग्भट्ट आचार्य लिखते हैं कि, "पूर्ण षोडशस्त्री पूर्ण विंशेन संगता"। इत्यादि।

वीर्यवंतं सुतं सूते ततोन्यूनाब्दयोः पुनः। रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥

वाग्भट्ट-शारीरिकस्थान।

(अर्थ) पूर्ण सोलह वर्षकी स्त्री पूर्ण बीसवर्षके पुरुषके साथ संगम करनेसे पराक्रमी संतान उत्पन्न होती है उससे न्यून वर्षवाले स्त्री पुरुषोंके रोगी, अल्पायु अर्थात् छोटी अवस्थामें मरने वाली और निर्बल संतान होतीहै, अथवा गर्भही न होगा इसलिये पुरुषोंको बड़ी अवस्थामें विवाहकरके ऋतुकालमेंही अपनी स्त्रीके साथ संगम करना चाहिये इसीका नाम ब्रह्मचर्य का पालन करना है।

अतः पुरुषोंका अठारह वर्षके उपरांत और स्त्रियोंका तेरह वर्षके उपरांत विवाह होना चाहिये।

यहभी ध्यान रहे कि, गर्भिणी स्त्री के साथ कदापि संगम न किया जाए. जब पशुही ऐसा नहीं करते तो मनुष्यों का यह व्यवहार क्या अधिक लज्जाजनक नहीं है? अतिरिक्त इसके, होनेवाली संतानके अंगोंमें विकार होनेकाभी भय है; अतः गर्भिणीके साथ संगम भूलकर भी न करें।

[२] विवाहादि उत्सवों और मरणादि अवसरों पर रुपयेका अतिव्यय नहीं होना चाहिये। लोगोंमें देखा देखी अधिक और व्यर्थ व्यय करनेकी चाल पड़ी

हुई है. हमलोगोंको इससमय जातीय संस्थाओंके स्थापित करने और उनकी स्थिति को दृढ तथा स्थाई बनानेके निमित्त मन खोलकर रुपया लगाना चाहिये, यथा विद्यालय महाविद्यालय, पुस्तकालय, सेवासदन, व्यायामशाला, कूप, तडाग, धर्मशाला आदिका बनाना और उनका चलाना ।

जहांतक दान किया जाए वह सात्त्विक होना चाहिये जैसा कि श्रीकृष्णमहाराजने लिखा है:-

दातव्यमिति [गी० अ०१७ श्लो० २०] अर्थात् देशकाल और पात्रमें दिया हुआ दान सात्त्विक कहा जाता है। गंजेडी, भंगेडी और मूर्खोंको दान देना देशको दरिद्र बनाना है।

[३] अश्लील गान और नित्य अश्लीलभाषण अर्थात् गालीका प्रचार सर्वथा अपने २ घरोंमेंसे उठा देना चाहिये। छोटे २बालक, और बडी अवस्थावाले पुरुष शाला आदि शब्दोंका प्रयोग नित्य करते हैं। होली के व्यवहारपर पुरुषोंके, और विवाहके समय स्त्रियोंके, मुखसे अश्लील गानोंका सुनना छोटी २ अवस्थावाले बालक, बालिकाओंके हृदयपर बुरे संस्कार जमाता है, इसलिये पुरुषों तथा स्त्रियोंके मुखसे अश्लील गान अथवा भाषण कभी नहीं होना चाहिये।

[४] बालक और बालिकाओंकी शिक्षा का प्रबन्ध इसभांति हो कि, छः सात वर्षकी अवस्थासेही वह विद्यालयोंमें पढने को भेज दिये जावें और तेरहवर्षकी अवस्था तक निम्नलिखित पढाई समाप्त करलें, परन्तु उसमें यहभी ध्यान रहे कि, वह दुष्टजनोंके संगसे सर्वथा बचाए जावें।

(क) हिन्दी (देवनागरी) भाषाका लिखना पढना.

(ख) साधारण गणित.

(ग) भारतवर्ष तथा समस्त भूमंडलका प्राकृत तथा प्रांतिक भूगोल.

(घ) प्राचीन और वर्तमान समयके भारतवर्ष का इतिहास.

(ङ) साधारण संस्कृतकी पुस्तकें यथा हितोपदेश, आदि.

(च) अंग्रेजी (आंग्लभाषा) की कुछ उपयोगी पुस्तकें.

(छ) साधारण चित्र लेखन.

समीक्षा—गुरुजनों द्वारा धार्मिक शिक्षा भी देजानी चाहिये. गीताकी कुछ अध्यायोंका आशय समझा दिया जाय और गीता कंठस्थ करादी जावे.

स्वास्थ्यरक्षा सम्बंधी बातोंसे इसी अवस्थामें हमारे बालक और बालिकाएं भली प्रकार परिचित होजानी चाहियें। स्वास्थ्यरक्षासम्बन्धी कुछ उपयोगी २उपदेश नीचे दियेजाते हैं उनको उदाहरणार्थ समझें.

नित्य शुद्ध वायु जलका सेवन करें.
यथाशक्ति नित्य व्यायाम करें. अर्थात् दंड मुगदर आदिका व्यवहार करें.
ब्रह्मचर्य्यकी रक्षाके लिये मिरच, मसाला, अचार, अतिखटाई, चाय, काफी, तमाखू आदि सभी प्रकारके उत्तेजक और तीक्ष्णपदार्थोंका सेवन नहीं करें. इनसे बालकोंको प्रमेह, अर्थात् धातुक्षीण हो जाता है.
दाल, भात, दूध, घृत आदि कोई भी उत्तम पदार्थ परिमाणसे अधिक अर्थात् भूखसे अधिक न खावें.
शृंगार सम्बन्धी किसी भी बातका चिन्तवन या उसकी चर्चा करनी उचित नहीं, क्योंकि इससे विषय वासना जाग्रतहोती है और वीर्यका स्थान भ्रष्ट होजाताहै; शृंगार रसके नाटक और खेल (ख्याल) तमाशेभी नहीं देखने चाहियें.
आयुकी रक्षाके लिये ठीक समयपर सोना और उठना चाहिये.
जहाँतक बनसके ऐसा भोजन खावें जिससे प्रतिदिन मलमूत्र ठीक होता रहे अर्थात् कब्जी न रहे।
गरिष्ठ, विष्टम्भक और प्रकृतिके विरुद्ध भोजन कदापि न करें। पथ्यरूप हलका भोजन नित्य करना चाहिये। यदि सदैव कब्जी (विष्टम्भता) रहती हो तो पेटको शुद्ध रखनेके लिये रात्रिके समय त्रिफलोंका चूर्ण लेलिया करें। मलका संचय पेटमें कदापि न रहने पावे क्योंकि सब रोग प्रायः मल संचय से ही होतेहैं. यथा वाग्भट्टमें लिखा है:-
रोगाः सर्वेऽपि मंदेऽग्नौ सुतरामुदराणि तु। अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायंते मलसंचयात्॥
वाग्भट्ट-निदान स्थान अ.१२। श्लो० १.
(अर्थ) मल सञ्चयसे मदाग्नि होजाती है मदाग्नि होनेपर सभी रोग होते हैं विशेषकर उदरके रोग
नीचे दो श्लोक वाग्भट्ट के दिये जाते हैं तदनुसार कार्य करने से मनुष्य रोगोंसे बचे रह सक्ते हैं।

श्लो०-नित्यं हिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

समीक्षा—खाया हुवा अन्न अच्छी प्रकार नहीं पचनें से सभी रोग होते हैं.

श्लो०—शीतोद्भवं दोषचयं वसंते। विशोधयन् ग्रीष्मजमभ्रकाले॥
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक्। प्राप्नोति रोगानृतुजान्न जातु॥

सूत्रस्थान अ० ४ श्लो०३६.

(अर्थ) जाडे में जो कफके दोषोंका सचय होगया हो, उस को वसंतऋतुमें, और गरमी में जो वातदोषका सचय होगया हो उसको वर्षाऋतुके आरंभमें और वर्षाऋतु में होनेवाले पित्तके सचयको अश्विनमें विरेचनद्वारा विशुद्ध करदेना चाहिये. ऐसाकरनेसे ऋतुसे उत्पन्न होनेवाले रोगों से मनुष्य बचा रहता है. अर्थात सदाही निरोग रहता है।

जहां तक बन पडे खुली वायुमें शयन करना उचितहै.शीतकालमें भी सिरहानेकी ओर स्वच्छ वायु आने को एक खिडकी अवश्य होनी चाहिये।सोते समय आवश्यकतासे अधिक वस्त्रों को नहीं ओढें और न मुँहको कपडों से बंद करें.

मलमूत्रादि का वेग कदापि न रोके।

सोलहवर्ष की अवस्था के पूर्व तमाखू, सिगरेट कभी न पीवें।

समीक्षा—यदि हम लोग स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी बातोंपर अधिक ध्यान नहीं देंगे तो हिन्दु [आर्य] जातिकी शारीरिक दशा औरभी बिगडती जायगी.आजसे पचासवर्ष पहिलेहमारी, प्रत्येक मनुष्य पीछे, आयु की गणना तेईस वर्षकी हुईथी, जो अब घटकर अठारह वर्ष होगई है और यूरोप, अमेरिका में पचास वर्ष पहिले प्रत्येक मनुष्यकी आयुकी गणना छब्बीस वर्षकी हुईथी, जो अब पैंतीस वर्षकी है, इसका कारण यही है कि, वहां बालविवाह की प्रथा नहीं है और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमोंका पालना छोटी अवस्थासेही प्रारम्भ हो जाता है।

[५] ऊपरकी संध्याचार में लिखीहुई शिक्षाप्राप्त करके तेरह वर्षकी अवस्थाके पश्चात् जैसी रुचि बालकों और उनके संरक्षकों की हो उसी प्रकारकी निम्नलिखित शिक्षा उनको दिलाई जाए। जहांतक होसके जातीय विद्यालयों और महाविद्यालयोंकी संख्या देशमें बढाकर उनमें सब प्रकारकी विद्याएं पढावें, जिससे हमारे देशवासियों को बहुत व्ययकरके और कष्ट उठाकर दूसरे देशों में विद्याध्ययनके लिये न जाना पडे।

शोक! एक वह दिन था कि, दूसरे देशोंके लोग भारतवर्ष में विद्याएं सीखनेको आते थे, अब यह समय आगया है कि, भारतवासियों को दूसरे देशोंमें जाना पडता है. पुरुषार्थ करनेसे अबभी सब कुछ होसका है।

[क] ब्राह्मणों के युवकों को मुख्यतया वेद, उपनिषद, सांख्य, योग, वेदांत, कर्मकांड,आयुर्वेद,डाक्टरी [पाश्चात्य आयुर्वेदशास्त्र] में निपुण होना चाहिये।

[ख] क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके बालकोंको गीता आदि धर्मग्रन्थों को समझने में योग्यता प्राप्तहो इतनी संस्कृत भाषा सीखकर यथा रुचिः—

शिल्प, कृषि, वाणिज्य, भूगर्भविज्ञान (खनिज पदार्थों की विद्या) इंजिनियरी (कलाओं और यंत्रोंकीविद्या), विद्युतशास्त्र, नेवीगेशन(जहाजोंको चलाना)वैंक और व्यापारी कम्पनियां खोलना तथा चलाना, शोर्टहैंड राईटिंग [संक्षिप्त लेखन] इत्यादि विद्याओंको सीखना चाहिये।

[६] हमारी बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षाके उपरांत सीनापिरोना, सूपशास्त्र अर्थात् आयुर्वेद के नियमानुसार भोजन बनानेकी विधि, स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी नियम, रोगीकी सेवाकरना, बालकोंकी चिकित्सा करना, बालकोंको शिक्षादेना, धर्म और नीति; इत्यादि बातोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये.

[७] वैश्य जातिको अन्य उन्नत देशोंमें जाकर वाणिज्य, व्यापार करना चाहिये, जिससे देशका गौरव बढ़े । जिस प्रकार यूरोप, अमेरिका के लोग बड़ी-बडी कम्पनियां तथा वैंक खोलकर और कलायंत्रोंकोकाममें लाकर व्यापार द्वारा करोडपति अर्ब (अर्बुद) पति हो जाते हैं, उसीभाँति हम भी अपने वाणिज्यको बढाकर धनिक बन सक्ते हैं. उन्हीं उन्नत देशोंकी भांति विज्ञान और यंत्रोंद्वारा कृषि करना सीखें और वैज्ञानिकरीतिद्वाराही पशुओंको पाला करें. स्वयं हल चलाकर थोडीसी भूमिमेंही खेती करलेना कृषि करना नहीं कहलाता। कृषिविद्यापर आज कल जितनी उत्तमर पुस्तकें लिखीगई हैं उनको देखनेसे ही पता लगसक्ता है कि, यूरोप, अमेरिकामें किस भांति कृषि द्वारा लोगोंको धन प्राप्त होरहाहै; वह लोग इतने निपुण बन गये हैं कि जितनी भूमिमें हम लोग फसलका एक भाग उत्पन्न करते हैं उतनीही भूमिमें वह लोग चार भाग प्राप्त करते हैं. भारतवर्ष में सूर्यप्रकाश, भूमि, और खात की बड़ी सुगमता है और साथ में मजदूरी भी बडी सस्ती है. फिर भी यहां की पैदावार को हम लोग अन्य देशोंके बराबर नहीं लासक्ते यहबडे शोककी बात है

[८] चारों वर्णों में, जिनका खानपान और अन्य २ व्यवहार एकसा है यथा गौड़ और सारस्वत ब्राह्मणोंका, परस्पर विवाहादि सम्बन्ध होना चाहिये । बहुत जगह अब भी यह देखनेमें आता है कि, जैनी और वैष्णव वैश्योंमें परस्पर भिन्न २ सम्प्रदायी भेद होनेपर भी रोटी बेटीका सम्बन्ध होता है, तो एकही सम्प्रदाय और एकही आचार व्यवहार रखनेवाले मनुष्यों में यह सम्बन्ध क्यों नहीं होना चाहिये?

[अपूर्ण]

अथ पंचमोऽध्यायः।

॥ अर्जुन उवाच ॥

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।

दोहा—कबहूँकहतसंन्यासको, कबहुंकर्मकोयोग ॥
निश्चयकरिएकैकहो, मेटौंकिनभवरोग ॥ १ ॥

हे कृष्ण ! तुम कर्मोंके परित्यागका भी उपदेश देते हो और फिर कर्म करनेके लिये भी कहते हो [यह क्या बात है] इन दोनोंमें जो श्रेष्ठ है उस एक बातको निश्चय करके मुझसे कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते

दोहा—कर्मयोगसंन्यासअरु, दोऊएशुभदैन ॥
कर्मयोगसंन्यासमें, कर्मनलहियतचैन ॥ २ ॥

यह सुन श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे अर्जुन ! कर्मोंका त्याग और कर्मयोग अर्थात कर्मोंका करना ये दोनोंही कल्याण करनेवाले हैं किन्तु इन दोनोंमें कर्मसंन्याससे कर्मश्रेष्ठ है अर्थात् कर्म करते करते चित्तके शुद्ध होनेसे संन्यास होताहै ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति
निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ३

दोहा–द्वेषतजैचाहाहितजै, सोसंन्यासीजानि ॥
रागद्वेषसोंजेरहित, ताहिछुटचोतूमानि ॥ ३ ॥

हे महाबाहो! जो दुःख सुखसे रहित रहता है वही नित्य संन्यासी है अर्थात वह सदाही कर्मोंका परित्याग किये रहता है जो न तौ किसीसे द्वेष करता है और न किसी बातकी इच्छा करता है! ऐसा पुरुषही सुखपूर्वक संसारबन्धनसे छूट जाता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदंति न पंडिताः
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विंदते फलम्

दोहा--योगसांख्यद्वैद्वैकहत, मूरखपंडितनांहि ॥
दोउनमेंएकैभजैं, दोऊफलहैताहि ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! अज्ञानीही सांख्य और योगको जुदा जुदा कहते हैं, परन्तु पंडितजन कभी ऐसा नहीं कहते, जो इन दोनोंमेंसे एकमेंभी अच्छी तरह स्थित होजाता है, वह दोनोंका फल पाता है ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति

दोहा–स्थानजुलहियेसांख्यते, सोइयोगतेहोइ ॥
सांख्ययोगएकौगनै, ताकोज्ञानीजोइ ॥ ५ ॥

हे अर्जुन! सांख्य अर्थात् ज्ञानसे जो स्थान मिलता है वही कर्मयोगसेभी मिलता है. इससे जो ज्ञान और कर्मको एकही देखते हैं वेही अच्छी भांति देखनेवाले विद्वान् हैं ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति

दोहा–लहसंन्यासहिदुःखसों, विनकर्मनुरेमित ॥
योगजुगतजेकरतहैं, रहतब्रह्मनिहचित ॥ ६ ॥

हे महाबाहो अर्जुन! विना कर्मयोगके संन्यासका प्राप्त होना बहुत कठिन है और कर्मके करनेवाले मुनिजन कर्म करनेसे चित्तशुद्धिद्वारा बहुत शीघ्रही ब्रह्मको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

दोहा–इंद्रीजितहैशुद्धहिय, योगयुक्तिजोकोय ॥
जीवनजानैआतमा, कर्मलिप्तसुनहोय ॥ ७ ॥

हे अर्जुन! जो कर्मयोगसे युक्त है अर्थात् कामनारहित कर्म करताहै, जिसका चित्त शुद्ध है, जिसने अपनी आत्मा और इन्द्रियां जीत ली हैं और जो अपनी आत्माको संपूर्ण प्राणियोंकी आत्मासे भिन्न मानता है, वह कर्म करता है तौभी उनमें लिप्त नहीं होता है ७

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥ ८ ॥

दोहा--ज्ञानीकर्मनिकरतहूं, किये लेइनहिंमानि ॥
सूंघतदेखतछुवतपुनि, सुनतचलतहूजानि ॥८॥

हे अर्जुन ! कर्ममें युक्त तत्त्वज्ञानी लोग देखते हैं, सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, सूंघते हैं, खाते हैं, चलते हैं, सोते हैं, श्वास लेते हैं तौभी यही जानते हैं कि-मैं कुछभी नहीं करता ॥ ८ ॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥
इन्द्रियाणींद्रियार्थेषु वर्तंत इति धारयन् ९

दोहा--सोवतजागतगहतुहूं, बोलतढारिहुंदेत ॥
इंद्रियविषयनमेंपरी, जानतहैयहहेत ॥ ९ ॥

वे बोलते हैं, छोडते हैं, ग्रहण करते हैं, आंख खोलते हैं, बन्द करतेहैं, परन्तु यही जानते हैं कि मैं कुछ नहीं करता और वे यही विचार करते हैं कि इन्द्रियांही अपने अपने विषयमें तत्पर हैं ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः
लिप्यते न सपापेन पद्मपत्रमिवांभसा १०

दोहा--कर्मकरैतजिसंगको, सबकोब्रह्महिमानि ॥
ताकोपापनलगतुहै, पदमपत्रजलजानि ॥१०॥

जो मनुष्य कर्म करता है और उन कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पण कर फलकी कामनाको छोड देता है उस पुरुषसे पाप ऐसे लिप्त नहीं होते हैं, जैसे कमलपत्रपर जल नहीं ठहर सकता है ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये

दोहा--तनकरिमनकरिबुद्धिकरि, पुनिइंद्रिनहूंकीन
संगछांडिकर्मनिकरै, योगीहोहिंनलीन ॥११॥

हे अर्जुन ! शरीर, मन बुद्धि और केवल इन्द्रियोंसे योगीजन फलकी कामनाओंको छोड कर्म करते हैं वह कर्म करना चित्तकी शुद्धिके लिये है ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम्
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

दोहा--ज्ञानीहूमुक्तीलहै, करै कर्मफलछांड ॥
मूरखफलकी आसकर, बंधतकामनाआड १२

हे अर्जुन ! जो कर्मफलकी कामनाको छोड कर्म करनेमे तत्पर रहता है वह ईश्वरमें निष्ठारूप शांति पाता है और जो ईश्वरसे विमुख है और फलकी कामनामें मन लगाकर काम करता है वही कर्मसे बंधाहुआ है ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

दोहा–मनकरिकर्मनिजेतजैं, ज्ञानीतेसुखआहि ॥
नवँद्वारपुरमेंवसत. करतकरावतनाहि ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय पुरुष इस नौ द्वारके पुर अर्थात् नौ इन्द्रियोसे युक्त देहमें मनसे संपूर्ण कामोंको त्यागकर सुखपूर्वक रहते हैं, वे अहंकारके न होनेसे स्वयं कोई काम नहीं करते हैं और ममताके अभावसे औरभी किसीसे कुछ नहीं कराते हैं ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते १४॥

दोहा–ईश्वरनाहिंकर्मनिकरत, नाहिंकर्मकरतार ॥
कर्मफलनहूंनहिंकरत, प्रकृतिकरतविस्तार १४

प्रभु इस जीवके न कर्त्तापन, न कर्म, न कर्मफलको सृजता है, इन सबकी प्रवृत्ति करानेवाली प्रकृति है अर्थात् जीव अपने पूर्वजन्मके कर्मानुसार कर्म करने लगता है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं नचैव सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥

दोहा–सुकृतनकाहूकोगहै, औरपापनहिंलेत ॥
ढाप्योज्ञानअज्ञानसों, मोहनप्रगटनदेत॥१५॥

हे अर्जुन ! ईश्वर न किसीके पापको ग्रहण करता है न किसीके पुण्यको ग्रहण करता है, इस जीवका ज्ञान अज्ञानने ढक रक्खा है,

जो मनुष्य कर्म करता है और उन कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पण कर फलकी कामनाको छोड देता है उस पुरुषसे पाप ऐसे लिप्त नहीं होते हैं, जैसे कमलपत्रपर जल नहीं ठहर सकता है ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥
योगिनः कर्म कुर्वंति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये

दोहा--तनकरिमनकरिबुद्धिकरि, पुनिइंद्रिनहूंकीन
संगछांडिकर्मनिकरै, योगीहोहिंनलीन ॥११॥

हे अर्जुन ! शरीर, मन बुद्धि और केवल इन्द्रियोंसे योगीजन फलकी कामनाओंको छोड कर्म करते हैं वह कर्म करना चित्तकी शुद्धिके लिये है ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

दोहा--ज्ञानीहूमुक्तीलहै, करै कर्मफलछांड ॥
मूरखफलकी आसकर, बंधतकामनाआड १२

हे अर्जुन ! जो कर्मफलकी कामनाको छोड कर्म करनेमे तत्पर रहता है वह ईश्वरमें निष्ठारूप शांति पाता है और जो ईश्वरसे विमुखहै और फलकी कामनामें मन लगाकर काम करता है वही कर्मसे बंधाहुआ है ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

दोहा–मनकरिकर्मनिजेतजैं, ज्ञानीतेसुखआहि ॥
नवद्वारपुरमेंवसत. करतकरावतनाहि ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय पुरुष इस नौ द्वारके पुर अर्थात् नौ इन्द्रियोंसे युक्त देहमें मनसे संपूर्ण कामोंको त्यागकर सुखपूर्वक रहते हैं, वे अहंकारके न होनेसे स्वयं कोई काम नहीं करते हैं और ममताके अभावसे औरभी किसीसे कुछ नहीं कराते हैं ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते १४॥

दोहा–ईश्वरनाहिंकर्मनिकरत, नाहिंकर्मकरतार ॥
कर्मफलनहूंनहिंकरत, प्रकृतिकरतविस्तार १४

प्रभु इस जीवके न कर्तापन, न कर्म, न कर्मफलको सृजता है, इन सबकी प्रवृत्ति करानेवाली प्रकृति है अर्थात् जीव अपने पूर्वजन्मके कर्मानुसार कर्म करने लगता है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं नचैवसुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥

दोहा–सुकृतनकाहूकोगहै, औरपापनहिंलेत ॥
ढाप्योज्ञानअज्ञानसों, मोहनप्रगटनदेत॥१५॥

हे अर्जुन ! ईश्वर न किसीके पापको ग्रहण करता है न किसीके पुण्यको ग्रहण करता है, इस जीवका ज्ञान अज्ञानने ढक रक्खा है,

इसीसे अज्ञानी जीव मोहमें फँसकर ईश्वरमें विषम दृष्टि रखते हैं॥१५

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्

दोहा–ज्ञानभये अज्ञानवह, जिनकोपावतनाश ॥
तिनकौंरविसमज्ञानवह,करतसुपरमप्रकाश १६

हे अर्जुन ! जिनका यह विषय अज्ञान आत्मज्ञानसे नष्ट होगया है, उनका वह ज्ञान सूर्यकेसमान प्रकाश करता है और अंधकार-रूप सब दुख सुखको मिटा देता है ॥ १६ ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

दोहा–जेमनकोअरुबुधिको, राखतईश्वरमाँह ॥
जन्ममरणतिनकोनहीं, मुक्तिहोतनरनाँह॥१७॥

उस परमात्माहीमें जिनकी बुद्धि है, उसहीमें जिनकी आत्मा है, उसहीमें जिनकी निष्ठाहै, उसीमें जो तत्पर हैं और उसी परमात्माकी कृपासे ज्ञानद्वारा जिनके पाप नष्ट होगये हैं वे इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेते हैं अर्थात् मुक्त होजाते हैं ॥ १७ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

दोहा-विद्याविनयसपंन्नद्विज, गोगजसुपचौश्वान
ज्ञानीइनकोसमगनत, भेदलेतनाहिंमान ॥१८॥

जो विद्वान् हैं वे विद्या और विनयसे संपन्न ब्राह्मणमें गौ, और हाथीमें कुत्ते तथा चांडालमें समान दृष्टिसे देखते हैं अर्थात् अपनेमें और उनमें कुछ भेद नहीं मानते है ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः

दोहा-समताजिनकेहीयमें. तिनजीत्योसंसार ॥
समताब्रह्महिकोकहत, ब्रह्मलीननिरधार॥१९॥

जिनका मन समानतामें स्थित है अर्थात् जो सबको समान दृष्टिसे देखते हैं उनने यहीं यह संसार जीत लिया है, क्योंकि ब्रह्म दोषरहित और समान है इससे ऐसे जन ब्रह्ममें स्थित होजाते हैं ॥१९॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥

दोहा-सुखपायेहरषैनहीं, दुखपायेनरिसाय ॥
राखैथिरनिजबुद्धिको, ब्रह्महिरहै समाय॥२०॥

हे अर्जुन! जो प्रिय वस्तुको पाकर प्रसन्न नहीं होते हैं और अप्रियको पाकर शोक नहीं करते हैं अर्थात् जिनके न हर्ष है न विषाद, ऐसे स्थिर बुद्धिवाले, मोहरहित ब्रह्मवेत्ता ब्रह्ममें स्थित रहते हैं ॥२०॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम्
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥

दोहा-बाहिरकेसुखकोतजै, हियसुखरहै सुजानि॥
ब्रह्मविषैचितकोधरै, लेहिसुआनंदमानि ॥२१॥

हे अर्जुन ! जो बाह्य इन्द्रियोंके रूपरसादि विषयोंमें आसक्त नहीं हैं वे अपनी आत्मामें परम शान्तिरूप सुखका अनुभव करते हैं और इस शान्तिसे वे ब्रह्मयोगमें अपनी आत्माको लगा समाधिद्वारा अक्षय सुखका अनुभव करते हैं ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥२२

दोहा-विषयजितसंसारके, तेहैंदुखकेमूल ॥
उपजतविनशतहैंतिन्हें, पंडितगहैनभूल॥२२॥

हे अर्जुन ! जो रूप रसादि इन्द्रियोंके भोगहैं वे दुःखके मूल कारण हैं. ये भोग उत्पन्न होते हैं और मिट जाते हैं. इससे विवेकी जन विषयोंमें रमण नहीं करते हैं ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

दोहा--कामक्रोधकेवेगको, जोसहिसकैसुभाय॥
तेयोगीकितहूंरहैं, स्थिरसुखलपटाय ॥२३॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य जीतेजी अथवा जबतक शरीरमें शक्ति बनी रहे तबही तक क्रोधके वेगोंको जीत लेता है वही इस संसारमें योगी है और वही सुखी हैं क्योंकि पुरुषार्थ घटनेपर तो सभीके काम क्रोध घटजाते हैं जैसा कहा भी है " धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते " ॥ २३ ॥

योऽतःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽतर्ज्योतिरेव यः
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति

दोहा–जाकेहियेप्रकाशहै, अंतरसुखआराम ॥
वहयोगीपरब्रह्ममें, लहैब्रह्मकोधाम ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जो अपनी आत्माहीमें सुखका अनुभव करता है और अपनी आत्माहीमें रमण करता है और जो अपने अन्तःकरणके आत्मसंबधी ज्ञानसे प्रकाशित है वही योगी ब्रह्मरूप होकर ब्रह्मके निर्वाण पदको प्राप्त होजाता है ॥ २४ ॥

लभंते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

दोहा–जोज्ञानीपापनितजै, होतब्रह्ममेंलीन ॥
भेदनातिनकेजीयमें. रहतसबनसोंदीन ॥२५॥

जिनके दोभाव नहीं हैं और अपनी आत्माको अपने बशमें कर रक्खा है और जो प्राणीमात्रकी भलाई चाहते हैं, जिनके संपूर्ण पाप क्षीण हो गये हैं वेही निर्वाण पदको पाते हैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

दोहा-कामक्रोधतेजेरहित, निजवशकीन्होंचित्त॥
आत्मतत्वकोजानिकर, ब्रह्मचहुँदेशिमित्त ॥

जो काम क्रोधसे रहित हो गये हैं जो संयमपूर्वक रहते हैं जिनने अपना मन वशीभूत कर रक्खा है और जो आत्मातत्त्व को जानते हैं उनके सब ओर ब्रह्मसुख वर्तमान रहता है ॥ २६ ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षश्चैवांतरे भ्रुवोः
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ॥

दोहा-तजेविषयसंसारमें, दृष्टिभौंहमधिराषि ॥
प्रानअपानहिसमकरत, नासामधिअभिलाषि॥

रूपरसादि इन्द्रियोंके बाह्य विषयोंको बाहर करके और नेत्रोंकी दृष्टि को भौंहके मध्यमें रख प्राण और अपान वायुको समान रख कुंभक प्राणायाम करें. भ्रूमध्यमें दृष्टि रखना इसलिये कहा है कि बन्द करनेसे तो निद्रा का भय है और खुले रखनेसे बाह्य विषयोंपर मन दौडताहै और अधखुले रहनेसे भ्रुकुटियोंके बीच दृष्टि निकट रहती है और दोनों वायु सम होकर नासिकारन्ध्रसे संचार करतीहै

जितेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः२८

दोहा–जीतैइंद्रीबुद्धिमन, मुक्तिहिमेंमनदेय ॥
इच्छाभयक्रोधरहितजै, मुक्तिपदारथलेय ॥ २८ ॥

वह मुनि जिसने अपनी इन्द्रियां, मन और बुद्धि जीत लिये हैं, जो मोक्षहीका आश्रय लिये रहता है और जिसके इच्छा, भय और क्रोध दूर होगये हैं वह सदा ही जीवन्मुक्त है ॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति॥

दोहा–तपयज्ञनकोभोगकै, सबलोकनिकोईश ॥
शांतिलहैयोंजानिकै, मोकोप्रभुजगदीश॥२९॥
सांख्ययोगअरुकर्मको, दियोविकल्पमिटाय ॥
यातेसेवनदुहुनको, कह्योपांचवेंध्याय ॥ १ ॥
कह्योजगतमनभावतो, वरन्योयोग संन्यास ॥
यदुपतिआनंदरामको, दीजैभक्तिविलास ॥२॥

सब यज्ञों और तपोंका भोगनेवाला संपूर्ण लोकोंका ईश्वर और सब प्राणियोंका सुहृद जो मुझे जानते हैं उन्हींको शांति मिलती है २९

समीक्षा–उपरोक्त श्लोकमें जो यह कहा है कि मैं यज्ञ, तपका रक्षकहूं उससे अभिप्राय यह है कि जो पुरुष यज्ञ अर्थात् परोपका-

रादि कर्म और तप अर्थात् अपने मन और इन्द्रियोंके दमन रूप कर्म को करते हैं, उनको मैं विविध दुःखतापसे बचाता हूं.

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषा-टीकायां संन्यासयोगोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समीक्षा--इस पांचवे अध्याय में श्रीकृष्ण महाराजने अर्जुन को यह समझायाहै कि मनुष्य को उत्तम कार्य करते यदि विघ्न उपस्थित हों तो चित्तमें घबराहट न आने दे, किंतु सुख दुःखको समान समझः ते हुए एक वीर पुरुष की भांति देश सेवा और जाति सेवा के कामों में आगेही आगे बढते जाना चाहिये न कि थोडा सा विघ्न उपस्थित होने पर कायर होकर गीदड की भांति दुमदबा भाग जाना चाहिये।

विजय की इच्छा करने वाले पुरुष को इंद्रियोंके भोग विलास का दास कदापि नहीं बनना चाहिये। जो केवल इन्द्रियोंके सुखोंकोही ढूंढनेवाले हैं चाहे उनकी ओरसे देश या जाति रसातलको जाए! उनसे कदापि देश या जाति या स्वयं उनकी आत्मा की भलाईकी आशा बुद्धिमानोंको न रखनी चाहिये। यही गम्भीर उपदेश अध्याय ५ के श्लोक २० से लेकर २८ पर्यंत दिये गये हैं।

और अंतके श्लोक २९ में किस सुंदरतासे यह दिखाया है कि जो उत्तम और धार्मिक पुरुष हैं उन को यह दृढविश्वास रखना चाहिये "कि हमको हानि पहुंचाने की किसी को भी सामर्थ्य नहीं है, अतःहमको अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें दृढ पुरुषार्थ करते रहना चाहिये; ईश्वर सबप्रकारसे हमको सहायता देनेवाला है; कामी, धर्मध्वजी, पामर, अन्यायी और लालची मनुष्य, चाहे वह प्रत्यक्षमें कैसेही बली, धनाढ्य और समृद्धिमान क्यों न दीख पडें हमारा बाल भी बांका नहीं करसके"।

(पृष्ठ ११३ से आगे)

[९] नीची श्रेणीके मनुष्योंके साथ उच्च श्रेणीके मनुष्योंको उत्तम वर्ताव करना चाहिये, उनको हिन्दु (आर्य) धर्मका गौरव और अभिमान सिखाकर उनके साथ इस प्रकार प्रेमका वर्ताव करना चाहिये कि वह ईसाई, मुसलमान नहीं बनने पावें और जब वह योग्य बनकर अपना मलीन धंधा छोडदें, तो उनके साथ छूआछूत करनी छोड दी जाय। उन में से जो लोग इस समय ईसाई, मुसलमान होगये हों उनको प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धिकरलीजाये और पुनः हिन्दु (आर्य) धर्म की गोदमें उनको लाकर "शोधित आर्य (हिन्दु)" उनका जातिनाम रक्खाजाय। दिनप्रतिदिन हिन्दु [आर्य] जाति की संख्या घट रही है. इस प्रवाहको यदि न रोका जायगा तो हिन्दु [आर्य] जातिके नष्ट होनेका भय है। पिछले समयमें भी शुद्धि के अनेक दृष्टांत मिलते हैं यथाः—

(क) राजा जरासंध का मगधदेश में लाखों शूद्रों को ब्राह्मण बनाना, जिनको अभी तक "जरासंधिया" ब्राह्मण कहते हैं (ख) शंकराचार्य का बौद्ध पंथवालों को ब्राह्मणादि बनाना, जब कि वह एकही वर्ण हो रहे थे. शंकराचार्यने गुण कर्मानुसार यज्ञोपवीत संस्कार करके उनको फिरसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य बनाये (ग) दक्षिण निवासी ब्राह्मणों द्वारा म्लेच्छजाति के शक लोगों का जो दक्षिण भारतमें आये, शिवधर्मी वैश्य बनाया जाना (घ) राजपूताना प्रांत में बीकानेर आदि राज्यों में दो सौ तीन सौ वर्ष पूर्व शूद्रों का ब्राह्मण बनाया जाना। अतिप्राचीन समय में भी योग्य होने पर गुणकर्म से ब्राह्मणादि बनने के कितने ही दृष्टांत मिलतेहैं, परन्तु जन्मसे ब्राह्मणादि होनेवालोंका सम्मान अधिक होताथा.

[१०] वर्तमान समय में जो लोग "पतित जाति" के नाम से पुकारे जाते हैं उनको चाहिये, कि अपना मलिन धंधा बताने में लज्जित न हों; और न उनको दुःखी और निरुत्साही ही होना चाहिये; क्योंकि प्रथम तो धंधेसे जातिका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी बात यहभी है कि—

इतिहास, और उनकी दंतकथाओं के जानकारोंने पता लगाया है कि इस समय जो मोची चमार हैं, वह एक समय उच्चजाति वाले थे। अब भी मलिन धंधा छोडने पर उच्चजाति की गणना में आसक्ते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष में भी लोग प्रायः गुणकर्मानुसार ही मान पारहे हैं। भारतवर्ष के पूर्वज ऋषिगणोंने पादपूजा का उपदेश दिया है, इस बात पर ध्यान देनेसे पता लगता है कि, ऋषि लोग पैरों का कितना महत्व समझते थे। अभी तक भी पूजनीय मनुष्योंके पैरों की ही पूजा होरही है न कि शरीर के किसी दूसरे अंगकी। बिना पैरों के जैसे शरीर किसी काम का नहीं, वैसेही हिन्दु [आर्य] समाज रूपी शरीर भी शूद्ररूपी पैरोंके बिना किसी

कामका नहीं; इसीलिये इन के साथ सबको प्रेम का वर्ताव करना चाहिये।

इस दृष्टान्तसे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि शूद्रोंको पूजना चाहिये या द्विजातिके मनुष्योंकी अपेक्षा उनको उत्तम समझना चाहिये, किन्तु आशय यह है कि उनको तुच्छ समझकर उनका तिरस्कार नहीं किया जाय.

शूद्रों को यह जानकर उत्साह ग्रहण करना चाहिये कि,धर्म ग्रंथों में उत्तम शूद्र का वैसा ही सम्मान करना लिखा है जैसा कि एक ब्राह्मण का।

हमारे अवतार और धर्म के आचार्योंने शूद्रों का आतिथ्यसत्कार ग्रहण किया है, जैसा कि रामचंद्रजी महाराज मुनियोंके आश्रममें न जाकर भीलनी के आश्रममें गये और उसके शुद्ध प्रेम से इतने संतुष्ट हुए कि, उसके हाथके उच्छिष्ट बेरों को खाया। भरतजी महाराज और वशिष्ठ मुनि गुहक भीलके स्थानपर गये और उस का आतिथ्य सत्कार ग्रहण किया। आजकल यदि कोई विचारहीन मनुष्य उनके साथ उत्तम व्यवहार न करे तो उनको उस बातसे अप्रसन्न नहीं होना चाहिये, क्योंकि धर्म ग्रंथोंमें तो योग्यतानुसार उनका पूरा२ आदर और सम्मान करना लिखा है।

शूद्र शब्द का अर्थ पवित्रताको त्यागनेवाला है,जैसा कि इस शब्दकी व्युत्पत्तिसे स्पष्ट प्रतीत होता है; यथा–"शूचंद्रवतीति शूद्रः" अर्थात् जो शुद्धि और सात्विकताको त्यागकर मलीनता और दरिद्रता दोनों को धारण करता है वही शूद्र है। पवित्र, विद्वान् और धनवान होने पर उस की शूद्र संज्ञा नहीं रहती.

[११] देशीशिल्प, कृषि और वाणिज्यको उन्नत करनेके लिये यहींपर उस२ विद्याको जाननेवाले मनुष्य उत्पन्न किये जायँ। एक समय ऐसा था कि भारत वर्षका बना हुआ कई करोड रुपयोंका कपडा बाहर यूरोप आदि देशोंको जाता था। परन्तु हम लोगोंने यंत्रादि की खोज न करके पुराने ढंग परही शिल्पादिका काम प्रारंभ रक्खा, और यूरोप अमेरिका आदि देशोंके लोग नये २ यंत्र कलायें निकालकर आगे बढते गये और इन विद्याओंको बहुत उन्नत कर लिया। इस का परिणाम यह हुआ कि,हम लोग अपने लिये आवश्यकीय वस्तुएँ न बनासकने के कारण उन देशोंकी ओर ताकते रहगये। जबतक उन लोगों के समान हम भी मिलकर कम्पनियें नहीं खोलेंगे और यहांके लोगों को विद्वान नहीं बनायेंगे, तब तक उन देशों के समान उन्नति नहीं कर सकेंगे। वहां के लोग व्यापारमें कितने उन्नत होगये हैं इसका पता इसी बातसे लगसक्ता है कि अमेरिकाकी स्टेंडर्डओईल कम्पनी अर्थात् "किरोसीन तेल का व्यापार करने वाली मण्डली" का स्वामी एक वर्ष में अठारह करोड रुपये की आय रखता है। यूरोप, अमेरिका में ही अनेक अर्बपति धनाढ्य लोग पडे हैं। यह सब सम्पत्ति समयानुकूल यंत्रों द्वारा व्यापार में उन्नति करनेका ही परिणाम है। [अपूर्ण]

अथ षष्ठमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः

दोहा—कर्मफलनचाहैनहीं, कर्मनिकरतजुआहि ॥
योगीसंन्यासीवही, अगिनिअक्रिया नाहि॥१

हे अर्जुन ! जो अपने किये हुए कर्मोंके फलकी इच्छाको छोड अपना नित्य नैमित्तिक कर्म करते रहते हैं, वेही संन्यासी और वेही योगी हैं और जो अग्निहोत्रादिकर्म त्याग देते हैं और वापी कूप खननादि कर्मोंका परित्याग कर निष्क्रिय हो जाते हैं न वे संन्यासी हैं, न वे योगी हैं, इसमें यह दिखाया है कि, संन्यास लेने परभी आन्हिककर्म करना अवश्य है और कर्म करते हुएभी कर्मफलकी इच्छा न करना संन्यास है ॥ १ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन

दोहा—जाकोंसंन्यासीकहै, वहैयोगतूजानि ॥
बिनुसंन्यासहियोगनहिं, यहैसाँचहूंमानि ॥२॥

हे अर्जुन ! जिसको संन्यास कहते हैं उसीको योगजान, ऐसा कर्म निष्ठ वा ज्ञाननिष्ठ कोई नहीं है-जो विना फल संकल्पके त्यागे योगी हो सकताहो,क्योंकि कर्मफलका त्याग संन्यासमें भी है और योगमें भी है

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते

दोहा–योगहिकर्मनतेलहत, ज्ञानीचित्तविचारि ॥
योगलहेशांतीगहे, विषयइंद्रियनमारि ॥ ३ ॥

जो ज्ञानयोगकी प्राप्ति करना चाहते हैं उनको ज्ञान प्राप्तिका कारण कर्म कहा है क्योंकि निष्काम कर्म करनेसे चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उस ज्ञानप्राप्तिसे मनुष्यको शान्ति मिलती है ॥ ३ ॥

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥

दोहा–विषयनसों अरुकर्मसों, होयप्रीति जबदूरि॥
सबसंकल्पनकोतजै, योगरहैजबपूरि ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! जब मनुष्य इन्द्रियोंके रूपरसादि विषयोंमें आसक्त नहीं होता है और न कर्ममें आसक्त होता है, और संपूर्ण फलसंकल्पोंका परित्याग कर देता है, वही योगारूढ कहलाता है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः

दोहा–निजआतमकोउद्धरत, अधोगमनजुकरेय
आतमहीरिपुआपको, आतमहीसुखदेय ॥५॥

हे अर्जुन ! विवेकी पुरुषको उचित है कि, अपनी आत्माका संसारसे आपही उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे, क्योंकि कामनासे रहित जो आत्मा अर्थात् अपना मन बंधुके समान उपकारी है और सकाम आत्माही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

दोहा–आपुहिजीत्योआतमा, सोईबंधुजुयाहि ॥
जिनजीत्योनाहीजुवह, अरिजानियेसुताहि॥६

हे अर्जुन ! जिसने अपनी आत्मासे आत्मा जीत ली है, तो वही आत्मा उसका बंधु है और जो आत्मा नहीं जीती है, तो उसकी आत्माही उसका शत्रु है अर्थात् आपही अपना शत्रु है और आपही अपना मित्र है ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः

दोहा–जिनजीत्योहैआतमा, शांतलहै बहुज्ञान ॥
शीतउष्णसुखदुखसमें, अरुअपमानजुमान ७

जिसने अपना मन अपने वशीभूत करलियाहै और शीत, उष्ण सुख, दुःख और मान अपमानमें जो सदा शान्त रहताहै, उसके हृदय में परमात्मा स्थिर है अथवा उसीकी बुद्धि अत्यन्त सावधान रहती है

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते

दोहा-योगहिकर्मनतेलहत, ज्ञानीचित्तविचारि ॥
योगलहेशांतीगहे, विषयइंद्रियनमारि ॥ ३ ॥

जो ज्ञानयोगकी प्राप्ति करना चाहते हैं उनको ज्ञान प्राप्तिका कारण कर्म कहा है क्योंकि निष्काम कर्म करनेसे चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उस ज्ञानप्राप्तिसे मनुष्यको शान्ति मिलती है ॥ ३ ॥

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥

दोहा-विषयनसों अरुकर्मसों, होयप्रीतिजबदूरि॥
सवसंकल्पनकोतजे, योगरहेजवपूरि ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! जब मनुष्य इन्द्रियोंके रूपरसादि विषयोंमें आसक्त नहीं होता है और न कर्ममें आसक्त होता है, और संपूर्ण फलसंकल्पोंका परित्याग कर देता है. वही योगारूढ कहलाता है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः

दोहा-निजआतमकोउद्धरत, अधोगमनजुकरेय
आतमहीरिपुआपको, आतमहीसुखदेय ॥५॥

हे अर्जुन ! विवेकी पुरुषको उचित है कि, अपनी आत्माका संसारसे आपही उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे, क्योंकि कामनासे रहित जो आत्मा अर्थात् अपना मन बंधुके समान उपकारी है और सकाम आत्माही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

दोहा-आपुहिजीत्योआतमा, सोईबंधुजुयाहि ॥
जिनजीत्योनाहीजुवह, अरिजानियेसुताहि ॥ ६

हे अर्जुन ! जिसने अपनी आत्मासे आत्मा जीत ली है, तो वही आत्मा उसका बंधु है और जो आत्मा नहीं जीती है, तो उसकी आत्माही उसका शत्रु है अर्थात आपही अपना शत्रु है और आपही अपना मित्र है ॥ ६ ॥

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः

दोहा-जिनजीत्योहैआतमा, शांतलहै बहुज्ञान ॥
शीतउष्णसुखदुखसमें, अरुअपमानजुमान ७

जिसने अपना मन अपने वशीभूत करलियाहै और शीत, उष्ण सुख, दुःख और मान अपमानमें जो सदा शान्त रहताहै, उसके हृदय में परमात्मा स्थिर है अथवा उसीकी बुद्धि अत्यन्त सावधान रहती है

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः

दोहा-ज्ञानतज्ञानविज्ञानको, अरुइंद्रीजितहोय ॥
सोनोपाहनएकसम, गनैजुयोगीकोय ॥ ८ ॥

शास्त्र वा गुरुके उपदेशसे उत्पन्न जो ज्ञान और अनुभवसिद्ध जो विज्ञान इनसे सन्तुष्ट है आत्मा जिनकी और जिनका मन कभी चलायमान नहीं होता है, इन्हीं कारणोंसे जिनकी इन्द्रियां वशीभूत होगई हैं और इसीसे वे मिट्टी, पत्थर वा सुवर्णको समान समझते हैं ऐसेही योगी योगारूढ होते हैं ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

दोहा-मित्रउदासीशत्रुपुनि, अरुनिजबंधुसमान॥
साधोपापीचित्तमें, गनैएकअनुमान ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बंधुवर्ग, साधु और पापाचारियोंमे समान दृष्टि रखता है, अर्थात् सबको एक सा समझता है, वह योगियोंसे भी बढकर है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥

दोहा-बैठैएकोएकाचित्त, योगीसाधैयोग ॥
एकाकीचाहैनकछु, जोरैनहिंसुखभोग ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! योगीको उचित है कि-सदा एकान्तमें रहै, किसीको संग न रक्खै, अपने मन और आत्माको वसमें रक्खै, किसी बात-

की आशा न रक्खै और न किसी वस्तु का संग्रह करै, इस प्रकार निरन्तर अपनी आत्माको परमात्मामें लगाता रहै ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्

दोहा—ठौरपुनीतनिहारिके, करिआसनविस्तार ॥
नहिंऊंचोनीचोनहीं, पटकुशअजिनविथार ११

हे अर्जुन ! योगसाधन के लिये सुन्दर पवित्र भूमिमें जो न बहुत ऊंची हो, न बहुत नीची हो उसपर कुशाका आसन बिछावै उसपर मृगचर्मपर वस्त्र बिछाकर निश्चल मन होकर बैठै ॥११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

दोहा—करिबैठैमनकोजुथिर, सबइंद्रिनकोजीति ॥
करिकैआसनशुद्धको, योगकरैइहिरीति ॥१२॥

उस आसन पर बैठ मनको एकाग्र कर चित्तको रोक क्रियासे रहित हो अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये योग साधन करै ॥१२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्

दोहा—कायाशिरअरुग्रीवको, राखैएकसमान ॥
दृष्टिकरैनिजनासिका, देखैनाहिंदिशिआन १३

दोहा-ज्ञानतज्ञानविज्ञानको, अरुइंद्रीजितहोय ॥
सोनोपाहनएकसम, गनैजुयोगीकोय ॥ ८ ॥

शास्त्र वा गुरुके उपदेशसे उत्पन्न जो ज्ञान और अनुभवसिद्ध जो विज्ञान इनसे सन्तुष्ट है आत्मा जिनकी और जिनका मन कभी चलायमान नहीं होता है, इन्हीं कारणोंसे जिनकी इन्द्रियां वशीभूत होगई हैं और इसीसे वे मिट्टी, पत्थर वा सुवर्णको समान समझते हैं ऐसेही योगी योगारूढ होते हैं ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

दोहा-मित्रउदासीशत्रुपुनि, अरुनिजबंधुसमान॥
साधोपापीचित्तमें, गनैएकअनुमान ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बंधुवर्ग, साधु और पापाचारियोंमे समान दृष्टि रखता है, अर्थात् सबको एक सा समझता है, वह योगियोंसे भी बढकर है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥

दोहा-बैठेएकोएकाचित्त, योगीसाधैयोग ॥
एकाकीचाहैनकछु, जोरैनहिंसुखभोग ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! योगीको उचित है कि-सदा एकान्तमें रहै, किसीको संग न रक्खै, अपने मन और आत्माको बसमें रक्खै, किसी बात-

की आशा न रक्खै और न किसी वस्तु का संग्रह करै, इस प्रकार निरन्तर अपनी आत्माको परमात्मामें लगाता रहे ॥ १० ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्

दोहा–ठौरपुनीतनिहारिके, करिआसनविस्तार ॥
नहिंऊंचोनीचोनहीं, पटकुशअजिनविथार११

हे अर्जुन ! योगसाधन के लिये सुन्दर पवित्र भूमिमें जो न बहुत ऊंची हो, न बहुत नीची हो उसपर कुशाका आसन बिछावै उसपर मृगचर्मपर वस्त्र बिछाकर निश्चल मन होकर बैठै ॥११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः॥
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥

दोहा–करिबैठैमनकोजुथिर, सबइंद्रिनकोजीति ॥
करिकैआसनशुद्धको, योगकरैइहिरीति ॥१२॥

उस आसन पर बैठ मनको एकाग्र कर चित्तको रोक, क्रियासे रहित हो अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये योग साधन करै ॥१२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्

दोहा–कायाशिरअरुग्रीवको, राखैएकसमान ॥
दृष्टिकरैनिजनासिका, देखैनाहिंदिशिआन१३

सर्व देह, सिर और ग्रीवाको सीधी रक्खै, इधर, उधर न हिलावै और स्थिर रक्खे और अपनी नासिका के अग्रभागको देखता रहै तथा किसी ओर दृष्टि न चलावै ॥ १३ ॥

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

दोहा–शांतिगहैभयकोतजै, ब्रह्मचर्य्यव्रतलेय ॥
मोमेराखैरोकिमन, लहैयोगकोभेय ॥ १४ ॥

मनको शांतकर, निर्भय हो, ब्रह्मचर्यवृत्तमें स्थित रह, मुझमें चित्त लगाय मनको रोक मुझमें तत्पर हो. योगका साधन करे ॥ १४ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥
शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति

दो०-यहिविधिकरैजुयोगको,निजमनकोथिरराखि
शांतिलहैमोकोमिलै, लहैअमीरसचाखि ॥ १५ ॥

मनको वसमें रखनेवाला जो योगी इस प्रकारसे सदा अपनी आत्मा को योगमें तत्पर करैगा. वह परम पदरूप और मुझमें स्थित ऐसी जो शांति अर्थात मोक्षको पावेगा ॥ १५ ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥

दोहा–योगलहैनहिंबहुभखै, विनुखायेहूमित्त ॥
सोवतहूनहिंहोतहै, नहिंअतिजागेनित्त ॥१६॥

हे अर्जुन ! जो बहुत भोजन करता है उसका योग सिद्ध नहीं होता और जो निराहार रहता है उसका योगभी सिद्ध नहीं होता जो बहुत सोता है वा बहुत जागताहै उसकाभी योग सिद्ध नहीं होता है१६

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

दोहा-युक्तविहार अहारको, कर्मयुक्तपुनिहोय ॥
जागतसोवतजोजुगत, सोडारतदुखधोय॥१७

हे अर्जुन! जो मनुष्य आहार और विहारप्रमाणसे करताहै और कर्मभी युक्तिपूर्वक प्रमाणसे करता है और जो प्रमाणहीसे जागता वा सोता है उसका योग दुःखोंका दूर करनेवाला है. इसका तात्पर्य यह है कि योगीको उचित है कि आहारादि उक्त कर्म परिमित और नियमानुकूल करै ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा

दोहा-जोनिजचित्तकोरोकिकै, राखतआतममाहिं
तजैसबजोकामना, सोयोगीनरनाहिं ॥ १८ ॥

जब मनुष्य अपनी आत्माहीमें अपने चित्तकी वृत्तियोंको रोकलेता है और संपूर्ण कामनाओंको छोडकर निःस्पृह होजाता है तबही वह पुरुष युक्त अर्थात् सिद्ध योगी कहाता है ॥ १८ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः

दोहा—जैसेदीपसमीरबिनु, रहैज्योतिठहराय ॥
योगीनिश्चलचित्तको, उपमाहैयाभाय ॥ १९ ॥

जैसे निर्वातस्थानमें रक्खे हुए दीपककी ज्योति हिलती झुलती नहीं है ऐसेही उपमा उस योगीकी है. जिसने अपना चित्त वशीभूत कररक्खाहै और सदैव योगाभ्यासमें मनलगाये रहताहै तो उसका मन निर्वातस्थानमें रक्खेहुए दीपककी भांति चलायमान नहीं होता है ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति

दोहा—योगीसेवतयोगको, चित्तवृत्तिठहराय ॥
निरखतआतमकोतहाँ, रहतसदासुखपाय २०

जिस अवस्थामें योगाभ्याससे अपनी चित्तवृत्तियोंके रुकनेपर जहां विश्राम लेता है और जहां बुद्धिद्वारा आत्मस्वरूपको देखता है और अपनी आत्माहीमें संतुष्ट होता है ॥ २० ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥

दोहा—जोसुखइंद्रिनतेपरे, बहुतबुद्धिगहिलेत ॥
वासुखकोजानेतबै, तापाछेइहनेत ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! जिस अवस्थाविशेषमें योगीजन किसी ऐसे अत्यन्त सुखका अनुभव करते हैं जो इन्द्रियोंके विषयसे दूर हैं और केवल बुद्धिद्वाराही जाना जाता है, इसीसे उस सुखमें स्थित हो योगी आत्मस्वरूपसे चलायमान नहीं होता है ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

दोहा–जोपायेलाभनअधिक, औरजानिरेमित्त॥
स्थिरतागहिडोलैनहीं, बहुदुखपायेचित्त॥२२॥

हे अर्जुन ! जो आत्मस्वरूपरूपी इस सुखको पाकर इससे अधिक और किसी लाभको नहीं मानते हैं और उस सुखमें स्थित होकर बडे बडे जो शीतोष्णादि सुख दुःख हैं उनसे भी विचालित नहीं होता है ॥ २२ ॥

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

दोहा–दुखहीकोसंयोगको, मानजुलेतवियोग॥
निश्चैकरियोगहिकरै, ताकौं कहत जु योग२३

जिस अवस्थामें दुःखका लेशमात्रभी नहीं रहता है. उसी अवस्थाको योगावस्था समझना चाहिये, इससे स्थिरचित्त होकर यत्नपूर्वक योगाभ्यास करना उचित है ॥ २३ ॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः॥
मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः २४॥

दोहा–संकल्पनि जोकामना, तिन्हैंतजैचितलाय
मनसोंरोकैइंद्रियन. योगकरैयहभाय॥ २४॥

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली जो योगसाधनमें बाधा डालनेवाली कामनायें हैं उन सबको सर्वथा त्यागकर और इन्द्रियोंको मनसे संपूर्ण विषयोंसे रोककर योगाभ्यास करै ॥ २४ ॥

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत ॥

दोहा–धीरजधरिअरुबुद्धिकरि, परैरहैसबत्यागि ॥
कछुवैकरैनकामना, आतमसौंअनुरागि ॥२५॥

धृति जो धारण उस करके वशीभूत जो बुद्धि उससे मनको धीरे धीरे आत्मामें लीन करै और फिर किसी बातका चिन्तवन न करै शीघ्रता करनेसे मन स्थिर नहीं होता है ॥ २५ ॥

यतोयतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

दोहा–मनचंचलजिततितचलै, ताकोराखैरोकि ॥
करिसंयमनिजआतमा, सजैजुताकोठौंकि २६

यह मन बडा चंचल है किसी एकही जगह स्थिर नहीं रहता है, इससे जहां २ यह फिरै वहां वहांसे इसे रोककर आत्मामें स्थिर करै २६

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् २७

दोहा–जाके मनमेंशांतिहै, ताहीकौसुखहोय ॥
मगनजुब्रह्मानंदमें, पापरहितमुनिसोय ॥२७॥

हे अर्जुन ! जिसका मन ऊपर लिखी रीतिसे शांत हो गया है, रजोगुण नष्ट हो गया है और आत्मा निष्पाप हो ब्रह्ममें लीन हुआ है. ऐसे योगीको समाधिका उत्तम सुख अपने आप प्राप्त होजाता है

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः॥
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते २८

दोहा–जोयोगीइहिविधिकरै, करैपापकौत्यागि ॥
सहजहिब्रह्महिकेसुखहिं, लहैवहैअनुरागि २८

इस प्रकार सदा आत्माको लगाये रखनेवाला निष्पाप योगी सुखपूर्वक बिनाही परिश्रम महान ब्रह्मसुखको भोगता है ॥ २८ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः २९

दोहा–मोहिलखैसबठोरमें, सबकोमोहीमांहि ॥
मोकोदेखतसोसदा, हौंहूदेखतताहि ॥ २९ ॥

सबको समान दृष्टिसे देखनेवाले योगाभ्यासी अपनी आत्माको सब प्राणीमात्रमें देखते हैं और संपूर्ण प्राणियोंको अपनी आत्मामें देखते हैं ॥ २९ ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति

दोहा–जोमोकोसबमेंलखै, सबजगमोहियमाहिं॥
ताकेहौंढिगहीरहौं, सोमेरे ढिगआहिं ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! जो मुझको संपूर्ण प्राणीमात्रमें देखता है और सब प्राणीमात्रको मुझमें देखता है उस योगीसे मैं अदृश्य नहीं रहता हूं और न वह मुझसे अदृश्य रहता है अर्थात् मैं प्रत्यक्ष होकर उसे दर्शन देता हूं ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

दोहा–सर्वविषेस्थितजुहो, इकलखिभजैसुमोहिं ॥
रहौकौनहूंभांतिवह, मोमैंवर्तैसोहिं ॥ ३१ ॥

जो अभेद बुद्धिसे संपूर्ण प्राणियोंमें स्थित मुझको भजता है वह योगी संपूर्ण कर्मोंको परित्याग करने परभी सर्वथा वर्त्तमान-अर्थात् जीवित दशामें मुझसे मिलजाता है अर्थात् जीवन्मुक्ति पाता है ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः

दोहा–सबकोदेखेआपसम, सुखीदुखीइकभाय ॥
सो योगीसबते बडो, मोमे रहै समाय ॥३२॥

हे अर्जुन ! जो संपूर्ण प्राणियोंके दुख सुखको अपने दुःख सुखके समान मानता है और सबको एकसा देखता है वही योगी श्रेष्ठ है ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्

दोहा–योगकह्योतुमकृष्णजू, मोकोएकसमान ॥
रहैनमोचितचपलहै, जोतुमकियोबखान ॥३३

श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने कहा कि–हे मधुसूदन! जो आपने योगकी यह रीति बताई कि सबको समभावसे देखे सो मैं अपनी बुद्धिकी चंचलतासे यह समझताहूं कि इस प्रकारका योग बहुत कालतक स्थिर नहीं रह सकता है ॥ ३३ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्॥
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्

दोहा–मनहैचंचलकृष्णजू, बहुक्षोभकदृढजानि ॥
ताकोरोकनपवनसम, हैअतिकठिनजुमानि३४

हे कृष्ण! यह मन बडा चंचल है देह और इन्द्रियगणोंको क्षोभकारक है बडा बलवान् और दृढ है इस मनको रोकलेना मेरी समझमें ऐसा कठिन है जैसा प्रबल वायुका रोकनां ॥ ३४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

दोहा–अर्जुनतुमसाँचीकही. मनचंचलनगहाय ॥
योगाहितैवैराग्यतैं, नीकेपकरोजाय ॥ ३५ ॥

अर्जुनकी बात सुन श्रीकृष्ण बोले–हे महाबाहो! निस्संदेह मन बडा चंचल है यह करु नहीं सकता है परन्तु हे कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्यसे निग्रह हो सकता है ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः

दोहा-जिनपकऱ्योनहिंचित्तनिजु, तापैयोगनहोय
जिनअपनोमनवशकियो,लहतयतनसोसोय३६

हे अर्जुन ! मेरी समझमें तो यह आता है कि, जिसका मन वश-में नहीं है वहभी योगसाधन नहीं करता है जो जितेन्द्रिय हैं वेही यत्न पूर्वक योगसाधनकर सकते हैं ॥ ३६ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥

दोहा-अयतीअरुश्रद्धासहित, योगभ्रष्टतापाइ ॥
लहैनसिद्धसुयोगको, कहौकौनगतिजाइ ॥३७

हे कृष्ण ! जो प्रथमही श्रद्धापूर्वक योगसाधनमें प्रवृत्त हुआ परन्तु पीछे ठीक उपाय न करसका अर्थात अभ्यासमें शिथिल हो गया और इस कारणसे उसका मन योगसे चलायमान हो गया तो ऐसा मनुष्य योगकी सिद्धिरूप फलको न पाकर किस गतिको प्राप्त होता है

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥

दोहा-किधौंदुहुनजेभ्रष्टहैं, बादरज्यौंविनसाय ॥
ताकोकछूनआसरो, रह्योमूढकेभाय ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो ! न तो प्राणीमें निष्काम कर्म करके ईश्वरको समर्पण किया और काम्यकर्म न करके स्वर्गादिकी प्राप्तिसेभी वंचित रहा और योगसिद्ध न होनेसे मोक्षभी न मिली, वह मनुष्य दोनों ओरसे भ्रष्ट और अप्रतिष्ठित होकर क्या उस मेघके समान नष्ट नहीं होता है जो एक मेघसे निकल कर दूसरे में मिलनेसे बीचहीमें नष्ट हो जाता है ॥ ३८ ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यस्संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥

दोहा–मेरेयासंदेहको, करौ दूर जगदीश ॥
याकहिवेकोतुमउचित, नहींशेषअजईश ॥३९

हे कृष्ण ! मेरे इस संशयको पूर्ण रीतिसे दूर करनेके योग्य आपही हैं क्योंकि इस संशयको दूर करनेवाला आपके सिवाय कोई नहीं है

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

पार्थनैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति

दोहा–अर्जुनदोउलोकमें, ताको होई न नास ॥
भलेकर्मजेकरतहैं, तिनकोंनाहिंअघवास ॥४०॥

अर्जुनकी बात सुन श्रीकृष्ण बोले–कि हे अर्जुन ! उस मनुष्यका इस लोकमें वा परलोकमें कहीं भी नाश नहीं होताहै क्योंकि कोई भी शुभकर्म करनेवाला दुर्गति नहीं पाता है ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीःसमाः
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते

दोहा-पुण्यवंतकेलोकलहि, रहितबहुत दिनजाय
योगभ्रष्टधनवंतशुचि, तिनघरजनमतुआय ॥

जो मनुष्य योगभ्रष्ट होकर उसीदशामें मरजाते हैं वे पुण्यात्मा लोगोंके लोकोंमें जाकर बहुत दिन तक वास करते हैं और फिर फिर पवित्र लक्ष्मीवान् पुरुषोंके घर जन्म लेकर अनेक सुख भोगते हैं

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

दोहा-बुद्धिवंतयोगीकुलनि, आनिलेतअवतार ॥
जन्मलहतऐसेघरनि, दुर्लभहैनिरधार ॥ ४२ ॥

अथवा वे योगभ्रष्ट फिर बुद्धिमान योगियोंहीके घर जन्म लेते हैं, जो ऐसा जन्म है, वह इस लोकमें दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ॥
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ४३॥

दोहा-तिनह्वपहिलीदेहको, लहतबुद्धिसंयोग ॥
यतनकरतहैसिद्धिको, बहुविधिसाधनयोग४३

हे अर्जुन ! इस संसारमें जन्म लेकर फिर वह पूर्व जन्मके बुद्धि संयोगको पाताहै और उस बुद्धिसंयोगद्वारा योग सिद्धिके लिये फिर यत्न करता है ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ॥
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

दोहा—सोतोअपनोवशनहीं, हैपहिलोअभ्यास ॥
तातेउपजैयोगको, ब्रह्मसिंधुमेंवास ॥ ४४ ॥

अवश होनेपरभी अर्थात् सांसारिक विषयवासना काम क्रोधादिमें लिप्त होनेपरभी वह उस पूर्वजन्मके अभ्यास के कारण योगसंसिद्धिमें निरत हो जाता है और योगस्वरूपके जाननेकी इच्छा करनेवाला भी केवल योगकोही नहीं पाताहै किन्तु वेदोक्त कर्मफलसे अधिक फल पाकर मुक्त होजाता है ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परांगतिम्

दोहा—योगीजोजतनहिंकरै, डारैसबअघधोय ॥
बहुतजन्मसिद्धिहिलहै, ताहिपरमगतिहोय ॥

जो योगी इस प्रकार यत्न करता रहता है उसके सब पाप दूर होजाते हैं और अनेक जन्मोंमें योगकी सिद्धि पाकर श्रेष्ठ गति अर्थात् मोक्ष पाता है ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि-
मतोऽधिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

दोहा–तपसिउते योगी अधिक, ज्ञानीहूते ज्ञानि॥
कर्मनिहूते है अधिक, अर्जुन योगहिं मानि॥४६

हे अर्जुन ! तपस्वियोंसे योगी अधिक होता है, ज्ञानियोंसे भी योगी अधिक है और जो वापी कूपादिके बनाने वाले कर्मनिष्ठ हैं उनसेभी योगी अधिक है. इससे हे अर्जुन ! तू योगी हो ॥ ४६ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना ॥
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः

दोहा–जो योगीराखैमनहिं, मोमेंनिश्चलभाय ॥
श्रद्धायुतमोकोंभजै, सोसबतेंअधिकाय ॥४७॥
कर्मज्ञानमतयोगते, भगतिसबनिसिरमौर ॥
तिनअर्जुनहौंवशकियो, मोविनुछिननहिंऔर॥
शुद्धचित्तसंन्यासते, ध्यानविनाकिहिभाय ॥
मुक्तिहोययातेकह्यो, ध्यानछठेअध्याय ॥ २ ॥
सोइध्याननिश्चैकह्यो, मनमेंआनंदराम ॥
जाहिनिरंतरकेकिये, होइहैंआतमराम ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो श्रद्धापूर्वक मुझमें चित्त लगाय मेराही भजन स्मरण करता है वह संपूर्ण योगियोंमें श्रेष्ठ है यही मेरा मत है ॥४७

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां अभ्यासयोगोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमपट्कम् ॥

समीक्षा—इस अध्यायमें इस लोक और परलोक में उत्तम गति प्राप्तिके योगादिसाधनों का वर्णन कियागया है। परंतु योग आदि साधन तभी प्राप्त होसकेंगे जब शरीर स्वस्थ और बल, वीर्य करके युक्तहोगा, शरीरका बलिष्ठ होना जाठराग्निके प्रबल रहनेपर निर्भर है। जाठराग्निका प्रबलहोना व्यायाम आदि पर निर्भर है। इसी लिये श्लो० १७ में युक्ताहार विहारके अभ्यासका उपदेश दियागया है।

सारांश यह कि मनुष्य व्यायाम आदिका अभ्यास करके अपनी जाठराग्नि और बल, वीर्यको बढाएं जिससे वह दुष्ट प्राणियोंको दंडदेने में समर्थ होसकें और भली प्रकार देश सेवा तथा जाति सेवा करसकें।

जो दुष्ट प्राणी दूसरोंको दुःखदेने वाले होते हैं वह आततायी कहलाते हैं और आततायियों का वध करना शास्त्रों में पुण्यकार्य मानागया है। मनुष्य सदा सात्विक भोजन करता रहे आंतरिक और बाह्य शुद्धि में तत्पर रहे इससे बुद्धि और स्वभाव निर्मल रहेंगे और वह पाप कर्मों में न फँसने पावेगा।

शरीर और वस्त्रों को स्वच्छ रखना बाह्य शौच है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मान, मोहादिसे मनको शुद्ध रखना आंतरिक शौच कहलाता है।

जब मनुष्य जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी और व्यायामशील होकर अपने शारिरिक बलको बढायेगा तो दुष्ट जीवोंसे सताए जाने वाले दीन प्राणियोंकी रक्षा करसकेगा, जिससे दुष्ट और पामरों को दण्ड मिलकर संसारमें पाप नहीं फैलेगा।

अतःकल्याण चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि न्यायप्रिय और परोपकार प्रिय बनें। प्राणीमात्र के साथ प्रेम रक्खे अर्थात् किसी भी उत्तम प्राणीका मन वाणी और शरीर से हिंसा न करें

मनुष्य सदा निर्मान, निर्मोह, निर्लोभ, सरलस्वभाव, सत्यवादी होकर परस्त्री और परधन की इच्छा न रखते हुए यश और प्रशंसा की इच्छा छोडकर परोपकार देश सेवा और जाति सेवामें तत्पर रहें। उपरोक्त गुणों वाले मनुष्य सदा कल्याणभागी रहते है यही श्रीकृष्ण महाराज का आशय इस अध्यायमें है।

जो लोग यह कहते हैं कि प्रत्येक कामके लिये ठीक २ समय देनेकी शिक्षा हमको यूरोपियन लोगोंसे सीखनी चाहिये, उनकी यह भूल है। यदि वह गीताको पढें तो देखेंगे कि गीता अध्याय ६ के श्लोक १७ में कई सहस्र वर्ष पूर्व ही हमको श्रीकृष्ण महाराज यह शिक्षा दे चुके हैं। कि ठीकसमय पर जागनेवाला, ठीक समय पर प्रत्येक कामको करनेवाला मनुष्य नीरोग, वलिष्ठ और प्रसन्न चित्त रहता हुवा पूर्ण सौ वर्ष की आयु पासक्ता है और उसके सब काम भी ठीक होतेहैं। यदि हममेंसे प्रत्येक मनुष्य अपना निम्नलिखित स्वभाव डाले कि नित्य प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय से अढाई तीन घडी पूर्व उठकर शौचादि से निवृत्त हो, प्रातःकाल की संध्योपासन करके एक घंटा बाहर की शुद्ध वायुका सेवन करे। पुनः घरपर आ थोडा बहुत पठन पाठन कर। दश बजे ठीक समय पर भोजन करके, ग्यारह बजे या बारह बजे, अपने व्यापारादि कामों में लगजाए और ठीक चार या पांच बजे इस कार्यसे निवृत्त होकर, शुद्ध वायु को सेवन करने का नगरसे दूर चला जावे। यदि होसके तो अपनी एक मंडली बनाकर वहीं पर खेलकूद में प्रवृत्त होकर व्यायाम भी कर लिया करे। सात बजे तक पुनः घर पर लौट आए और सन्ध्योपासन करके पुनः आठ बजे, सायंकालके भोजन से निवृत्त होकर आधीघंटा या एक घंटा सुखपूर्वक

बैठा या लेटा हुवा अपने इष्ट मित्रों से वार्तालाप करता रहे। पुनः नौ बजे से दस बजे तक कुछ लिखना पढना या अन्य काम करके ठीक दश बजे रात्रिको शयन करे।

गीताके उपरोक्त श्लोकानुसार यदि आयुका भाग व्यतीत किया जाए, तो सब मनुष्य सुखी रह सके हैं और सब काम भी ठीक हो सके हैं। विपरीत इसके जिनका न खानेका समय नियत है न पीनेका, रात दिन बीस इक्कीस घंटे चलने वाली मशीन बने हुए काम में लगे रहते हैं तो परिणाम यह होता है कि मंदाग्नि, क्षय, धातुक्षीण, प्रमेह आदि रोग होकर तीस चालीस वर्षकी अवस्थामें ही उनको वृद्धावस्था या मौत आघेरती है और वह सब काम यहीं पडे रहते है अतः हमको चाहिये कि उपरोक्त गीता के श्लोकानुसार युक्ताहार विहार करते हुए बल, बुद्धि और धन की वृद्धि करके आनंद का जीवन व्यतीत करें, जिससे भारतवर्ष भी उन्नत देशोंकी गणना में आये.

[पृष्ठ १२८ से आगे]

[१२] देश के लोगों को चाहिये कि, राजाओं से प्रार्थना करें कि, अपने२ राज्योंमें शिक्षा को अनिवार्य और बिना शुल्क [फीस] की करें, और आज कल के नवीन यंत्रों और कलाओंको सिखाने वाले शिल्पविद्यालय [टेकनीकल इन्स्टीटयूट्स] और आवश्यकीय वस्तु बनानेके कारखाने (शिल्पकार्यालय) खोलें, जैसा कि, बडौदा और मैसूर महाराज ने खोले हैं। राजाओं को चाहिये कि, प्रजा से लिया हुआ द्रव्य प्रजा के हितकारी कामों में लगाएं. न कि अपने भोग विलासके कामों में, कि प्राचीन नीति, और धर्मशास्त्र के ग्रंथोंमें लिखा है. यथा रघुवंश काव्ये प्रथम

" प्रजानामेव भूत्यर्थं ताभ्यो बलिमग्रहीत् ":—

अर्थात्—प्रजाओं के हितके निमित्त उन प्रजाओं से कर लिया जाता था.

[१३] प्रत्येक विद्यास्नातक को अर्थात् उस पुरुषको जो विद्या पढचुके यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि न्यूनसे न्यून मैं दशमनुष्यों को अपने जैसे विद्वान् बनाऊंगा। और वे दश भी यही प्रतिज्ञा करते जायँ,तो देखेंगे कि शीघ्रही भारतवर्ष में विद्यादेवी अपना राज्य करने लगेगी। प्राचीन कालमें विद्या इसी प्रकार फैलती थी और तभी विद्याका आदर भी होता था; साथही प्राचीन काल में यहभी बातथी, कि विद्या और गुण छिपाकर नहीं रखते थे, जो सीखनेकी इच्छा करता था उसीको प्रेमपूर्वक विद्या सिखा देते थे। भारतवर्ष में एक सहस्त्रवर्षसे ऐसा अंधकार-मय समय आगया कि लोगोंने विद्याओंको छिपाना प्रारंभ कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि भारतवर्षसे धनुर्वेदविद्या, वैद्यकशास्त्र और रसायनशास्त्र लुप्तप्राय होगये और योगविद्याका तो अभाव सा ही होगया, इस लिये अब चाहिये कि विद्याका प्रचार अच्छी भांति करें और विद्याको छिपाकर रखनेकी प्रथाका सर्वथा नाश ही करदें।

[१४] ग्राम२में दैनिक समाचारपत्रों का प्रचार होना चाहिये और देशी राज्योंमें राज्य के व्ययसे प्राथमिक शिक्षा की पाठशालाएं खुलनी चाहियें, जैसा कि, बडोदा, मैसूर राज्य में खोली जारही हैं।

[१५] हमलोगोंमें विज्ञान, कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि विषयोंके ग्रंथ बहुत न्यून हैं अथवा नहींही हैं. आजकल यूरोप, अमेरिकाके लोगोंने इन विद्याओंमें बहुत निपुणता प्राप्त की है और अपनी भाषाके साहित्यको इन विषयोंके ग्रंथोंसे बहुत बढालिया है; इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि, अपने किसी एक प्रधान नगरमें "हिन्दी (देवनागरी) साहित्य वर्द्धक समिति" खोलें जिसमें एकलाख या इससे अधिक मूलधन हो और जिसके द्वारा विद्वानोंसे विज्ञानादि विषयोंपर ग्रंथ लिखवायें या दूसरी भाषाओंसे हमारी हिन्दी (देवनागरी) भाषामें अनुवाद करवायें, क्योंकि इन ग्रंथोंकी बड़ी आवश्यकता है. इस समय उपन्यासोंद्वारा साहित्यको बढानेका समय नहीं रहा।

[१६] उत्तम हिन्दी साहित्यकी सस्ती पुस्तकोंका प्रचार किया जाय गीतादि धर्मपुस्तकें तो लागतसे न्यून मूल्यपर ही सर्व साधारण लोगोंको दीजाय और निर्धन मनुष्योंमें बिना मूल्य ही बटवाई जायँ।

धर्मशास्त्रों में विद्यादान, पुस्तकदान सबसे श्रेष्ठदान माना है। हमारे धर्म ग्रंथोंसे जब हिन्दू [आर्य] जातिके सब स्त्री पुरुष पूरे जानकार होजायँगे तो वह विधर्मी लोगों तथा पाखण्डियोंके फंदे में नहीं आसकेंगे।

[१७] आजकल बहुत प्रांतोंमें यह देखनेमें आरहा है, कि लोग अपनी मातृभाषासे प्रेम न रखकर विदेशी भाषा अंग्रेजी आदिमें ही बातचीत तथा पत्रव्यवहार करना और अपनी देशी मिती तथा संवत्को न लिख कर विदेशी मिती तथा

संवत्को लिखनाही अपना मुख्यकर्तव्य समझते हैं, और ऐसा करनेमेंही अपनेको विद्वान समझते है. इससे बडी हानि यह होतीहै कि, हम अपने देशी साहित्यको, न बढाकर विदेशी साहित्य की उन्नतिमें ही सहायक होते हैं. शनैः२ इसका फल यह होगा कि हम विदेशी वस्तुप्रचार और विदेशी चालढालको धारण करके अपने देशप्रेमको भी खो बैठेंगे। हमारा इस लेखसे यह प्रयोजन नहीं है, कि हम विदेशी भाषाका लिखना बोलनाही न सीखें; परन्तु प्रयोजन यह है, कि विदेशीभाषा विदेशियोंसे बातचीत या पत्रव्यवहार करनेको, तथा उस भाषामें इंजिनीयरी, साइंस (विज्ञान)आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, व्यापार, भूगोल, खेती, खनिजविज्ञान आदि विद्याओंपर जो उत्तम २ ग्रंथ बने हुये हैं, उनसे स्वयं लाभ उठाने और उनके अनुवादद्वारा हमारे हिंदी(आर्य)भाषा के साहित्यको उन्नतकरनेके लिये सीखें और उन बातोंको व्याख्यानद्वारा हमारी जन समुदायमें फैलावें। केवल भाषाका ज्ञान करलेनेसे ही अपनेको कृतकृत्य नहीं मान लेना चाहिये।

[१८]हम सब हिन्दुओं[आर्यों]को चाहियेकि अपनी शुद्ध और पवित्र भाषा संस्कृत का अपने में पुनःप्रचार करके इसकी रक्षा करें।यूरोप के विद्वानों ने भी इस भाषा को संसारकी सबभाषाओंमें सबसे प्राचीन और सबभाषाओंकी 'जननी'मान लियाहै।इसके वर्णमालाकी उत्तमता सबको स्वीकृतहै, किसी भाषा में कोई वर्ण नहीं और किसीमें कोई। इस में सम्पूर्ण वर्णहैं, यथा—अंग्रेजी भाषा में—आ, ऐ, औ,अं,अः, ख,घ,च,छ; झ, त, थ,ध, ठ, ढ,भ,श, ष, नहीं हैं।इसी प्रकार अरबी भाषामें ख,घ,छ, झ,थ, ध,भ आदि अक्षर नहीं हैं।ऐसी ही दशा फारसी आदि अन्य भाषाओंकी समझो।कोई२वर्ण उन भाषाओंमें व्यर्थ और अधिक भी हैं,यथा अंग्रेजीमें सी,क्यू आदि। और सब से बडा दूषण उन भाषाओंमे यह है, कि उनमें लिखा तो जाय कुछ और बोला जाय कुछ, परन्तु संस्कृत में जैसा लिखा जाता है वैसा ही बोला भी जाता है।

उदाहरणार्थ देखिये, अंग्रेजीमें लिखा तो जाताहै'कनाइफ'और बोला जाताहै'नाइफ' [चाकू];लिखातो जाताहै'लिएउटेनैंट'और बोला जाताहै'लेफटेनैंट'[किसीबडे अफसर के नीचे काम करने वाला अफसर];ऐसेही अनेक उदाहरण देसक्तेहैं जिनमें लिखातो जाय कुछ और बोलाजाय कुछ।इससे यह सिद्धहुआकि हमारे पूर्वज ऋषियोंने अपनी भाषामें वह योग्यता प्राप्तकरलीथी जिसको यूरोप,अमेरिकाके विद्वानवेत्ताओंनेभी अब तक प्राप्त नहीं की हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम लोग संस्कृत भाषा के प्रेमी होकर इसको सीखें। प्राचीन कालमें भारतवर्षके लोगोंकी एकही भाषा थी अब भी जब तक हम लोगों की एक भाषा न होगी तबतक हमारी उन्नति होना कठिन है। अधिक शोक इस बात का है कि यूरोप अमेरिका के लोगतो हमारी संस्कृत भाषा को प्रेम से पढते हैं और हम इस से दूर भागते हैं। ऐसा होना हमारे लिये लज्जाकी बात है।

(अपूर्ण)

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु

दोहा–मेरोईकरिआसरो, मोहीमेंचितराखि ॥
मोकोजानैसत्यवह, योसमझाऊंभाखि ॥ १ ॥

हे पृथानन्दन ! अपना चित्त मुझमें लगाकर और मेरा ही आश्रय लेकर जिस प्रकारसे संशय रहित हो मुझको पूर्ण रीतिसे जानोंगे सो मैं कहताहूं ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

दोहा–ज्ञान रूप विज्ञानहूं, तोसों कहौंबखानि ॥
जाकेजानेजानिबौ, कछुनरहतहैजानि ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! मैं अब तुमको संपूर्ण ज्ञान विज्ञान सुनाता हूं इसे जानकर फिर कुछ जानने योग्य बात न रहैगी ॥२ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३

दोहा–जतनकरतहै सिद्धिको, एकहजारनमाहिं ॥
तिनहूंमेंकोउलहै, बहुतलखतहैंनाहिं ॥ ३ ॥

सहस्रों मनुष्योंमें कोई ही ऐसा होता है जो आत्मज्ञान जाननेके लिये यत्न करता है और इन यत्न करनेवालोंमेंभी कोईही मुझको ठीक रीतिसे जानता है ॥ ३ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४

दोहा–भूमिनीरपावकपवन, अंबरमनबुधिमान॥
अहंकारहैआठवां, मायाभेदनिदान ॥ ४ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकार की मेरी जुदी जुदी प्रकृति है ॥ ४ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

दोहा–मायामेरीएकयह, जिनजीत्योसंसार ॥
सांचीमनमेंजानिले, जीवहुतैनिरधार ॥ ५ ॥

यह जो ऊपर आठ प्रकारकी प्रकृति कही गई है यह अपरा प्रकृति है और इससे अन्य जो जीवभूत प्रकृति है, वह परा प्रकृति है, इस बातको अच्छी रीतिसे ध्यानमें रख और हे महाबाहो ! इसी परा प्रकृतिसे यह जगत् धारण किया गया है ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

दोहा–मायातेउतपन्नहै, सर्वजीवइहिदाय ॥
हौंउपजाऊंजगतसब, नाशकरौंचितचाय ॥६॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण प्राणिमात्र मेरी इन दोनों प्रकृतियोंसे उत्पन्न होते हैं इस वातको अच्छे प्रकारसे जानलो और मैंही इस संपूर्ण जगत्का उत्पन्न कर्त्ता और नाश कर्त्ता हूं ॥ ६ ॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

दोहा–अर्जुनमोतेजोपरे, और बातजनिजानि ॥
पोयेमनिया सूतमें, त्योंमोमेंजगमानि ॥ ७ ॥

हे धनंजय ! जैसे सूतमें मणि पोई जाती है इस तरह यह संसार मुझमें पोयाहुवा है इसी लिये मुझसे परे कुछभी नहीं है ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८

दोहा–चंद्रसुरजकीजोतिहूं, जलरसप्रणवहुवेद ॥
गगनशब्दबलनरनको, सबहीमेरोभेद ॥ ८ ॥

हे कौन्तेय ! जलोंमें मैं रस हूं सूर्य और चन्द्रमामें प्रभा हूं सव वेदोंमें प्रणव हूं आकाशमें शब्द हूं और मनुष्योंमे पुरुषार्थ हूं ॥ ८ ॥

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९

दोहा–गंधजुहौंहौंभूमिमें, हौंपावकमेंतेजु॥
जीवनहूँकोजीवहौं, तपन नितप लखिलेजु॥९

हे अर्जुन ! पृथ्वीमें जो पवित्र गंध है, वह मैंही हूं अग्निमें मै तेजरूप हूं; सम्पूर्ण प्राणियोंमें जीवनरूप मैं हूं, और तपस्वियोंमें तप मेराही रूप है ॥ ९ ॥

बीजं मांसर्वभूतानां विद्धिपार्थ सनातनम्
बुद्धिबुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजास्विनामहम॥

दोहा–सवजीवनकोबीजहौं, मोकौंजानिजुलेहु ॥
बुद्धिवंतमेंबुद्धिहौं, सबतेजनिकोगेहु ॥ १० ॥

हे पार्थ ! मैं संपूर्ण प्राणियोंका सनातन बीज हूं अर्थात् मुझीको सबका उत्पत्तिकारण समझ मैं बुद्धिवानोंमें बुद्धिरूप और तेजस्वियोंमें तेज हूं ॥ १० ॥

बलंबलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

दोहा–बलबलवंतनकोजुहू, कामरागजितनाहिं॥
कामरूपहीहौंजुहूं, धर्मसबैमोहिंमाहिं ॥११ ॥

हे भरतर्षभ ! बलवान पुरुषोंमें जो काम और रागरहित बलहै सो मैं ही हूं और धर्म अविरुद्ध जो काम है सो भी पुरुषोंमे मैंही हूं अर्थात् अपनी स्त्रीमे पुत्र उत्पन्न करनेमात्र जो भोग किया जाता है वह मैंही ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि

दोहा–राजसतामससत्वके, जेहैंसिगरेभाय ॥
एसबमोंमेंबसतहैं, मोहिंनैनसौंचाय ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! जो शमदमादि सात्त्विक भाव हैं, हर्ष गर्वादि राजस भाव हैं और शोकमोहादि तामस भाव हैं. वे सब मुझहीसे उत्पन्नहुए जान, तथापि मैं उनके वशीभूत नहीं हूं वेही मेरे वशीभूत हैं ॥१२

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

दोहा–तीन्योगुनकेभावजे, तिनमोह्योसंसार ॥
मोकोंको ऊनहिंलखै, इनतेंपैलीपार ॥ १३ ॥

इन ऊपर कहेहुए त्रिगुणमय भावोंही ने इस संपूर्ण संसारको मोहितकर रक्खा है इससे मुझे कोई नहीं जानता है, मैं इन भावोंसे परे हूं और इनका नियन्ता हूं और अव्यय आर्थात् निर्विकार हूं. इससे मुझे कोई नहीं जानता है ॥ १३ ॥

[illegible] ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
[illegible] मायामेतां तरंति ते॥१४

दोहा–मेरीमायागुनमयी, दुस्तरतरीनजाय ॥
जोकोउआवैमोसरनि, सोजुतरैसंसार ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! यह मेरी माया त्रिगुणयुक्त होनेके कारण दैवी अर्थात् मानवीय पुरुषार्थसे परे है और बडी दुस्तर है इससे जो, कोई केवल मेरीही शरण आते है वे इस मायासे पार लगते हैं ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः ॥
माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः

दोहा–पापीमूरखजेजगत, तेनहिंपावतमोहिं ॥
ज्ञानजुमायाकरिहरयो, असुरगर्वमेंपोहि १५॥

हे अर्जुन ! मेरी मायाने जिनका ज्ञान हरलिया है और उस ज्ञानके दूर हो जानेसे असुरतुल्य बन गये हैं ऐसे पापी, मूढ, नराधम मुझे नहीं भजते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

दोहा–पुन्यवंतजेचारविधि, मोहिभजतचितऐन॥
ज्ञानीयोगीकामयुत, विज्ञानीसुनिबैन ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! हे भरतर्षभ ! आतुर (रोग पीडित) जिज्ञासु (आत्मज्ञानके जाननेकी इच्छा करनेवाला) अर्थार्थी (ऐहिक वा पारलौकिक भोग भोगनेवाला) और ज्ञानी ये चार प्रकारके मनुष्य मुझे भजते हैं. जब इनके पूर्वजन्मके पुण्यका उदय होता है ॥१६

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः

दोहा–ज्ञानीजोभक्तिहिकरै, सोसबतेअधिकाय ॥
ज्ञानीकौंपलछिनभजुहौ, ज्ञानीमोहसुहाय ॥ १७ ॥
इन चार प्रकारके पुरुषोंमें ज्ञानी विशेष है. क्योंकि वह सदा मुझमें युक्त रहता है और केवल मुझमेंही भक्ति रखता है. इससे ज्ञानीको मै बहुत प्रिय हूं और ज्ञानी मुझको प्यारा है ॥ १७ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥
आस्थितःस हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमांगतिम् ॥

दोहा–मेरेमतएसबबडे, ज्ञानीमोकोजानि ॥
उत्तमगतिपाइजुतिन, प्रलयलेतुनहिंमानि १८
ये चारों प्रकारके प्राणीही उत्तम हैं, परन्तु ज्ञानी मेरेही समान है यह मेरा मत है. क्योंकि वह सदैव अपना चित्त मुझहीमें लगाये रहता है और सर्वोत्तम गतिरूप मेरेही आश्रित रहता है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

दोहा–बहुजन्मनिमोकोलही, ज्ञानवंतरेमित्त ॥
वासुदेवसबमेंलखे. सोदुर्लभहैनित्त ॥ १९ ॥
हे अर्जुन ! बहुत जन्मतक ज्ञानको संचित करता हुआ जो इस संपूर्ण जगत्को वासुदेवमय जानकर मेरा स्मरण करता रहता है वह महात्मा बहुत दुर्लभ है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यंतेऽन्यदेवताः ॥
तंतं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताःस्वया

दोहा--नष्टज्ञानबहुकामना, यजैअन्यदेवान ॥
तिहितिहिनियमरुवासना,स्वस्वप्रकृतिउन्मान

हे अर्जुन ! अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार मनुष्य धन जन स्त्रीपुत्रादिके लोभके वशीभूत होकर उन उन वासनाओंसे अज्ञानमें डूब उन फलोंकी चाहनासे अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं २०

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्

दोहा--श्रद्धायुतजेपूजहीं, जोदेवनिचितलाय ॥
ताकोंतेहीमांझहीं, श्रद्धादेउंबढाय ॥ २१ ॥

हे अर्जुन! जो जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जिस जिस देवताके अर्चन पूजनकी इच्छा करता है. उन पुरुषोंकी उस श्रद्धाको मैं उनमें दृढ-कर देता हूं. अर्थात् उनका मन अपनी ओरसे हटाकर उन देवता-ओंमें मैं लगा देता हूँ. जिससे वे मुझे भूल जाते हैं ॥ २१ ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हितान्

दोहा--सोवाहीश्रद्धाहितें, पूजतवाहीदेव ॥
देवजुहौंहीकामना, वहजानतनहिभेव ॥ २२ ॥

तब वह मनुष्य उनही देवताओंमें श्रद्धा करके उनका आराधन करता है और उनहीं देवताओंसे अपने अपने मनवांछित फलोंको पा लेता है. (जब मैं मनुष्यको मुझसे विमुख और अन्य देवतोंमें आसक्त देखता हूं तब) मैं भी उनको वैसीही प्रेरणा करता हूं॥२२॥

अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि

दोहा–फलथोरोपावतुजुवै, विनाज्ञानकेमूढ ॥
देवभक्तदेवनमिलै, मेरोमोकोगूढ ॥ २३ ॥

परन्तु उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् होता है अर्थात् जो मुझे छोडकर अन्य देवोंकी उपासना करते हैं उनको फल मिलता है परन्तु वे फल शीघ्रही नष्ट होजाते हैं, जो और देवताओंका पूजन करते हैं वे और देवताओंको प्राप्त होते है और जो मेरा यजन करते हैं वे मुझसे मिलते हैं ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यंते मामबुद्धयः
परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

दोहा--जाकेथोरीबुद्धिहै, जानतप्रगटनमोहि ॥
अविनाशीउत्तमजुहौं, सबतेन्यारोजोहि २४

हे अर्जुन ! मैं विनाशरहित, सर्वोत्तम और परस्वरूपहूँ, जो बुद्धिहीन मुझको ऐसा नहीं जानते हैं और मुझे मत्स्यकूर्मादिरूप मानकर मेरे स्वरूपको नहीं जानते हैं और अन्य देवताओंकी उपासनामें लगजाते हैं, इसीसे उनको नाशवान् फल मिलता है ॥२४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः
मूढोऽयंनाभिजानातिलोको मामजमव्ययम्

दोहा—ढप्योजुमायायोगहौं, काहूकोनप्रकास ॥
मूरखमोंहिंनजानहीं, अजरअमरसुखवास२५

मै योगमायासे आवृत हूं, इसलिये मैं सबके सन्मुख प्रकाशित नहीं होता हूं, केवल अपने भक्तोंहीके सन्मुख प्रत्यक्ष होता हूं और मेरी योगमायासे आवृतहुए मूढ लोग मुझको अजन्मा और अविनाशी नहीं जानते हैं ॥ २६ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन

दोहा—जे बीते जानततिन्हैं, वर्तमानत्योंजोय ॥
होनहारसबकोलखौं, मोहिलखैनहिंकोय ॥२६

हे अर्जुन ! मैं भूत, वर्तमान और भविष्यत तीनों कालमें हुए चराचर प्राणियोंको जानता हूं और मुझको कोई नहीं जानता है क्योंकि वे मेरी मायासे आवृत हैं ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परन्तप ॥

दोहा—संगद्वेषअज्ञानते, सबैजुमोहितहोत ॥
मानिलेतहैआपको, हमसुखदुखनिउदोत ॥

हे अर्जुन ! हे परंतप ! इस संसारमें आकर संपूर्ण प्राणी मुग्ध होजाते है, क्योंकि इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न जो सुख दुख है, उनमें फँस जाते हैं और इसीसे मुझे भूल जाते हैं ॥ २७ ॥

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढव्रताः ॥

दोहा-पुण्यकियेजिनजगतमें, दूरिकियेजिनपाप
तेईछूटतमोहसों, मोकोपावतआप ॥ २८ ॥

जिन पुण्यात्माओंके पाप दूर होगये हैं, वे इच्छा द्वेषसे उत्पन्न सुख दुःखादिसे छूट अपने चित्तको दृढकर मेरा भजन करते हैं २८

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंति ये॥
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्

दोहा-जरामरणकीहानिको, जेकोउकरतउपाय॥
जानततेअध्यातमहिं, ब्रह्मकर्मकेमाय ॥२९॥

हे अर्जुन ! जो मेरा आश्रय लेकर जरामरणसे छूटनेका उपाय करते हैं वे उस ब्रह्म, संपूर्ण अध्यातम और संपूर्ण कर्मोंको जानते हैं॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥

दोहा-अधिदैविकअधिभूतसों, अधियज्ञौमुहिमित्त॥
मरनसमैभूलतनहीं, योगीमोकोहित्त ॥ ३० ॥
भजिवेलायकरूपनिज, कह्यो सातवेंऽध्याय ॥
विनायतनज्ञानहिलहै, कृष्णभक्तिअधिकाय ॥१॥
शरनैंआनंदरामहै, यज्ञैयोगविज्ञान ॥
प्रभुमेरीविनतीयहै, भक्तिदेहुभगवान ॥ २ ॥

जो मुझे अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञसहित जानते हैं, वे युक्तचित्तवाले मरनेके समयभी मुझको ऐसाही जानते हैं अर्थात् मरणकालकी घबडाहटमेंभी मुझे नहीं भूलते हैं ॥ ३० ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां ज्ञानविज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

समीक्षा–प्रथमके ६ अध्यायोंमें कर्मकांड का वर्णन हुआ है. अब सातवें आध्यायसे बारहवें अध्याय पर्यंत भक्तिकांड का वर्णन किया जायगा. .जब मनुष्य यह बिचारता है कि, परमात्माने इस पृथ्वी जैसे कितनेही अनंत लोक अपनी सामर्थ्यसे रच रक्खे हैं, तो उसको परमात्माकी अद्भुत सर्वशक्तिमत्ता पर बडाही आश्चर्य होता है। जो हमारे शास्त्रोंमें प्रायः चौदह भुवनोंकाही वर्णन आता है, उसका कारण यह है कि, पूर्वकालमें महारे ऋषिमुनियोंका सम्बन्ध इन्हीं लोकों से अधिक था। जब इस प्रकार मनुष्य ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता को देखता है, तो उसके मनमें ईश्वर की भक्ति उत्पन्न होती है, संसारमें यह नियम है कि, किसीमें जो प्रेम या भक्ति उत्पन्न होती है, वह उसके गुणों परही ध्यान देनेका फल है। जिनमें हम कोई गुण नहीं देखते हैं, उनमें हमारा प्रेम या भक्ति नहीं होती है, एक प्रकारकी उदासीनता सी रहती है।

इस प्रकार लोक लोकांतरों पर ध्यान देते हुए मनुष्य के हृदयमें यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि, परमात्मा ने किस प्रकार इस सृष्टिको रचा है। सृष्टिकी रचना में विज्ञानके नियमों का पालन किया गया है या नहीं इसी प्रश्नका उत्तर देनेको इस सातवें अ-

ध्यायका आरम्भ कियागया है और इसमें यह दिखाया गया है कि, इस सृष्टिकी रचनामें परमात्माने विज्ञान के नियमोंको स्थिर रक्खा है। अर्थात् प्रकृति के सत्, रज, तम रूप, तीन गुण वाले परमाणुओंसे इस सृष्टिको रचा है। ज्यों २ मनुष्य अधिक खोज करेगा त्यों २ उसको पता लगता जायगा कि, सृष्टिकी कोई भी रचना बिना नियम के नहीं हुई है। जितना २ अधिक ज्ञान मनुष्यका बढता जायगा. उतना २ ही अधिक वह परमात्माका भक्त होता जायगा. साथ ही इस अध्यायमें यह भी दिखाया गया है कि, जो मनुष्य केवल प्रकृतिके विचित्र पदार्थों में मोहित हो उन्हींके भोग विलासमें फँसकर देशसेवा और जातिसेवा के कामों से दूर भागते हैं; वह परमात्माकी भक्ति से बंचित रहकर सदाके स्थायी आनन्द अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होसक्ते हैं। (देखो अ० ७ श्लो० १५)

[पृष्ठ १५१ से आगे]

[१९] केवल भारतवर्ष सम्बन्धी समाचारों पर इतने ग्रंथ संस्कृत और अंग्रेजीमें लिखे हुए हैं कि यदि लगातार कई वर्ष पर्यन्त चार पांच विद्वान हिन्दी (आर्य) भाषामें इनका अनुवाद करें तब पूरा२अनुवाद होसका है। इस लिये सब ग्रंथोंके एकवार अनुवादित होजाने से पूर्व, एक मासिकपत्र "भारतवर्षीय समाचारसंग्रह" नामसे निकाला जाय जिसमें उन ग्रन्थोंके अनुवाद पुस्तकाकार में प्रकाशित होते रहें और लोगोंको एकबार मोल लेनेका बोझ प्रतीत न हो।

इस समाचारपत्र में निम्नलिखित विषयविभाग हों,

भारतवर्षीय इतिहासमाला और भूगोलमाला, उत्तम २ आर्य स्त्रीपुरुषोंके जीवनचरित्र, भारतवर्षीय प्राचीन विद्यायें यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र आदि, भारतवर्षीय शिल्प, भारतवर्षीय राज्यप्रणाली अर्थात् आर्य प्राचीन राज्य-पद्धति, यावनी अर्थात् मुसल्मानोंके समय की राज्यप्रणाली, अंग्रेजी राज्य प्रणाली जो मुसल्मानोंके पीछेसे लेकर इससमय तककी हो.

नूतन समाचारसंग्रह जो शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, व्यापारिक और राज्यकीय विषयोंका हो.

इस प्रकार "भारतवर्षीय समाचार संग्रह" नामका मासिक या साप्ताहिक पत्र निकलनेसे लोगोंको प्राचीन और आधुनिक समयके भारतवर्षीय समाचार मिलते रहेंगे; और प्रत्येक विभागके यह समाचार पुस्तकाकार रूपमें निकलें, जिससे कि एक २ पुस्तक बनती जावे. पुस्तकका आकार और पृष्ठसंख्या पाठकों या संचालकोंकी रुचि पर निर्भर रहे.

[२०] हमारी ज्योतिषविद्याका पुनरुद्धार होना चाहिये । भास्कराचार्यके पश्चात् हमारे प्रधान २ स्थानोंके ध्रुवोंका अभीतक संशोधन नहीं हुआ है । वायुशास्त्र और जहाजों के चलाने की विद्यामें ज्योतिषशास्त्रही परम सहायक हो सक्ता है, अतः इस ओर हम को पूरा २ ध्यान देना चाहिये ।

[२१] आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये स्थान २ पर आयुर्वेदिक पाठशालायें खोली जायँ । सुश्रुतादि सिद्धांतग्रंथों को पढाकर पारद, हरताल, तांबेश्वर आदि धातुओंकी भस्म करनेकी विधि बताई जाय।आयुर्वेदकी रीतिसे मारीहुई धातुओंकी भस्म द्वारा असाध्य रोगोंका दूर होना देखनेमें आया है. जिसको देखकर यूरोपियन डाक्टर और यूनानी हकीम [वैद्य] चकित हुए हैं । शोक इस बातका है कि आयुर्वेदीय औषधियोंमें असाधारण गुण होने पर भी आयुर्वेदीय पाठशालाओंके अभावसे यह हमारी विद्या नष्टप्रायः हो रही है, उत्तम२ विद्वान वैद्योंका मिलना कठिन होता जाता है। "आयुर्वेदीय सम्मेलन" सभाओंका खोलना और उनको सहायता देकर स्थान२पर आयुर्वेदीय पाठशालाओं और औषधालयोंका खुलवाना हमारा परमकर्तव्य होना चाहिये, जिससे कि उत्तम और निपुण वैद्य उत्पन्न होते रहें ।

[२२] हमारे पूजनीय ब्राह्मणों और संन्यासी महात्माओंका यह मुख्य कर्तव्य होना चाहिये,कि भारत वर्षका मुख उज्वल करनेवाली योगविद्याको पुनर्जीवित करें. यही विद्या है जिसके कारण हमारा अध्यात्मशास्त्र इतनी उच्च कोटिको पहुंच गया था । अब हमको भय है कि कहीं अमेरिका, जर्मनी आदि देशोंके रहने वाले हमारेही ग्रंथोंको जानकर इस विद्यामें हमको शिक्षा देकर हमारे गुरू न कहलाने लगें ।

[२३] भिन्न२ एकांत स्थानोंमें साधु पाठशालाएं खोली जानी चाहियें, जिनमें साधुओं को परमेश्वरभक्ति, देशभक्ति, जातिभक्ति और परोपकार की शिक्षा दीजाय । इस समय भारतवर्षमें बावनलाख हिन्दू [आर्य] साधु हैं । उनमें अधिकांश मूर्ख, भंगेडी गंजेडी हैं, जो देश को भाररूप होरहे हैं (अपूर्ण)

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥ ८

॥ अर्जुन उवाच ॥

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥

दोहा–अध्यातमकोब्रह्मको, कर्मकहाजगदीस ॥
अधिदैवतअधिभूततुम, जानतबिश्वाबीस॥१॥

अब अर्जुनने पूछा कि–हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है ? अधिभूत क्या है ? और अधिदैव क्या है ?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः

दोहा–अधियज्ञहिकासोंकहत, यादेहीमेंकौन ॥
कैसेतुमकोजानिये, प्रानकरैजबगौन ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! यहां इस देहमें अधियज्ञ कैसे हुआ और इस देही में कौन है ? और इस लोकमें मरनेके समय संयतात्मा मनुष्य आपको कैसे जान सकते हैं ? ॥ २ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३

दोहा–अक्षरसोंब्रह्महिकहत, अध्यातमजुसमाय॥
जोउपजावतजगतको, सोईकर्मस्वभाय ॥३॥

यह सुन श्रीकृष्ण बोले कि-हे अर्जुन। जो परम अक्षर अर्थात् जगतका मूलकारण है वही ब्रह्म है, और स्वभाव जो जीव सो अध्यात्म है तथा संपूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति और वर्षा आदिका करने वाला जो द्रव्यत्यागरूप यज्ञ सो ही कर्म है ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥ ४

दो०देहजु है अधिभूत यह, अधिदैवत है जीव ॥
सब देहिनकीदेहमें, हौंअधियज्ञ सुपीव ॥ ४ ॥

जो क्षर अर्थात् नाशवान है वह अधिभूत है,इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंका अधिपती जो वैराजपुरुष है वह अधिदैवत है और हे नरोत्तम अर्जुन! देहमें अधियज्ञ अर्थात देव पूज्य मैं हूं ॥ ४ ॥

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः

दोहा-अंतसमैंदेहहितजै, मौंसुमिरनजोहोय ॥
सोतवहीमोकोमिलै, तहांनसंशयकोय ॥ ५ ॥

हे अर्जुन! जो अन्तसमयमें मुझको स्मरण करता हुआ देहको त्यागता है वह मेरे स्वरूपको पाता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ५ ॥

यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम्
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः॥६

दोहा-प्रानीजबदेहहितजै, सुमिरैकोईकाज ॥,
यामें संशय नांहिनै, पावै सोई साज ॥ ६ ॥

हे कौन्तेय ! जिस जिस भावको स्मरण करता हुआ मनुष्य देहको त्यागता है वह मनुष्य उस भावमें भावित होनेके कारण उस उस भावको ही पाता है ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्य संशयः ७

दोहा-मेरोसुमिरन नित्यकरि, युद्धकरोकिनमित्त
अप मोमें बुद्धिमन, तामें आनउ चित्त ॥७॥

इसी हेतुसे तू सब समय मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध कर, इस प्रकारसे मुझमें मन और बुद्धि लगानेसे तू मुझे निश्चय पावैगा॥७॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ८

दोहा-योग और अभ्यासमें, जाकोचितथिरहोय
मोचिताराखैसदा, पुरुषहिंपावैसोय ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! अभ्यासयोगयुक्त होकर जो केवल परम पुरुषमेंही चित्त लगाकर उसीका ध्यान करते हैं वे निश्चय उसेही पाते हैं ॥८॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांस-
मनुस्मरेद्यः ॥ सर्वस्य धातारमचिंत्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥

दोहा--कविपुरानअनुशासिता, धातासुक्षम मानि
रविसमानसवते परे, अतिअचिंत्यभुहिजानि॥

जो सर्वज्ञ सकल विद्याओंके निर्माणकर्त्ता अनादि सिद्ध, सपूर्ण जगतके नियन्ता, सूक्ष्मसेभी अति सूक्ष्म, सबका पोषक, अचिन्त्य रूप, सूर्यके समान कान्तिमान् और प्रकृतिसे परे जो पुरुष उसका स्मरण करते हैं ॥ ९ ॥

प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् १०

दोहा–मरणसमैंमनुथिरकरै, भक्तियोगबलपाय ॥
भृकुटिमध्यप्रानहिधरै, परमपुरुषमेंजाय ॥१०

हे अर्जुन ! ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे युक्त जो उस दिव्यरूप परम पुरुषका भक्तिपूर्वक और योगबलद्वारा मरणसमयमें प्राणोंको भृकुटियोंके बीचमे अच्छी तरहसे सन्निविष्ट कर ध्यान करता है वह उससे मिलजाता है ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदंति विशंति यद्यतयो वीतरागाः ॥ यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

दोहा–अक्षरजासों कहत है. वीतरागजहँजात ॥
ब्रह्मचर्यजोचाहते, ता पदकी कहुबात ॥ ११ ॥

हे अर्जुन! जिसे वेदवेत्ता अक्षर अर्थात् नाशरहित कहते हैं, जिनके रागद्वेषादि जाते रहे हैं वे यत्न करकरके ईश्वरको प्राप्त होते हैं जिसके जाननेकी इच्छासे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हैं उस पदका संक्षिप्त वर्णन तुमसे कहूंगा ॥ ११ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुद्ध्य च
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्

दोहा–सबद्वारनकोबशकरै, मनरोकैहियमाहिं ॥
प्रानहिरोकैसीसमहिं, रहै धारणा गाहि ॥१२॥

हे अर्जुन! संपूर्ण इन्द्रियोंका निग्रह करके और मनको हृदयमें रख अपने प्राणोंको भृकुटियोंके बीचमें लेजाकर योग धारण करै १२

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्

दोहा–प्रणवाक्षरकोजपकरै, सुमिरै मोकों नित्त ॥
इहिबिधिजोदेहहितजै, लहैपरमगतिमित्त १३

हे अर्जुन! जो मनुष्य देहको त्यागते समय 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्मका ध्यान करते हुये मेरा स्मरण करते हैं वे अवश्यही मोक्षरूप परम पदको पाते हैं ॥ १३ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः

दोहा–अनन्यचितह्वै के करैं, मेरोसुमिरनध्यान॥
ताको मैं नितसुलभहौं, योगयुक्तसोजान॥१४॥

हे पृथानन्दन ! जो मुझहीमें चित्त लगाकर नित्यप्रति निरंतर मेरा स्मरण करते हैं वे एकाग्र चित्तवाले योगीजन मुझे बहुत सुलभ रीतिसे पाते हैं ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः

दोहा–महापुरुषसिद्धिहिलहै, मोमेंहोतजुलीन ॥
दुखकोघरजोजन्महै, तामेंहोतनदीन ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! मुझको मिलनेरूप परम सिद्धिको प्राप्त हुए महात्मा जब मुझको पालेते हैं तब वे फिर अनित्य और दुःखोंके भंडार पुनर्जन्मको नहीं लेते हैं अर्थात् वे जीवन मरणके क्लेशोंसे छूट जाते हैं १५

आब्रह्मभुवनाँल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन॥
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

दोहा–ब्रह्मलोकलौंलोकजे, तिनतैंआवनहोय ॥
अर्जुनमोकोपाइके, जन्मलहतनाहिंकोय ॥१६

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकतक जितने लोक हैं वे सब बार बार जन्म लेते हैं परंतु हे कौंतेय ! मुझसे मिलनेके पीछे पुनर्जन्म नहीं होता है

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः

दोहा–सहसयुगनकेअंतलौं, ब्रह्माकोदिनजानि ॥
रातौतितनीहोतहै, ज्ञानीकहैबखानि ॥ १७ ॥

ब्रह्माका दिन सहस्र चौकडी युगोंका होता है और रात्रिभी इतनी ही बडी होती है. जो इन बातोंको जानते हैं वे सर्व ज्ञाता हैं ॥ १७

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवंत्यहरागमे॥
राञ्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥

दोहा–ब्रह्माकेदिनहोतही, प्रगटतयहसंसार ॥
निशिकेआयेजातुहै, मायामेंताबार ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! कारणरूप जो अव्यक्त ईश्वर है उसीसे चराचर प्राणी ब्रह्माके दिनके आगममें उत्पन्न होते हैं और रात्रिके आगममें उसी ब्रह्ममें लीन हो जाते है ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते
राञ्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥

दोहा–बारबारउपजतसबै, जीवनसुनुरेमित्त ॥
ब्रह्माकेदिनरैनमें, वहेजातहैंनित्त ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! प्राणियोंका यह संपूर्ण समूह दिनमें बार बार उत्पन्न होकर रात्रिके आगममें लीन हो जाता है और दिनके आगममें फिर उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः
यःस सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

दोहा–ब्रह्मजुमायातेपरे, इंद्रीगह्योनजाय ॥
सबजीवनकेनशतही, सो कबहूंननसाय॥२०॥

हे अर्जुन ! चराचर प्राणियोंका कारण स्वरूप जो अव्यक्त है उसकाभी कारण स्वरूप एक और अव्यक्त है अर्थात इन्द्रियोंके विषयसे अगोचर और अनादि है जो संपूर्ण प्राणियोंके नष्ट होनेपरभी नष्ट नहीं होता है ॥२०॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमांगतिम्
यं प्राप्य न निवर्त्तंते तद्धाम परमं मम ॥

दोहा–सोईअक्षरपरमगति, अव्यक्तौपुनिसोय ॥
फिरैनजाकोपाइके, परमधाममम्जोय ॥२१॥

जो अव्यक्त अर्थात अगोचर और अक्षर अर्थात अविनाशी कहा गया है उसीको परमगति कहते हैं–जिसको पाकर फिर संसारमें नहीं आते हैं वही मेरा परम धाम है ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्

दोहा–भक्तिकरैतेपाइये. परमपुरुषसोंजानि ॥
जामेंसिगरेजीवहैं, जगसबरच्योसुआनि २२॥

हे पार्थ ! जिसके भीतर चराचर प्राणी हैं और जिससे यह संपूर्ण संसार व्याप्त है वह परमपुरुष अनन्य भक्तिसे प्राप्त होताहै ॥२२॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैवयोगिनः
प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥

दो०-फिरिआवतजाकालमुनि,नाहिंआवतजाकाल
अर्जुनतोसोंकहतहों. सुनियहसीखबिशाल ॥

हे भरतर्षभ ! जिस कालमें योगीजन देह छोडकर फिर नहीं आते हैं और जिस कालमें आते हैं. मैं अब उस कालका वर्णन करता हूं २३

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्
तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥

दोहा—अग्निज्योति दिनशुक्लपट, उतरायणकेमास
जातजुज्ञानीयासमैं, लहतब्रह्ममेंवास ॥२४॥

हे अर्जुन ! अग्निज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायणके छः महीने इनमें जो ब्रह्मवेत्ताजन प्रयाण करते हैं वे फिर नहीं आते हैं

समीक्षा—यह रूपकालंकार है अर्थात् उत्तरायण कालमें दिन शुक्ल होता है और अग्निज्योतिके समान होतीहै ऐसे प्रदीप्त ज्ञानकाल में जो लोग प्राणत्याग करते हैं वह ब्रह्मको प्राप्त होते हैं फिर उनको " आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" अर्थात् आत्मा संबन्धी ज्ञानको सुने उस पर विचार करे और पुनः तदनुसार धारणा करे इत्यादि जप यज्ञ करने की आवृत्ति (वार २ करना) नहीं करनी पडती क्योंकि दिव्यज्ञान की अवस्थामें शरीर छोडने से वह मुक्त हो जाते हैं. " गीतार्थ भाष्य.

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते॥

दोहा—धूमनिशादच्छिनअयन, कृष्णपक्षजोहोय
शशिमंडलयोगीलहै, फिरिआवैहैसोय ॥२५॥

धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन के छः मास और चन्द्रजोति इनमें जो योगी प्रयाण करते है वे फिर संसारमें आते हैं ॥२५ ॥

समीक्षा—इस श्लोक का आशय यह है कि, केवल कर्म कालमें जो योगी शरीर छोडता है वह धूम, रात्रि तथा कृष्णपक्ष के समान अज्ञानरूप अंधकार को प्राप्त होता है अर्थात् ऐसा योगी बार२कर्मोंकी आवृत्ति करता है। प्रयोजन यह है कि दक्षिणायन समयमें उत्तर ध्रुवके समीप घोर अधकार होता है ऐसी अज्ञान रूप अंधकार अवस्थामें केवल कर्मानुष्ठानी योगी भोगरूपी आनंदों को प्राप्त होता है। इससे बार २ कर्मोंमेंही लगा रहना पडता है मोक्षतो ज्ञानावस्था में ही प्राण छूटनेपर हो सक्ता है " ॥ गीतार्थ भाष्य.

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते॥
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽवर्तते पुनः॥

दोहा—शुक्लकृष्णकीगतिकही, तेसंसारहिहोति ॥
फिरिआवतुहेएकगति, एकलहतहैज्योति २६

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष ये दोनों योगियोंके आने जानें के सनातन मार्ग हैं. जो शुक्ल मार्गसे जाते है वे मुक्त हो जाते हैं और जो कृष्ण मार्गसे जाते हैं वे फिर संसारमें आते हैं ॥ २६ ॥.

समीक्षा—" अर्थात ज्ञानगतिसे मुक्तिको प्राप्त होताहै और कर्मगतिसे फिर वार२ उपासना रूप कर्मोंका अभ्यास करता है" गीतार्थ भाष्य

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥

दोहा–जोजानैदोउगतिन, योगीमोहनकोय ॥
योगीव्हेअर्जुनतहू, सबकालनको जोय ॥२७॥

हे पार्थ ! जो योगी मोक्षके मार्ग और संसारके दाता इन दोनों मार्गोंको जानता है वह मोह नही पाता है इससे हे अर्जुन ! सदा योगयुक्त हो ॥ २७ ॥

समीक्षा–उक्तदेवयान और पितृयाण अर्थात् ज्ञान और कर्म दोनों प्रकारके मार्गोंमेंसे किसी एक मार्गकोभी जानता हुआ योगी मोहको प्राप्त नही होता । यह वही आशय है जो " नहाभिक्रम नाशोस्ति " गी० २ । ४० इत्यादि श्लोकमें वर्णन कर आये हैं कि, योगके अंश मात्र काभी नाश नही होता " गीतार्थ भाष्य.

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ॥ अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८

दोहा–वेदयज्ञतपदानको, फलजुकह्योहैमित्त ॥
योगीताफलसोंअधिक, रहैनसबदिनचित्त॥१॥
सबफ़लकोयहसारफल, योगीहरिसोंयोग ॥
भक्तिकरैमोकोमिलै, फलत्यागीकरिभोग २८
कृष्णचरणइकचित्तजे, जोजानतयहभाय ॥
ब्रह्मकर्मअधिभूतए, कहेआठवेंध्याय ॥ १ ॥
विनुकलेसइष्टहिलहै, महापुरुषयहयोग ॥
आनंदरामप्रकाशकरि, कियेयथारथलोग॥२॥

वेद, यज्ञ, तप, दान आदिमें जो फल कहे गये हैं उनसे अधिक जो योगरूप ऐश्वर्य है उसे पाते हैं और इसको पाकर परमपद जो स्थान है- उसपर पहुंच जाते हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां अक्षरब्रह्मयोगोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

समीक्षा—परमात्मा के जो भक्त हैं अर्थात् जो यह जानकरही उत्तम कर्म करते हैं कि परमात्मा उत्तम कर्म करनेवालों पर अपनी कृपा करते हैं उन भक्तजनोंके लिये इस अध्यायमें वह २ विधियाँ बताई हैं जिनको जानकर शरीर छोडनेके पश्चात् परमात्माकी प्राप्ति अर्थात् मुक्ति प्राप्त होसक्ती है।

मरणकाल के समय गीतामें बताई हुई विधियोंके अनुसार, (यथा ओंकार जपते २ शरीर छोडना) वही जन शरीर छोडसक्ते हैं जिन्होंने अपने जीवनकालमें धार्मिक एवं परोपकारवृत्तिको धारण करके अपने जीवन को व्यतीत करते हुए घंटे दो घंटे करके या अधिक समय तक नित्य जप आदिका अभ्यास किया हो और जिन्होने ऐसा नहीं किया होगा वह अंत समयमें सांसारिक पदार्थोंके मोहरूपी जालमें फँस कर बारम्बार जन्म, मरण रूपी दुःख को भोगेंगे।

सारांश यह है कि गीताके छठे अध्यायमें जो युक्ताहार विहार, आसन, प्राणायाम, धारणा और समाधिकी विधियाँ बताई हैं, तदनुसार अभ्यास करनेवाले भक्त जनही मरण में सावधान होकर परमात्मा का स्मरण करते हुए अपना शरीर छोड सक्ते हैं, अन्य लोग नहीं.

[पृष्ठ १६५ से आगे]

[२४] हिन्दुओं (आर्यों) में इस समय अनेक पंथ प्रचलित हैं जिनमें मुख्य सनातनी, आर्य, जैन, सिक्ख, बौद्धादि हैं, इन सभी को वैदिकधर्म की शाखाएं समझनी चाहियें; जैसा कि, गंगा नदी तो एक है और उसपर घाट अनेक हैं; ऐसेंही वैदिक आर्यधर्मरूपी गंगा तो एक है और उसके शाखा रूपी घाट सनातनी, आर्य, जैन, सिक्ख आदि अनेक हैं । इन भिन्न२ सम्प्रदाय वालों को चाहिये कि, अपनी २ सम्प्रदायों में रहते हुए भी दूसरे हिन्दू (आर्य) सम्प्रदाय वालों को अपनाही "धर्म बन्धु" समझें । अपने से भिन्न हिन्दू (आर्य) संप्रदाय की कुरीतियों पर विचार और शास्त्रार्थ बहुत प्रेम से करें । प्राचीन समय में भी एक वेद की सांख्य,वेदान्त,न्याय आदि कई शाखाओंको माननेवाले,मत भेद रखते हुए भी एकही वैदिक मतको मानने वाले समझे जातेथे। और बिचले समय में भी शैव,शाक्त,वैष्णव आदि भिन्न २ सम्प्रदायें इसी वैदिक आर्यधर्म की भिन्न२ शाखायें थीं ।

वैसेही अब भी सनातनी, आर्य, जैन, सिक्ख आदिका मूलधर्म एकही है । इनका परस्पर में विरोध करना मानों अपनेही अंग को काटना है । सभी हिन्दू [आर्य] सम्प्रदायें एकही महान् वैदिक आर्यधर्मकी भिन्न२शाखायें हैं।देश,काल और मनुष्यों की प्रकृतियां भिन्न२ होनेसे और समय२पर अज्ञानी मनुष्योंमें कुरीतियोंके फैलजाने से उन कुरीतियोंके हटाने के लिये बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, नानक, रामानुज, दयानन्द आदि आचार्यों को भिन्न २ रूपांतरोंमें समयानुकूल उपदेश करना पड़ा, इनके उपदेश ऊपर से भिन्न २ प्रतीत होते हुए भी वास्तवमें एक ही वैदिक आर्य सिद्धांतरूपी वृक्षकी भिन्न२शाखाएं हैं;परंतु आजकलके चीन,जापान, ब्रह्मानिवासी बौद्धलोगोंके खानपानका व्यवहार भ्रष्ट होगया है । वह लोग नाममात्रके बौद्ध धर्मावलंबीहैं, उनमें अहिंसा,ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास आदि नियमोंकापालन एक प्रकारसे सर्वथा छूटगया है; इसलिये उनके साथ हमारा ऐसा वर्ताव नहीं होसक्ता, जैसा कि, यहां वाले जैन सिक्खादिकेसाथ है, तथापि वास्तवमें हम और वह एक ही हैं । हम यदि यहांसे उनमें उपदेशक भेजकर केवल उनका गोमांसभक्षणादि भ्रष्टाचार छुडादें तो बडा लाभ यह होगा कि संसारमें हिन्दू(आर्य)जातिकी संख्या तेईसकरोडकी जगह सत्तर करोडकेलगभग होजाएगी,जिससे हमाराजातीय बल और भी अधिक बढजाएगा.

[२५] इस समय हिन्दू[आर्य]जाति, तेईस (२३) करोडजनसंख्या होनेपर भी, दूसरे धर्मवालोंकी दृष्टि में तुच्छ और अपमानित बन रही है, इसका निम्न लिखित कारण है, जो हमको दूर करना चाहियेः-

क—सात (७) करोड़, अछूत गिने जाने वालों की संख्या है, जो अत्यंतमलीन दरिद्र और धर्म शून्य हैं। इनको योग्य बनाकर हिन्दू (आर्य) धर्म के गीतादि ग्रंथ सिखाएं और अर्थोपार्जन का मार्ग सिखाकर और उनकी छुआ छूत मेटकर, विधर्मी ईसाई आदि होनेसे रोकें- जहां २ वह लोग हों वहां उनके लिये रामकृष्णादि अवतारोंके मंदिर भी बना दिये जाएं। वहां जानेसे उनके हृदयमें धर्मभाव उत्पन्न होकर अपने महापुरुषोंके प्रति प्रेम उत्पन्न होगा।

ख—बावन (५२) लाख साधु हैं.जिनको योग्य बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।
ग—साठ (६०) लाख विधवा स्त्री हैं. जिनमें बहुतसी तो पांच वर्ष के भीतरकी हैं। शोक की बात है कि धर्मशास्त्र के विरुद्ध, अपनी मूर्खतासे हम लोगोंने बालिकाओं का विवाह दस बारहवर्षसे नीची अवस्थामें करके उनका सुख नष्ट करनेमें पापका भाग लिया है।

यद्यपि हम विधवा विवाह के विरोधी हैं, परंतु मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें उन बाल-विधवाओंके पुनर्विवाह की आज्ञा भी देखनेमें आती है जिन्होंने कि पतिका संग नहीं किया है अर्थात् जिनको कुमारी ही बोलसक्ते हैं। इसलिये धर्मशास्त्रोंके जानकार और धार्मिक विद्वानोंकी एक सभाद्वारा इस विषय का निर्णय करा-लियाजाए और उनकी सम्मतिमें यदि ऐसा विवाह करना शास्त्र सम्मत ठहरे तो बारह वर्ष से नीची अवस्थावाली बालिकाओं का पुनर्विवाह करदियाजाय; क्योंकि बहुत छोटी २ अवस्थामें विवाह होते समय इन बेचारी बालिकाओंको विवाह विषय का कुछभी ज्ञान नहीं था।

बहुधा ऐसा हुवा है कि बहुत छोटी अवस्था में ही इनके माता पिताओंने अपनी बेसमझके कारण इनका विवाह कर दिया है जिसका परिणाम बेचारी यह भोली बालिकाएं भोगरही हैं।

यह विषय विवादास्पद है इसलिये विद्वानोंकी सभा द्वारा इस का निर्णय होना अत्यावश्यक है।

और बारहवर्षके उपरांत वाली विधवाओंको वैराग्य और धर्मका उपदेश देकर सीना, पिरोना, पढना, लिखना, आदि आजीविका के काम सिखाये जायँ। और आगेको ऐसा प्रबंध किया जाय कि, भारतवर्ष में विधवाओं की संख्या बढने न पावे, अर्थात् तेरहवर्ष से न्यून अवस्था वाली कन्याओंका विवाह कदापि न होने पावे।

घ—सोलह (१६) करोड़ शेष हिन्दू [आर्य] जातिके असंख्य भाग होरहे हैं जिनमें प्रत्येक अपनेको एक दूसरे से भिन्न समझता है। उनको विचार करना

चाहिये कि, मनुष्य अपने उत्तम कर्मोंसे बड़ा होता है, न कि मिथ्याभिमान और बड़ाई करने से।यहां तक किसी २ स्थान पर मूर्खता बढगई है कि, भाई, भाई के हाथका, पिता, पुत्र के हाथका और पति अपनी स्त्री के हाथका, बनाया हुआ भोजन नहीं करता. खाने पीने के मिथ्या आडंबर को ही धर्म समझ लिया है । ऐसे मिथ्याभिमान और द्वेष को छोडकर एकता और प्रेमका प्रचार करना चाहिये।

[२६] इस समय हिन्दुओं [आर्यों] के सहस्रों जातिभेद देखनेमें आरहे हैं। प्राचीन समयमें तो केवल चारवर्ण थे और अबभी चारही रहने चाहिये। इससमय जो संकीर्णता जातिभाव की देखने में आरही है वह बडी भयानक है. कोई२ हिन्दू [आर्य] जातिये. तो चारसौ पांच सौ घरही हैं;जिसका फल यह होता है कि उसी जातिके बाहर विवाहादि सम्बन्ध न करसकने के कारण बहुत से मनुष्यों को आजीवन अविवाहित रहना पडता है। इस समय यदि अधिक से अधिक जाति के वर्ग रक्खे जायें, तो समस्त भारत वर्षमें बीस हिन्दू [आर्य] जातिके वर्ग के हैं, जो निम्नलिखित प्रकार हैं।

चार प्रकार के—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जिनका खानपान निरामिषी अर्थात् मांस रहित है और जन्म से जाति मानते हैं.

चारप्रकारके—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जो जन्म से तो जाति मानते हैं परन्तु जिनका खानपान निरामिषी नहीं है अर्थात् मांसाहारी हैं.

चार प्रकार के—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जो गुण कर्म से जाति मानते हैं और जन्म से नहीं; जिनका खान पान निरामिषी है, जैसा कि आर्यसमाज का एक दल. इनके सिद्धान्तमें उत्तमवर्णवाला यदि हीन कर्म करे तो नीचे वर्णमें चला जाता है और उत्तम कर्म करनेवाला हीनवर्ण ऊंचे वर्ण में आजाता है।

चारप्रकारके—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जो गुणकर्मसे जातिमानते हैं, जन्म से नहीं; परन्तु जिनका खानपान निरामिषी नहीं जैसा कि आर्यसमाजका दूसरा दल. उत्तम वर्णसे हीनवर्ण बनना और हीनवर्णसे उत्तमवर्ण हो जाना गुणकर्मानुसार ही यह दल मानता है

एक प्रकार के—जैन.

एक प्रकारके—सिक्ख.

एक प्रकारके—बौद्ध जो गोरक्षक हों,क्योंकि जो गौरक्षक नहीं हैं, उनको हम हिन्दू (आर्य) जातिकी श्रेणीमें स्थान नहीं देसके। यद्यपि बुद्धभगवानका उपदेश तो किसी भी प्राणी की हिंसा करने को नहीं था; परंतु समय के फेरसे आज उसी बुद्ध भगवान के अनुयायी कहलाते हुए भी चीन, जापान आदि देशनिवासी

बौद्धधर्मी लोग इतने गिरगये हैं कि अन्य प्राणियों की रक्षा करना तो दूर रहा गौजातिकी हिंसा करने से भी नहीं हटते; इस लिये हम जो गौरक्षक हैं, उनको हिन्दू [आर्य] जाति की श्रेणीमें स्थान नहीं दे सके।

और एकप्रकारके—वह सब लोग जो गौरक्षक होते हुए किसी भी हिन्दू [आर्य] जातिकी वेदानुकूल सम्प्रदायको मानते हैं; या हमारे धर्मग्रंथोंके किन्हीं सिद्धांतोंके अनुयायी हैं; परन्तु जन्म से या गुणकर्म से जातिभेद नहीं मानते; केवल एकही आर्यजाति मानना चाहते हैं; जैसा कि "आर्य भ्राता मंडल,, "ब्राह्मसमाज" आदि.

इस प्रकार बीस वर्ग हिन्दू [आर्य] जानेके इस समय हो सके हैं। इन बीस वर्गोंसे अधिक वर्ग होनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस समय भी प्रधान २ साम्प्रदायिक भेद इन बीस वर्गों के अंतर्गतही हैं।

[२८] भारतवर्षके सब हिन्दुओं[आर्यों]की एक महासभा होनी चाहिये, जिसका वार्षिक अधिवेशन भारतवर्षके भिन्न२ प्रांतोंमें होता रहे। उस सभामें प्रांतिक हिन्दू [आर्य]सभाओं के प्रतिनिधिगण आवें और हिन्दू [आर्य]जातिकी उन्नतिके उपाय सोचें और तदनुसार कार्य प्रारंभ करके हिन्दू [आर्य] जाति को उन्नत करें॥

(अपूर्ण)



अथ नवमोऽध्यायः

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

दोहा—अर्जुनतोसोंकहतुहौं, एकगुप्तयहबात ॥
समझज्ञानविज्ञानको, लहैमुक्तिविख्यात ॥१॥

हे अर्जुन ! तू परनिन्दक नहीं है इससे विज्ञानसहित जो यह अत्यन्त गुप्तज्ञान है वह मैं तुझे सुनाता हूं इसे जानकर तू सब अशुभ कर्मोंसे छूट जायगा ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

दोहा—उत्तमविद्याराजहै, अतिपवित्रतूजानि ॥
फलताकोप्रत्यच्छहै, करियेतेसुखमानि ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! जो ज्ञान मैं तुझे सुनाता हूं वह सब विद्याओंका राजा है और सबसे अधिक गुप्त रखनेके योग्य है,अत्यन्त पवित्र है, जिसका जानना सुलभ है, वेदोक्त धर्मोंका फलस्वरूप है, सुखपूर्वक साधनके योग्य है और नाशरहित है ॥ २ ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

दोहा-करिविकोयाधर्मकौं, जाकेश्रद्धानाहिं ॥
तेमोको पावैनहीं, डोलतहैंभवमाहिं ॥ ३ ॥

हे परंतप ! जो मनुष्य इस धर्ममें श्रद्धा नहीं करते हैं, वे मुझको प्राप्त नहीं होते हैं और इस मरणशील संसारमें घूमते रहते हैं ॥३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः

दोहा-विस्तारोसबजगतमें, मोहिनपेषैकोय ॥
सबैजीवमोमेंबसैं, मोहिनातिनमेंजोय ॥ ४ ॥

यह संपूर्ण जगत मुझमें अव्यक्तरूप करके व्याप्त है, सब प्राणी मुझमें स्थित हैं और मैं उनमें स्थित नहीं हूँ ॥ ४ ॥

नचमत्स्थानिभूतानिपश्यमेयोगमैश्वरम्॥
भूतभृन्नचभूतस्थोममात्माभूतभावनः ॥

दोहा-मोमेंकोउनहिंबसै, यहईश्वरतादेखि ॥
उपजावतपालतजुहौं, नहिंतिनमेंअवरेखि ॥५

ये सब प्राणीभी मुझमें स्थित नहीं हैं, जो कदाचित तू यह कहै कि, तुम पहिले कह चुके हो कि सब प्राणी मुझमें स्थित हैं, इससे पूर्वापर विरोध है, हे अर्जुन ! सो नहीं है, तू मेरे ऐश्वर्यसंबधी योग बलको देख, प्राणियोंका भरण पोषण करनेवाला मेरा आत्मा प्राणियोंका लालनपालन करता है परन्तु उनमें स्थित नहीं है, यही मेरा योगबल है ॥ ५ ॥

यथाऽऽकाशस्थितोनित्यंवायुःसर्वत्रगोमहान्
तथासर्वाणिभूतानिमत्स्थानीत्युपधारय ॥

दोहा–जैसेपवनअकाशम, बिचरतहैसबवार ॥
त्योंमोमेंसबजीवए, फिरतजानिनिरधार ॥६॥

जैसे निरन्तर आकाशमे रहनेवाला वायु वडा है और सब जगह विचरता है परन्तु आकाशमें लिप्त नहीं होता है, ऐसेही सब प्राणी मुझमें स्थित हैं. परन्तु मै किसीमें लिप्त नहीं होता हूं ॥ ६ ॥

सर्वभूतानिकौंतेयप्रकृतिंयांतिमामिकाम्
कल्पक्षयेपुनस्तानिकल्पादौविसृजाम्यहम्

दोहा–मेरीमायामेंरहैं, प्रबलभयेसबजंतु ॥
कल्पआदिसिरजौंतिन्हैं, मोमेंतिनकोतंतु ॥७॥

हे अर्जुन! प्रलयकालमें संपूर्ण प्राणी मेरी प्रकृतिमें लीन होजाते हैं और उनको मै कल्पके आदिमें फिर छोड देता हूं अर्थात सृजता हूं ७

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामिपुनःपुनः॥
भूतग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात् ॥८

दोहा–अपनीमायासंगले, सिरजतवारंबार ॥
मायाहीकेबसपरचो, रहैसदासंसार ॥ ८ ॥

मैं अपनी प्रकृतिका आश्रय लेकर अपनी प्रकृतिके कारण पराधीन इस संपूर्ण प्राणीसमूहको बारंबार सृजता हूं ॥ ८ ॥

नचमांतानिकर्माणिनिबध्नंति धनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ॥ ९ ॥

दोहा–अर्जुनमोकोकर्मवे, कर्महुबांधतनाहिं ॥
सदाउदासीरहतहौं, आसक्तनतिनमांहिं ॥९॥

हे धनंजय ! मैं उन सृष्टिरचनादि कर्ममें आसक्तहूं अर्थात् कर्मोंमें लिप्त नहीं होता हूं और उदासीनवत् स्थित रहता हूं अर्थात् किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं रखता. इससे मैं कर्मबंधनोसे नहीं बँधता हूं॥९॥

मयाऽध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥
हेतुनाऽनेनकौंतेयजगद्विपरिवर्तते ॥ १०

दोहा–हौंप्रेरतमायाजबै, उपजतसबसंसार ॥
पारथयाहीहेततैं, फिरतसुबारंबार ॥ १० ॥

हे कौन्तेय ! मैंही अध्यक्षहूं. इस मेरी अध्यक्षताहीसे प्रकृति चराचर प्राणीमात्रको सृजती है, इसी हेतुसे इस जगत्का परिवर्त्तन होता रहता है. इससे यह दिखाया है कि मैं कर्त्ताभी हूं और उदासीन भी हूं॥

अवजानंतिमांमूढामानुषींतनुमाश्रितम् ॥
परंभावमजानंतोममभूतमहेश्वरम् ॥ ११

दोहा–मोकोमानसजानिकै, आदरकरतनकोय ॥
मूरखएजानतनहीं. यहैजुईश्वरहोय ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! मूढ मनुष्य मेरे सर्वभूत महेश्वर परमभावको नहीं जानते हैं, इसीसे मैंने जो यह मनुष्यरूप धारण कर रक्खा है. उसकी

अवज्ञा करते हैं अर्थात् अपने समान जानकर मेरा आदर नहीं करतेहैं

मोघाशामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः
राक्षसीमासुरींचैवप्रकृतिंमोहिनींश्रिताः ॥

दोहा–उनकीआशासुफलनहिं, ज्ञानकर्मताभाय॥
प्रकृतिआसुरीराक्षसी, तामेंबूडतधाय ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! ये मूढ मनुष्य इसलिये मेरा अनादर करते हैं कि इनकी आशा फलवती नहीं है इनके कर्म निष्फल हैं, इनके ज्ञान फलहीन है सांसारिक दुर्व्यसनोंसे इनका चित्त विक्षिप्त रहता है और राक्षसी तथा आसुरी प्रकृतिका आश्रय रखते हैं जो मोहको उत्पन्न करनेवाली है॥

महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः॥
भजंत्यनन्यमनसोज्ञात्वाभूतादिमव्ययम्

दोहा–देवप्रकृतिमें जोमिलैं, कामक्रोधकोत्यागि॥
तेजानतमोकोसबैं, रहतजुहैअनुरागि ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! दैवी प्रकृतिका आश्रय रखनेवाले महात्माजन तो मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंका आदिरूप और अविनाशी जानकर सब ओरसे चित्त हटा मेराही भजन करते हैं ॥ १३ ॥

सततंकीर्तयंतोमांयतंतश्चदृढव्रताः ॥
नमस्यंतश्चमांभक्त्यानित्ययुक्ताउपासते

दोहा–कीरतमेरीदृढकरी, जानैंमोहिव्रतराखि ॥
भक्तिसहितमोकोनवत, मेरेईगुनभाखि ॥१४॥

हे अर्जुन ! वे महात्मालोग निरन्तर मेरा कीर्त्तन करते हैं, दृढ संकल्प करके मेरी प्राप्तिका यत्न करते हैं, भक्तिपूर्वक मुझे नमस्कार करते हैं और अहर्निश मुझमें ध्यान लगाकर मेरी उपासना करते हैं

ज्ञानयज्ञेनचाप्यन्येयजंतोमामुपासते ॥

एकत्वेनपृथक्त्वेनबहुधाविश्वतोमुखम् ॥

दोहा–ज्ञानयज्ञकोउयजत, मोकोसेवतमीत ॥
कोऊमानतएककरि, कोउबहुतपुनीत ॥१५॥

हे अर्जुन ! कितनेही मनुष्य ऐसे हैं जो एकभाव अर्थात् अभेद बुद्धिसे मेरी उपासना करते हैं, कितनेही दास्यभावसे भेदबुद्धिद्वारा मेरी उपासना करते हैं. और कितनेही सब प्राणियोंका आत्मस्वरूप मुझे ब्रह्मरुद्ररूप समझकर मेरी उपासना करते हैं ॥ १५ ॥

अहंक्रतुरहंयज्ञःस्वधाहमहमौषधम् ॥

मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहंहुतम् १६

दोहा--हौंहीक्रतुअरुयज्ञहौं, स्वधाऔषधीजानि ॥
हौंपावकव्रतहोमहौं, मंत्रौंमोकोमानि ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! वेदोक्त अग्निष्टोमादि यज्ञ मैंही हूं, बलिवैश्वदेवादि पञ्चमहायज्ञ मैंही हूं, स्वधा मैंहीहूं अन्नादि औषधभी मैंहूं, मंत्रमैंहूं, होमका साधन घृत मैं हूं, जिसमें हवन किया जाता है वह अग्नि मैं हूं, और होमभी मैंही हूं ॥ १६ ॥

पिताहमस्यजगतोमाताधातापितामहः

वेद्यंपवित्रमोंकारऋक्सामयजुरेवच ॥ १'

दोहा-मातपितायाजगतकौ, हौंधाताकरतार ॥
ऋगयजुसामपवित्रहौं, औरवेदॐकार ॥१७॥

हे अर्जुन ! इस संपूर्ण जगतका पिता मैं हूं, माता मैं हूं, धाता मैं हूं, पितामह मैं हूं जाननेके योग्य मैं हूं, पवित्र मैं हूं, ओंकार मैं हूं, ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद मैं हूं ॥ १७ ॥

गतिर्भर्ताप्रभुःसाक्षीनिवासःशरणंसुहृत ॥
प्रभवःप्रलयःस्थानंनिधानंबीजमव्ययम् ॥

दोहा-गतिनिवासभर्ताशरन, साक्षीप्रभुअरुबंधु ॥
प्रलयस्थाननिधानहूं,अव्ययबीजअबंधु ॥१८॥

हे अर्जुन ! इस सब जगतकी गति मैं हूं, सबका भर्त्ता अर्थात् पोषणकर्त्ता मैं हूं, सबका प्रभु मैं हूं, सब शुभ अशुभ कर्मोंका साक्षी मैं हूं, सबका निवासस्थान मैं हूं, सबका शरणस्थान मैं हूं, मैंही सबका अहेतुक हितकारी हूं, मैंही सबका उत्पत्तिस्थान हूं; मैंही प्रलय हूं; विश्वकी स्थिति और प्रलयका स्थान मैंही हूं, सबका बीजरूप मैं हूं, और अविनाशी मैंही हूं ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहंवर्षंनिगृह्णाम्युत्सृजामिच ॥
अमृतंचैवमृत्युश्चसदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

दोहा-तपतगहतछोडतजुहौं, वरषतहौंही जानि ॥
अमृतमृत्युकारणकरन, हौंहीअर्जुनमानि १९॥

हे अर्जुन ! मैंही सूर्यरूपसे सबको तपाता हूं, मैंही जल बरसाता हूं और मैंही रोक देताहूं, मैंही अमृत और मृत्युहूं, मैंही सत और असतहूं

त्रैविद्यामांसोमपाःपूतपापायज्ञैरिष्ट्वास्व-
र्गतिंप्रार्थयंते ॥ ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोक
मश्नंतिदिव्यान्दिवि देवभोगान्॥ २० ॥

दोहा--यज्ञकरत पापनदहत, चाहतस्वर्गहिवास ॥
इंद्रलोकलहिभोगवै, दिव्यभोगसुविलास ॥२०

हे अर्जुन! ऋक्, यजु, साम इस वेदत्रयीके ज्ञाता वेदोक्त यज्ञकर्म करके सोमरसक पान कर अपने पापोंसे पवित्र हो स्वर्गमें वास वा दिव्य भोगोंका भोग करते हैं ॥ २० ॥

ते तंभुक्त्वास्वर्गलोकंविशालंक्षीणेपुण्ये
मर्त्यलोकंविशंति॥ एवंत्रयीधर्ममनुप्रप-
न्नागतागतंकामकामा लभंते॥ २१ ॥

दोहा--फिरिआवतभूलोकमें, छीनपुन्यजबहोय ॥
पावैंआवागवनवे, कामवंतजेसोय ॥ २१ ॥

वे स्वर्गलोकमें अनेक भोगोंको भोगकर अपने पुण्योंके क्षीण होने-पर फिर मृत्युलोकमें जन्म लेते हैं इसप्रकार वेदोक्त यज्ञादि कर्मोंके करनेवाली अपनी कामनाकी सिद्धि के कारण कभी स्वर्गमें जाते हैं कभी मृत्युलोकमें आते हैं इसी तरह आवागमनमें फंसे रहते हैं .२१

अनन्याश्चिंतयंतोमांयेजनाःपर्युपासते ॥
तेषांनित्याभियुक्तानांयोगक्षेमंवहाम्यहम्॥

दोहा–देवभक्तदेवनलहैं, पितृपूजकपितृस्थान ॥
भूतयजैंभूतहिलहैं, मोपूजैभगवान ॥ २५ ॥

हे अर्जुन! देवताओंके पूजनेवाले देवगतीको प्राप्त होते हैं पित्रोंके पूजक पितृगतिको पाते हैं भूतोंके पूजनेवाले भूत बनते हैं और मेरे पूजनेवाले मेरे परमानन्दस्वरूप अचल पदको पाते हैं ॥ २५ ॥

पत्रंपुष्पंफलंतोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छति ॥
तदहंभक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः ॥

दोहा–पातफूलफलनीरऊ, जोअर्प्पैकरिप्रीति ॥
लेऊंदियोहौंभक्तको, कियेप्रेमकीरीति ॥ २६ ॥

हे अर्जुन! जो कोई भक्तिपूर्वक पत्र, फल, फूल, जल जो कुछभी मेरेको निवेदन करता है उस भक्तिपूर्वक दीहुई वस्तुको मैं बडी प्रसन्नतासे अंगीकार करता हूं, इसका भाव यह है कि अन्य देवताओंकी पूजाके लिये बडी बडी सामग्रियोंकी आवश्यकता है मेरी पूजाके लिये केवल भक्तिही बहुत है ॥ २६ ॥

यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत्
यत्तपस्यासिकौंतेयतत्कुरुष्वमदर्पणम् २७

दोहा–जोकछुकरतुजोखातुहै, जोहोमतजोदेत ॥
अर्जुनजोतूतपकरै, सोकरिमोहीहेत ॥ २७ ॥

हे कौंतेय! जो कुछ तू करता है, होम करता है, खाता है, देता है, तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर ॥ २७ ॥

शुभाशुभफलैरेवमोक्ष्यसेकर्मबंधनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्माविमुक्तोमामुपैष्यसि

दोहा-भलेबुरेजेकर्महैं, तिनतेछुटिहैमित ॥
जुगतयोगसंन्यासकरि, मोमिलिहोनिहिचिंत

हे अर्जुन ! ऐसा करनेसे कर्म बंधनरूप शुभ अशुभ फलोंसे बच जाओगे और संन्यास योगमें युक्त होकर मुक्ति पा, मुझको अवश्य पाओगे ॥ २८ ॥

समोऽहंसर्वभूतेषुनमेद्वेष्योऽस्तिनप्रियः ॥
येभजंतितुमांभक्त्यामयिते तेषुचाप्यहम्

दोहा-हौसबठौरसमानहौं, मेरेप्रीतनद्रोह ॥
मोकोसेवतभक्तजे, तिनसोंमोको मोह ॥२९॥

हे अर्जुन! मैं संपूर्ण प्राणियोंमें समान रूप हूं, न कोई मेरा बैरी है, न कोई मेरा प्यारा है, जो मुझको कोई भक्तिपूर्वक भजता है वह मुझमें है और मैं उसमें हूं ॥ २९ ॥

अपिचेत्सुदुराचारोभजतेमामनन्यभाक्
साधुरेवसमंतव्यःसम्यग्व्यवसितोहिसः ॥

दोहा--दुराचारमोकोभजै, व्हैअनन्यकेभाय ॥
ताकोतुमसाधूगिनौ, सबनिश्चयकेदाय ॥३०॥

यदि कोई अत्यन्त दुराचारी मनुष्य भी हो और वह औरोंकी भक्ति न करके केवल मेरीही उपासना करे वह साधुही है और उसीने सब बातोंका अच्छे प्रकार निश्चय करलिया है ॥ ३० ॥

क्षिप्रंभवतिधर्मात्माशश्वच्छांतिंनिगच्छात॥
कौंतेयप्रतिजानीहिनमेभक्तःप्रणश्यति ॥

दोहा–वेगिहोइधर्मातमा, शांतिलहैबहुभाय ॥
अर्जुननिश्चैजानितू, नहिंमोभक्तनसाय ॥३१॥

वह अनन्य भक्त शीघ्रही दुराचारीसे धर्मात्मा होजाता है और वह निरंतर शान्त रहता है. हे कौंतेय ! इस बातको अच्छे प्रकारसे जानले कि मेरे भक्तका नाश कभी नहीं होता है ॥ ३१ ॥

मांहिपार्थव्यपाश्रित्ययेऽपिस्युःपापयोनयः
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपियांतिपरांगतिम्

दोहा–अर्जुनसेवतमोहिजो, सोयाजोनिहिसोय॥
नारिशूद्रअरुवैश्यपुनि, ताहिपरमगतिहोय ॥

हे पार्थ ! कोई कैसाही पापात्मा क्यों न हो,चाहे स्त्री हो, वा वैश्य हो, वा शूद्र हो, वह यदि मेरा आश्रय ले तो उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

समीक्षा–" यहां श्रीकृष्णजीने इस बातपर बल दिया है कि जो पूर्व प्रारब्ध कर्मसे निंदित कर्म करनेवाले हों चाहे स्त्रियें हों चाहे वैश्य हों वा शूद्र हों वहभी परमात्मा परायण होनेसे शुद्ध होजाते है, स्त्री, वैश्य तथा शूद्र को कृष्णमहाराजने जन्मसे दुष्ट नहीं माना है। यदि ऐसा होता तो अज्ञात कुल गोत्र सत्य काम जावाल और विदुर महाराज ब्रह्मविद्या पढकर और मैत्रेयी, कात्यायनी आदि स्त्रियें विदुषी बनकर कैसे पूर्वकालके ऋषि मंडलमें आदर और प्रतिष्ठा पालेते " ॥ गीतार्थभाष्य.

किंपुनर्ब्राह्मणाःपुण्याभक्ताराजर्षयस्तथा॥
अनित्यमसुखंलोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम

दोहा–द्विजपुनीतअरुभक्तवर, राजऋषिनिसुखमाय
सुखअनित्ययालोकको, मोहिभजोचितलाय ३३

हे अर्जुन ! जो फिर पुण्यात्मा ब्राह्मण हैं भक्त राजर्षि हैं, उनका तौ कहना ही क्या है ! अर्थात् वे तौ मोक्ष पातेही हैं इस लिये हे अर्जुन ! अनित्य सुखरहित, इस लोकको पाकर तू मेरा भजन कर

मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु॥
मामेवैष्यसियुक्त्वैवमात्मानंमत्परायणः

दोहा–मोकोभजिभजिनम्रव्है, मोहीमैंमनराखि
यहीयुक्तितूमोहिमिलि, प्रेमनसोंअभिलाखि॥
अपनीईश्वरताकही; अचरजकैसेभाय॥
भक्तिविभौकरिकैकृपा, कह्योनवमससुझाय॥
राजगुह्यविद्यायहै, राजगुह्ययहयोग॥
वरनीआनँदरामयह, प्रभुकीपूजाजोग॥ २॥

हे अर्जुन ! तू अपना मन मुझमें लगा, मेराही भक्त बन, मेरीही पूजा कर, मुझेही नमस्कार कर, मेरेहीमें तत्पर हो ऐसे अपनी आत्माको युक्त करनेसे मुझको पाओगे॥ ३४॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

समीक्षा—इस अध्यायमें यह दिखाया गया है कि जब पापी मनुष्य अपने अंतःकरणको शुद्ध करके सर्वथा पापोंका त्याग करके परमात्माकी भक्ति करना प्रारंभ करता है, तभीसे उसको यह पूर्ण विश्वास रखना चाहिये कि ईश्वर मेरा अवश्य उद्धार करेंगे। (देखो अ० ९ श्लो० ३०).

और जो उत्तम श्रेणी के भक्तजन केवल परमात्माके ध्यानमेंही मग्न रहनेके कारण अन्य लौकिक कार्य नहीं करसक्ते उनके लिये योग क्षेमकी चिन्ता परमात्मा ही करते है। (देखो अ०९ श्लो०२२) ऐसा दृढ विश्वास उत्तम श्रेणीके भक्तोंके लिये ही दिखाया गया है। अन्य साधारण मनुष्योंके लिये नहीं।

(क) अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करना " योग " कहलाता है।

(ख) प्राप्त वस्तुकी रक्षा करना " क्षेम " कहलाता है।

जो लोग पाप कर्मोंमें रत रहते हुए केवल लोकवंचना (लोगों को ठगना) के निमित्त धर्मका वाह्य आडम्बर रखते हैं ऐसे धर्मध्वजी जन परमात्माकी कृपाके कभी पात्र नहीं बनसक्ते (देखो अ० ९ श्लो० १२).

सारांश यह कि जो मनुष्य मन वचनसे सच्चे बनकर पाप कर्मोंको एकमात्र त्यागकर परमात्माकी शरणमें आते हैं वह शीघ्रही परमात्माकी कृपाके पात्र बन जाता है। (देखो अ० ९ श्लो० ३१)

यही इस अध्यायका सार है॥

[पृष्ठ १८१ से आगे]

[२८] ग्राम २ में हिन्दू (आर्य) सभाएं स्थापित की जायँ, उनमें स्वयंसेवक अर्थात् " जातिसहायक " उत्पन्न किये जायें, जो विपत्ति के समय में काम आसकें और उन सभाओं में नीच धंधा करने वाले शूद्रों से लेकर पवित्र धंधा करने वाले

ब्राह्मणों पर्यंत सम्मिलित होकर हिन्दू (आर्य) जातिका संगठन करें, जिससे कि दुःखके समयमें मिलकर काम करसकें । परस्पर विरोधके कारण पृथ्वीराज और जयचंद भारतवर्षके नाश करने के उदाहरण हैं ।

जिस भारतवर्षमें बारहसौ वर्ष पूर्व एकभी मुसल्मान नहीं था. वहां हमारेही घरेलू झगडों के कारण मुसलमान लोग आगये । हमने ही उनको यहां बुलाकर यहांका राज्य सौंप दिया और राज्यस्थापित रखनेमें भी हमही सहायक बने रहे, जिसका फल यह हुआ कि, हमारे भाइयोंमें से ही छः करोड मुसल्मान बन कर हमारे धर्म विरोधी हो रहे हैं ।

[२९] नीच धंधा करने वाले हिन्दू (आर्य)लोगोंको धर्मसे परिचित करनेके लिये उपदेशकोंका प्रबन्ध किया जाय जिससे वह लोग भिन्नधर्मी न होसकें और ज्योंरवह लोग मलीन धंधा छोडते जायँ वैसे २ ही उनके साथ छूआ छूत छूटती जानी चाहिये और उनके पढाने के लिये विद्यालयभी आवश्यकानुसार खोल दिये जायँ ।

[३०] नीच अर्थात् मलीन धंधा करनेवाले हिन्दुओं [आर्यों] के लिये आवश्यकानुसार उनके बीच में देवालय बना दिये जायँ और जब वह पवित्र होकर शुद्ध वस्त्रोंको धारण करके देवालयोंमें आयें, तो किसी भी देवालय में आने से उनको न रोका जाय क्योंकि वह हमारे स्वधर्मी हैं, श्रीरामचंद्रादि परमेश्वरके अवतारोंने और धर्मग्रंथोंने उनको दूसरे वर्णों के समान गिना है । परमेश्वरको तो निम्न लिखित गुणवाला मनुष्य प्रिय है चाहे वह किसी वर्णका क्यों न हो; यथाः

श्लोक–यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति । शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ गी. अ. १२ । श्लो० ७१॥

अर्थ–जोकि इष्ट वस्तु को प्राप्त होकर प्रसन्न नहीं होता है, अनिष्ट वस्तुको प्राप्त होकर न द्वेष करता है,न शोक करता है,न इच्छा करता है और शुभाशुभका भ्रम न करके सदा ईश्वरभक्तिके कामों में लगा रहता है ऐसा भक्त मुझको प्रिय है ।

समीक्षा–न कि अपने को जन्मसे उत्तम माननेवाला ईश्वर को प्रिय हो सक्ता है ।

[३१] भारतवर्षकी सब हिन्दू [आर्य]जातिका एक पहराव होना चाहिये.यदि सब वस्त्र एक प्रकारके न होसकें तो सिरका वेष तो एकप्रकारका अवश्य होना चाहिये यथा टोपी और पगडी । वह वेष.जातीय व्यवहारों और सभाओंमें अवश्य दृष्टि गोचर होना चाहिये । आजकल भारतवर्षके मुसल्मान लोगोंने भी तुर्कीटोपी को अपना जातीय सिरका वेष बना लिया है,तो क्या हमको अपना एकवेष नहीं बनाना चाहिये।

[अपूर्ण]

अथ दशमोऽध्यायः ॥



॥ श्रीभगवानुवाच ॥

भूयएवमहाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया

दोहा–दुरीबातमोसोंबहुरि, सुनुअर्जुनचितलाय ॥
है प्रसन्नतोसोंकहौं, तेरेहितकोभाय ॥ १ ॥

हे महाबाहो! मेरी औरभी उत्तम उत्तम बात सुन मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूं इस लिये तेरी भलाईके लिये कहता हूं ॥ १ ॥

नमे विदुःसुरगणाःप्रभवं न महर्षयः ॥
अहमादिर्हि देवानांमहर्षीणांचसर्वशः ॥२

दोहा–देवऋषीनहिंजानहीं, मोउतपत्तिहिमीत ॥
देवऋषिनअरुसबनको, हौंहीआदिपुनीत ॥

मेरे जन्मको देवता वा महर्षि कोईभी नहीं जानते हैं क्योंकि मैं संपूर्ण देवता और संपूर्ण ऋषियोंसे पहिले हुआ हूं और वे सब मुझहीसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥

योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढःसमर्त्येषुसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३ ॥

दोहा–अजंअनादिजगदीशपुनि,मोकौंलखतजुकोय
सबमेंज्ञानीवहबडो, पापनि डारतधोय ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो मुझे अज, अनादि और संपूर्ण लोकोंका ईश्वर जानते हैं वे मनुष्योंमें मूढतारहित हैं और संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमासत्यंदमःशमः ॥
सुखंदुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥ ४
दोहा-बुद्धिज्ञानशमदमक्षमा, अन्याकुलताहोय॥
सुखभवदुखओभावभय, औरअभयताजोय

हे अर्जुन ! बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, लय, भय और अभय ॥ ४ ॥

अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोऽयशः॥
भवंतिभावाभूतानांमत्तएवपृथग्विधाः ॥
दोहा-तोष अहिंसा दानतप, समजसअजसोजान
जीवनकेसबभावए, मोतेहोतसमान ॥ ५ ॥

अहिंसा, समता, संतोष, तपस्या, दान, यश, अपकीर्ति ये सब प्राणियोंके पृथक पृथक भाव मुझहीसे होते हैं ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥
मद्भावामानसाजातायेषांलोकइमाःप्रजाः
दोहा-सातौंऋषिमुनिचारिमनु, मोमनतेजुउदोत
सबलोकनमाहींभरे, हैं इनहीकेगोत ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! वसिष्ठादि सात महर्षि, सनकादिक चार आदि ऋषि तथा चौदह मनु ये सब मेरे मनसे प्रकट हुए हैं, इन्हींसे यह संपूर्ण प्रजा उत्पन्न हुई है ॥ ६ ॥

एतांविभूतिंयोगंचममयो वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽविकंपेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः ७

दोहा–मेरीयोगविभूतिको, तत्वज्ञानजोलेत ॥
निश्चलयोगहिसोलहै, रहतजुयाहीहेत ॥ ७ ॥

जो पुरुष मेरी इस विभूतिको तत्वसे जानते हैं वे निश्चलयोगसे युक्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ॥
इति मत्वा भजंते मां बुधाभावसमन्विताः

दोहा–मैंहोंईश्वरजगतको, मोहीतेसबहोय ॥
ज्ञानवंतयहजानिकै, मोहीसेवतसोय ॥ ८ ॥

मैंही सबका उत्पत्ति कारण हूं और मुझहीसे सबकी प्रवृत्ति होती है यह जानकर विवेकी पुरुष मेरा स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥

मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयंतः परस्परम् ॥
कथयंतश्चमांनित्यंतुष्यंति च रमंति च॥९

दोहा–प्रानचित्तमोमेंधरत, बोधपरस्परदेत ॥
मेरेचरितनिकहतनित, प्रीतिपरमसुखलेत ॥९

हे अर्ज्जुन ! वे अहर्निशि मुझहीमें चित्त लगाये रहते हैं और अपने प्राणोंको मुझहीमें अर्पण किये रखते हैं, आपसमें एक दूसरेसे मेराही उपदेश करते हैं, मेरीही चर्चा करते हैं, इस प्रकार नित्य संतुष्ठ रहते हैं और आनन्दमें मग्न रहते हैं ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो मुझे अज, अनादि और संपूर्ण लोकोंका ईश्वर जानते हैं वे मनुष्योंमें मूढतारहित हैं और संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमासत्यंदमःशमः ॥
सुखंदुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥४

दोहा–बुद्धिज्ञानशमदमक्षमा, अव्याकुलताहोय॥
सुखभवदुखओभावभय, औरअभयताजोय

हे अर्जुन ! बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, लय, भय और अभय ॥ ४ ॥

अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोऽयशः॥
भवंतिभावाभूतानांमत्तएवपृथग्विधाः ॥

दोहा–तोष अहिंसा दानतप, समजसअजसौजान
जीवनकेसबभावए, मोतेहोतसमान ॥ ५ ॥

अहिंसा, समता, संतोष, तपस्या, दान, यश, अपकीर्ति ये सब प्राणियोंके पृथक पृथक भाव मुझहीसे होते हैं ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥
मद्भावामानसाजातायेषांलोकइमाःप्रजाः

दोहा-सातोंऋषिमुनिचारिमनु, सोमनतेंजुउदोत
सबलोकनमाहींभरे, हैं इनहीकेगोत ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! वसिष्ठादि सात महर्षि, सनकादिक चार आदि ऋषि तथा चौदह मनु ये सब मेरे मनसे प्रकट हुए हैं, इन्हींसे यह संपूर्ण प्रजा उत्पन्न हुई है ॥ ६ ॥

एतांविभूतिंयोगंचममयो वेत्ति तत्त्वतः ॥
सोऽविकंपेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः ७

दोहा–मेरीयोगविभूतिको, तत्वज्ञानजोलेत ॥
निश्चलयोगहिसोलहै, रहतजुयाहीहेत ॥ ७ ॥

जो पुरुष मेरी इस विभूतिको तत्वसे जानते हैं वे निश्चलयोगसे युक्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ॥
इति मत्वा भजंते मां बुधाभावसमन्विताः

दोहा–मैंहोंईश्वरजगतको, मोहीतेसबहोय ॥
ज्ञानवंतयहजानिकै, मोहीसेवतसोय ॥ ८ ॥

मैंही सबका उत्पत्ति कारण हूं और मुझहीसे सबकी प्रवृत्ति होती है यह जानकर विवेकी पुरुष मेरा स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥

मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयंतः परस्परम् ॥
कथयंतश्चमांनित्यंतुष्यंति च रमंति च॥९

दोहा–प्रानचित्तमोमेंधरत. बोधपरस्परदेत ॥
मेरचरितनिकहतनित, प्रीतिपरमसुखलेत ॥९

हे अर्जुन ! वे अहर्निशि मुझहीमें चित्त लगाये रहते हैं और अपने प्राणोंको मुझहीमें अर्पण किये रखते हैं, आपसमें एक दूसरेसे मेराही उपदेश करते हैं, मेरीही चर्चा करते हैं, इस प्रकार नित्य संतुष्ट रहते हैं और आनन्दमें मग्न रहते हैं ॥ ९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामिबुद्धियोगंतंयेनमामुपयांतिते ॥ १०

दोहा--सेवतमोकोतेसदा, भक्तियोगकेभाय ॥
भलीबुद्धिमोसोंलहत, रहतजुमोमेंआय १० ॥

हे अर्जुन! जो इस रीतिसे निरन्तर लगे रहते हैं और प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करते हैं उनको मैं ऐसी बुद्धि देता हूं जिससे वे मुझे प्राप्त होते हैं॥

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेनभास्वता

दोहा--तमअज्ञानहिदूरकरि, दयावंतमैंहोत ॥
करहूंतिनकेहियमें, ज्ञानदीपउद्योत ॥ ११ ॥

हे अर्जुन । ऐसेही पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आत्मभावमें स्थित जो मैं हूं सो प्रकाशमान ज्ञानरूप दीपकसे उनके अज्ञानसे उत्पन्नहुए अंधकारको नष्ट कर देता हूं ॥ ११ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

परंब्रह्मपरंधामपवित्रंपरमंभवान् ॥
पुरुषंशाश्वतंदिव्यमादिदेवमजंविभुम् १२

दोहा--पारब्रह्मपवित्रतुम, परमानंदकेधाम ॥
अविनाशीअजपुरुषहो. आदिदेवतुमनाम १२

यह सुन अर्जुन कहने लगा कि--हे श्रीकृष्ण । आप परब्रह्म हो, परम तेजोमय हो, परम पवित्र हो, नित्य पुरुष हो, दिव्य हो, आदिदेव हो, अज हो, विभु हो ॥ १२ ॥

आहुस्त्वामृषयःसर्वेदेवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितोदेवलोव्यासःस्वयंचैवब्रवीषिमे॥१३

दोहा–सबऋषिइहिंविधिकहतहैं, नारददेवलजानि
व्यासअसिततुमहूंकहत, तातेलीनैंमानि ॥१३

हे कृष्ण ! सब ऋषि तथा देवऋषि नारद, असित, देवल और व्यास ये सब आपको परम पुरुष, अज, विभु कहते हैं और आपभी स्वयं अपने ताई ऐसाही बताते हो ॥ १३ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥
नहितेभगवन्व्यक्तिंविदुर्देवानदानवाः

दोहा–जोकछुतुममोसोंकहत, मानतहौंसतभाय॥
दानव देवनजानहीं, तुमप्रगटेकोदाय ॥ १४॥

हे केशव ! जो कुछ आप कहते है और जो कुछ ये सब ऋषि गण कहते हैं. इन सबको मैं सत्यही मानता हूं क्योंकि–हे भगवन् ! देवता न दानव आपकी उत्पत्तिके कारणको जानते है ॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम ॥
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५

दोहा–आपुनिकौंआपुहिलखौ, तुमपुरुषोत्तमदेव
जीवनउपजावतहरत, पालतहोअधिदेव ॥१५

हे पुरुषोत्तम ! हे भूतेश ! (प्राणियोंके ईश्वर) हे भूतभावन ! (संपूर्ण प्राणियोंके नियन्ता) हे देवनके देव ! हे जगत्पते ! आपही

अपनेको जानते हो आपको दूसरा कोई नहीं जानता हैं ॥ १५ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेणदिव्याह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि

दोहा—निजविभूतिमोसौंकहो,प्रभुकीचितकोचाव
जोविभूतिश्रीकृष्णसा, रहीजगतमैंछाय ॥ १६

हे श्रीकृष्ण! आपकी जो जो दिव्य विभूति हैं सो संपूर्ण मेरे साम्हने कहिये,जिन विभूतियोंके द्वारा आप इन लोकोंमें व्याप्त होकर स्थितहो

कथंविद्यामहंयोगिंस्त्वांसदापरिचिंतयन्
केषुकेषुचभावेषुचिंत्योऽसिभगवन्मया ॥

दोहा—ध्यामतुमारोकरतप्रभु, जानौंकैसेतोहिं ॥
कौनपदारथमेंलखौं, सोसमुझावोमोहिं ॥१७॥

हे योगी श्रीकृष्ण! आपका निरन्तर ध्यान करता हुआ मैं आपको किस तरह जानूं ? हे भगवन् आपका ध्यान किन किन भावोंमें करना योग्य है ? ॥ १७ ॥

विस्तरेणात्मनोयोगंविभूतिंचजनार्दन ॥
भूयःकथयतृप्तिर्हिशृण्वतोनास्ति मेऽमृतम् ॥

दोहा—योगविभूतिहुआपनी, कहियेमोसोंदेव ॥
मोकोतृपतिनहोतहै, सुनतअमीरसभेव ॥१८॥

हे जनार्दन ! आपकी प्राप्तिका उपाय योगैश्वर्य और विभूति विस्तारपूर्वक मुझे सुनाइये, इस अमृतरूप आपकी वाणीके सुनते सुनते मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ १८ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

हंततेकथयिष्यामिदिव्याह्यात्मविभूतयः

प्राधान्यतःकुरुश्रेष्ठनास्त्यंतोविस्तरस्यमे

दोहा–अर्जुनतुमसोंकहतहौं, निजविभूतिविस्तारि

मुख्यजितीतिईकहत, हियकेदृगनिनिहारि ॥१९

हे अर्जुन ! मेरी जो दिव्य विभूति है, उनमें मुख्य मुख्य तुझे सुनाता हूं, क्योंकि मेरी संपूर्ण विभूतियोंके विस्तारका अन्त नहीं है. इससे प्रधान प्रधान सुनाता हूं ॥ १९ ॥

अहमात्मागुडाकेशसर्वभूताशयस्थितः ॥

अहमादिश्चमध्यंचभूतानामंतएवच ॥२०

दोहा–सबजीवनकेहीयमैं, मोहिंआतमाजानि ॥

आदिअंतअरुमध्यहौं, मोहिसबनमेंमानि ॥

हे गुडाकेश! (जितेन्द्रिय अर्जुन) संपूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें रहनेवाला मैं संपूर्ण प्राणियोंका अन्तर्यामी हूं, मैंही उनका आदि, मध्य और अवसान हूं अर्थात् सबका उत्पन्न करनेवाला, पालनेवाला और संहार करनेवाला मैंही हूं ॥ २० ॥

आदित्यानामहंविष्णुर्ज्योतिषांरविरंशुमान

मरीचिर्मरुतामस्मिनक्षत्राणामहंशशी ॥

दोहा–आदित्यनमेंविष्णुहौं, ज्योतिनमेंरविदेखि

वायुनमांझमरीचिहौं, नक्षत्रनशशिलेखि ॥२१

हे अर्जुन ! बारह आदित्योंमें विष्णुनाम आदित्य मैं हूं, प्रकाश-

मान् ज्योतियोंमें अंशुमान् सूर्य मैं हूं, उनचास मरुद्गणोंमें मरीचि-
नाम वायु मैं हूं, तारागणोंमें मैं चंद्रमा हूं ॥ २१ ॥

वेदानांसामवेदोऽस्मिदेवानामस्मिवासवः
इंद्रियाणांमनश्चास्मिभूतानामस्मिचेतना

दोहा–सामवेदहौंवेदमें. इंद्रअमरगणमांहिं ॥
जीवनमैंहौंचेतना, मनइंद्रिनकैमांहिं ॥ २२ ॥

हे अर्जुन ! वेदोंमें सामवेद मैं हूं, देवताओंमें, इन्द्र मैं हूं इंद्रियोंमें
मन मैं हूं और प्राणियोंमें चेतनाशक्ति मैं हूं ॥ २२ ॥

रुद्राणांशंकरश्चाऽस्मिवित्तेशोयक्षरक्षसाम
वसूनांपावकश्चास्मिमेरुःशिखरिणामहम्

दोहा–रुद्रनमेंशंकरजुहा. यक्षनमांहिंधनेश ॥
पावकहौंहिवसुनमें, सैलसुमेरुसुदेश ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! रुद्रोंमें शंकर मैं हू, यक्षराक्षसोंमें कुवेर मैं हूं; आठ
वसुओंमें अग्नि मैं हूं, पर्वतोंमें सुमेरु मैं हूं ॥ २३ ॥

पुरोधसांचमुख्यंमांविद्धिपार्थबृहस्पतिम्
सेनानीनामहंस्कंदःसरसामस्मिसागरः ॥

दोहा–देवपुरोहितमुख्यहौं, मोहिंवृहस्पतिमानि ॥
षणमुखसेनापतिनमें, सरमेंसागरजानि ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! पुरोहितोंमें मुख्य बृहस्पति मुझकोही जान, सेनाप-
तियोंमें स्कन्द मैं हूं, सरोवरोंमें समुद्र मैं हूं ॥ २४ ॥

महर्षींणांभृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानांजपयज्ञोऽस्मिस्थावराणांहिमालयः

दोहा–हौंजुमहर्षिमांहिभृगु, वरननमेंओंकार ॥
यज्ञनमेंजपयज्ञहौं, स्थावरहिमआधार ॥२५॥

महर्षियोंमें भृगु मैंही हूं, वाणीमें एक अक्षर ओंकार मैं हूं, यज्ञोंमे जपयज्ञ मैं हूं, स्थावरोंमें हिमालय मै हूं ॥ २५ ॥

अश्वत्थःसर्ववृक्षाणांदेवर्षींणांचनारदः ॥
गंधर्वाणांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः॥

दोहा–वृक्षनमेंपीपरजुमें, ऋषिमेंनारददेव ॥
गंधर्वनमें चित्ररथ, सिद्धिकपिलमैंभेव ॥२६॥

संपूर्ण वृक्षोंमें पीपल मै हूं, देवर्षियोंमें नारद मै हूं, गंधर्वोंमें चित्ररथ मै हूं, सिद्धोंमें कपिल मुनि मैं हूं ॥ २६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतंगजेंद्राणांनराणांचनराधिपम् २७

दोहा–अश्वनमेंउच्चैःश्रवा, गजऐरावतनाम ॥
हौंहींनृपहौंनरनमें, पौपतसवकौंकाम ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! घोडोंमें मुझे अमृतसे उत्पन्न उच्चैःश्रवा जान, हाथियोंमें ऐरावत और मनुष्योंमें राजा मेरीही विभूति है ॥ २७ ॥

आयुधानामहंवज्रंधेनूनामस्मिकामधुक्
प्रजनश्चास्मिकंदर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः

दोहा-हथियारनमेंवज्रही. कामधेनुहैगाय ॥
कामप्रजाकरमाझहौं, बासुकिसर्पनराय ॥२८॥
आयुधोंमें वज्र मैं हूं, गौओंमें कामधेनु मैं हूं, उत्पन्न करनेवाला कामदेव मैं हूं और सर्पोंमें वासुकि मैं हूं ॥ २८ ॥

अनंतश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहम्
पितृणामर्यमाचास्मियमःसंयमतामहम्

दोहा-नागनिमांहिंअनंतहौं, वरुणजुहौंजलजंतु॥
पितरनमेंहौंअर्यमा, यमहौंसंयमवंतु ॥ २९ ॥
हे अर्जुन ! नागोंमें शेषनाग मैं हूं, जलचरोंमें वरुण मैं हूं, पितरोंमें अर्यमा मैं हूं, शासन करनेवालोंमें यम मैं हूं ॥ २९ ॥

प्रल्हादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहम्
मृगाणांचमृगेंद्रोहं वैनतेयश्चपक्षिणाम् ३०

दोहा-दैत्यनमें प्रल्हादहौं, प्रेरनहारोकाल ॥
सिंहजुहौंसबमृगनमें, पंछिनमेंरिपुव्याल ॥३०
हे अर्जुन ! दैत्योंमें प्रल्हाद मैं हूं; गणना करनेवालोंमें काल मैं हूं, मृगोंमें सिंह मैं हूं और पक्षियोंमें गरुड मैं हूं ॥ ३० ॥

पवनःपवतामस्मिरामःशस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणांमकरश्चास्मिस्रोतसामस्मिजान्हवी।

दोहा-वेगवानमेंपवनहौं, शस्त्रधारिनमेंराम ॥
जलजंतुनमेंमकरहौं, नदीगंगअभिराम ॥३१॥

पवित्र करनेवालोंमें पवन मैं हूं, शस्त्रधारियोंमें राम मैं हूं, मछलियोंमें मगर मैं हूं, नदियोंम गंगा मैं हूं ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरंतश्चमध्यं चैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहम्

दोहा–सबकेआदिरुअंतहौं, मध्यमोहिकोंमान ॥
तत्वबोधवादीनमैं, हौंअध्यातमज्ञान ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! सृष्टिका आदि, मध्य और अंत मैं ही हूं विद्यायोंमें अध्यात्मविद्या मैं हूं, वादियोंमें सिद्धांत मैं हूं ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मिद्वंद्वःसामासिकस्यच
अहमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ॥

दोहा–अक्षरमाहिंअकारहौं, द्वंदसमासनजानि ॥
हौंहीअक्षयकालहौं, धातासबमैंमानि ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! अक्षरोंमें अकार मैंही हूं, समासोंमें द्वन्द्व समास मैं हूं, अक्षय काल मैं हूं चारोंओर मुखवाला सबका भरणपोषण कर्त्ता मैं हूं॥

मृत्युःसर्वहरश्चाहमुद्भवश्चभविष्यताम् ॥
कीर्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा

दोहा– सबकौंहौंहीसंहरतु, औरउपावनहार ॥
श्रीकीरतिसरस्वतिक्षमा, धृतिमतिहीनिरधार

हे अर्जुन! सबका संहारकर्त्ता,मृत्यु मैं हूं, सबका उत्पन्न करनेवाला मैं हूं, स्त्रियोंमें कीर्ति, श्री, वाणी,स्मृति,मेधा, धृति और क्षमा मैं हू ३४

बृहत्सामतथासाम्नांगायत्रींछंदसामहम् ॥
मासानांमार्गशीर्षोऽहमृतूनांकुसुमाकरः॥

दोहा–महासामहौंसाममें, गायत्रीहौंछंद ॥
मारगसिरहौंमासमें, रितुवसंतसुखकंद ॥३५॥

हे अर्जुन! सामवेदके मंत्रोंमें बृहत्साम मै हूं, छन्दोंमें गायत्री छन्द मैं हूं, मासोंमें मार्गशीर्षमास मैं हूं, ऋतुओंमें वसन्त ऋतु मैं हूं ॥३५

द्यूतंछलयतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम्
जयोस्मिव्यवसायोस्मिसत्वंसत्ववतामहम्

दोहा–छलांद्यूतबलतेजहूं, विजयिनमैंजयजानि ॥
उद्यमउद्योगीनमें, सत्वसात्विकिनमानि॥३६

छलियोंमें जूआ, तेजस्वियोंमें तेज; विजयकर्ताओंमे जय, उद्यमियोंमें व्यवसाय और सत्ववालोंमें सत्व मै हूं ॥ ३६ ॥

समीक्षा–यहां द्यूतसे अभिप्राय दिव्य नीतिसे है. अर्थात् राजधर्ममें जो राजाओं द्वारा वरती जानेवाली राज नीति है वह भी उन २ पुरुषोंके कर्मानुसार सूक्ष्मसेही हुईही जान.

वृष्णीनांवासुदेवोऽस्मिपांडवानांधनंजयः
मुनीनामप्यहंव्यासःकवीनामुशनाकविः

दोहा–यदुकुलमें मैं कृष्णहौ, पार्थपांडवनमांहि॥
मुनिनमांझहौंव्यासमुनि, गनोशुक्रकवितांहिं॥

हे अर्जुन! वृष्णिवंशियोंमे वासुदेव मैं हूं, पांडवोंमें धनंजय अर्थात्

अर्जुन मैं हूं, मुनियोंमें व्यास मैं हूं और कवियोंमें शुक्राचार्य मैं हूं॥

दंडोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीषताम्
मौनंचैवास्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहम्

दोहा–दंडवंतमेंदंडहौं, नीतिवंतकोनीति ॥
ज्ञानिनमेंहीज्ञानहौं, मौनदुरावनरीति॥ ३८ ॥

हे अर्जुन ! दंड देनेवालोंमें दंड मैं हूं; जीतनेकी इच्छा करनेवालोंमें नीति मैं हूं. गुप्त करनेवाले उपायोमे मौन मैंहूं और तत्वज्ञानियोमे ज्ञान मैंही हूं ॥ ३८ ॥

यच्चापिसर्वभूतानांबीजंतदहमर्जुन ॥
नतदस्ति विनायत्स्यान्मयाभूतंचराचरम्

दोहा–सबजीवनकोबीजहौं, अर्जुनमोकोजानि ॥
थिरचरयासंसारमें, मोबिनकछुनहिंमानि ३९

हे अर्जुन !. संपूर्ण प्राणियोंमे उत्पन्न करनेका बीज भूत कारण मैंहीहूं; चराचर प्राणियोमे ऐसा कोई नहीं है. जिसमे मैं नहीं हूं अर्थात् मैं सबमे हूं ॥ ३९ ॥

नांतोऽस्तिममदिव्यानांविभूतीनांपरंतप
एषतूद्देशतः प्रोक्तोविभूतेर्विस्तरोमया ॥

दोहा–मेरीदिव्यविभूतिको, अंत न जान्योजाय॥
यहतोथोरोसोकह्यो, मोविभूतिकेभाय ॥४०॥

हे परंतप ! मेरी दिव्य विभूतियोका अन्त नहीं है; न कोई

वर्णन कर सक्ता है और जो कुछ मैंने अपनी विभूतियोंका वर्णन किया है वह संक्षिप्त है ॥ ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वंश्रीमदूर्जितमेववा ॥
तत्तदेवावगच्छत्वंममतेजोंऽशसंभवम् ॥

दोहा–जोकछुयासंसारमें, काहूगुणअधिकाय ॥
सोसबमेरातेजहै, दीनोतोहिंबताय ॥

हे अर्जुन ! संसारमें जो जो वस्तु ऐश्वर्यवान् कान्तिमान् और श्रीमान हैं उन सबको तू मेरे तेजसे उत्पन्न हुई समझ ॥ ४१ ॥

अथवाबहुनैतेनकिंज्ञातेनतवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितोजगत ॥

दोहा–बहुतकहानोमोंकहौं, अर्जुनवानबनाय ॥
सबजगअपनेअंशते, मैंराख्योंठहराय ॥
चितइंद्रिनकेवशपरयो, जोध्यावेअनुभूति ॥
सकलईशलखिलखिये, दशमेंकहीविभूति ॥१॥
यहविभूतिप्रभुकीबिरन, विनवैआनन्दराम ॥
मोहिमहाप्रभुकीजिये, चिदानंदसुखधाम ॥२॥

अथवा हे अर्जुन ! इन सब बातोंके भिन्न भिन्न जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा; तू इतनाही जान ले कि मैंने इस सम्पूर्ण जगतको अपने एक अंशमें धारणकर रक्खा है ॥ ४२ ॥

समीक्षा–इस अध्यायमें परमात्माकी विभूतियोंका विशेष रूपसे वर्णन किया गया है- जिससे मनुष्योंको ज्ञान हो जाय कि परमात्मा

की भक्ति और उपासनासे उपरोक्त विभूतियोंमेसे भक्त और उपासक जन जिस २ विभूतिकी इच्छाकरके उसके लिये प्रयत्न करे तो उस २ विभूतिको पासक्ता है ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां विभूतियोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

समीक्षा—इस अध्यायमें परमात्माकी विभूतियोंका वर्णन किया गया है अर्थात् भक्तजनोंको यह समझाया गया है कि इस संसारमें जितने भी आश्चर्य जनक और मनोहारी पदार्थ तुम देखो उनको देखकर उनमें मोहित मत होओ, प्रत्युतः यह विचार करो कि यह सब पदार्थ सर्व शक्तिमान् परमात्माने अपनी अद्भुत सामर्थ्य द्वारा प्रकृति (माया) के परमाणुओंसे रचे हैं, अतः अनित्य हैं। बुद्धिमानोंको अनित्य पदार्थोंमें न फँसकर उसी सर्वशक्तिमान् परमात्माकी भक्तिमें ही तत्पर होना चाहिये। परमात्मा की भक्तिसे ही स्थायी और नित्य एकरस आनंद प्राप्त होसक्ता है न कि इन अनित्य पदार्थों की प्राप्तिसे। यही इस अध्यायका सारांश है।

[पृष्ठ १९६ से आगे]

[३२] देशकी हिन्दू [आर्य] सभाओं, पंचायतों और विद्वन्मंडलीयोंको चाहिये कि प्रजाकी उन्नतिके लिये समयरपर राजाओं द्वारा उत्तमरनियम प्रजाकी कुरीतियों को दूर करनेके लिये बनवायें। राजाओंकी सेवामें प्रार्थनापत्र उक्त नियमोंके बनाने और देशमें प्रचलित करनेके निमित्त भेजनेका पुरुषार्थ बराबर करते रहें। एक दिन अवश्य सफलताप्राप्त होगी। राजाओंको भी चाहिये कि प्रजामें जोर कुरीतियें देखें उनको बलपूर्वक हटाते जायँ,जैसा कि बड़ोदा महाराजने बालविवाह की कुरीति बलपूर्वक हटादी और जोधपुर महाराजने प्रजाके विवाहादि समयोंपर अतिव्यय करना हटा दिया, जिससे प्रजा बड़ी सुखी हो रही है।

[३३] हम लोगों को चाहिये कि,दुर्भिक्षके समय में भारत वर्षके सम्राट्,राजाओं और महाराजाओंसे प्रार्थना करें कि,भारतवर्षका अन्न यूरोप आदिदेशोंको,अर्थात् इस देशसे बाहर नहीं जाने पावे।अन्न बाहर चलेजाने से भारतवासी भूखों मरजातेहैं।यहां की प्रजा इतनी दरिद्र होगई हैकि पचास वर्षपहिले जहां,राजासे लेकर प्रजातक सब की वार्षिक आय मिलाकर प्रत्येक मनुष्यके पीछे ३६) छत्तीस रुपया थी, वही आय अब प्रत्येक मनुष्यके पीछे२४)चोवीस रुपया वार्षिक रहगई है।साथही यह दुर्दशा होगई कि खाद्यपदार्थ भी पहिलेसे कई गुणे महँगे होगयेहैं,जिसका फल यह हुआ कि,यहां के सातकरोड मनुष्योंको दिन में एक बारहीभोजन मिलता है और वे मनुष्य यह नहीं जानते कि, पेट भरके खाना किसको कहते हैं।उपरोक्त बातें प्रमाणोंद्वारा विद्वानों ने सिद्ध करदिखाई हैं।

[३४] गांजा, भांग, मदिरा, अहिफेन (अफीम) और अन्य२ मादक (नशीले) पदार्थों के प्रचार को कडाईके नियमों द्वारा रुकवा देना चाहिये।

[३५] स्थान२पर गोचर भूमि छोडी जानी चाहिये।राजाओंको चाहिये कि गोरक्षाके लिये पूरा२ यत्न करें, क्योंकि गौ जैसा उपकारी और पवित्र दूसरा पशु नहींहै।जैसा गुण गौके दूधमें वैद्यकशास्त्र में लिखा है,वैसा गुण किसी भी पशुके दूधमें नहीं है। वैसेही सर्वोत्तम गुण गौके घृत,दधि और तक्र [छाछ] में लिखे हैं।इसी प्रकार गोमूत्र और गोमय [गोबर] में भी बहुत गुण हैं। अधिक क्या कहें भारतवर्षकी प्रजाका जीवन घृत, दूध पर ही निर्भर है, जिस प्रकार गौ जातिका विनाश इस समय हो रहा है यदि इसी प्रकार होता रहा तो थोडे कालमें ही घृत, दूध नामको भी नहीं रहेंगे। भारतवर्षमें आजकल एक लाख गौ नित्य मारी जाती हैं; यह वध रुकना चाहिये; देशी राजाओं से प्रार्थना की जावे कि वह लोग अपने २ राज्य से गौ जातिको बाहर नहीं जाने दें।सुनाजाताहै कि नरेंद्र शिरोमणि वर्तमान बीकानेर नरेश महाराज श्रीगंगासिंहजी बहादुर ने यह प्रबन्ध अपने राज्य में कर रक्खा है।

[३६]भारतवर्ष के धनिक जमींदारों,तालुकेदारों और राजा महाराजाओं को चाहिये कि, अपनी२ भूमियोंमें अपने व्ययसे वैज्ञानिक रीति द्वारा खेती करायें। भूमिकी आय बढनेसे देश को और उनको भारी लाभ होगा.दीन और दरिद्र कृषकों की सब प्रकारसे सहायता करें, इसीमें देशका भला होसक्ता है।

[३७] स्वदेशकी बनी वस्तुओं, यथा कपडा आदिका सबको व्यवहार करना चाहिये। स्वदेशी शिल्पी लोगों और कलकारखानें वालोंको सहायता देनी चाहिये। देशी राजाओं को अपने २ राज्यों में कलकारखाने खोलने चाहियें, जिससे देशका व्यापार उन्नत होकर देश में धन और सम्पत्ति बढे। [अपूर्ण]

अथ एकादशोऽध्यायः।

॥ अर्जुन उवाच ॥-

मदनुग्रहायपरमंगुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥
यत्त्वयोक्तंवचस्तेनमोहोऽयंविगतोमम १

दोहा–मोऊपरकीन्हीदया, अध्यातम प्रगटाय ॥
वचनतुह्मारोसुनतही, मोहगयोजुनसाय ॥ १॥

भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन सुन अर्जुनने कहा कि–हे श्री-कृष्ण! आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह करके जो महागूढ यह अध्यात्मज्ञान सुनाया है, इससे मेरा सब मोह दूर होगया है ॥ १ ॥

भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया॥
त्वत्तःकमलपत्राक्षमाहात्म्यमपिचाव्ययम्

दोहा–जीवनकीउतपत्तिसुनि, औरप्रलयकीरीति
कहीजुतुमविस्तारसों, निजमहात्मकीनीति ॥

हे श्रीकृष्ण! मैंने प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयका वृत्तांत आपके मुखसे विस्तारपूर्वक सुना और आपका अक्षय माहात्म्यभी सुना ॥

एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानंपरमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामितेरूपमैश्वरंपुरुषोत्तम ॥ ३॥

दोहा–योंहीहौंज्योंकहतहौं, हरितुह्मारोभेव ॥
देख्योचाहतहौंअबै, विश्वरूपजोदेव ॥ २ ॥

हे परमेश्वर ! जैसा आपने अपना वर्णन किया आप वैसेही हैं, हे पुरुषोत्तम ! मै ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छः गुणोंसे युक्त आपके रूपका दर्शन किया चाहता हूं ॥ ३ ॥

मन्यसेयदितच्छक्यंमयाद्रष्टुमितिप्रभो ॥
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥

दोहा–देखनयोगोमाहिजो, जानतहौयदुराय ॥
अविनाशीनिजरूपतो, दीजैमोहिंदिखाय ॥४

हे कृष्ण ! जो आप यह समझतेहो कि–मैं आपका वह रूप देख सकता हूं. हे योगेश्वर ! आप मुझे अपने इस अविनाशी रूपका दर्शन दीजिये ॥ ४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोऽथसहस्रशः ॥
नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिच

दोहा–अर्जुनअबतूदेखिले, शतसहस्रममरूप ॥
बहुतभांतिहैदिव्यजो, नानाबरणअनूप ॥ ५ ॥

अर्जुनकी बात सुन भगवान् बोले–हे अर्जुन ! तू मेरे सैकडों, सहस्रों रूपोंको देख, ये मेरे रूप अनेक प्रकारके हैं, दिव्य हैं, अनेक वर्ण और अनेक आकृतियोंके हैं ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौमरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणिपश्याश्चर्याणिभारत ॥

दोहा-देखिरुद्रआदित्यवसु, अश्विनिसुतमोमांहिं
औअचरंजकेरूपजे, पहिलेदेखेनाहिं ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! (मेरे देहमें) आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार और मरुद्गणोंको देख और उन उन आश्चर्ययुक्त वार्तोको देख जो तैने पहिले कभी नहीं देखी हैं ॥ ६ ॥

इहैकस्थंजगत्कृत्स्नंपश्याद्यसचराचरम् ॥
ममदेहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥

दोहा-एकठौरममदेहिले, थिरचररहेसमाय ॥
देख्योचाहतजोकछू, सोईदेउदिखाय ॥ ७ ॥

हे गुडाकेश ! इस मेरे देहमें चराचर संपूर्ण जगत्को एकही स्थानपर इकट्ठा देखले, औरभी जिन जिन वार्तोको तू देखना चाहता है वे सबही देखले ॥ ७ ॥

नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा ॥
दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ८

दोहा-इननयनोंनहिंदेखिये,देउंदिव्यदृगतोहिं ॥
योगेश्वरसंयुक्तजो, जैसेदेखैंमोहिं ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! तू अपने नेत्रोंसे मेरे रूपको न देख सकैगा. इससे मैं तुझे दिव्य नेत्र देता हूं इनसे मेरे षड्गुणसंपन्न रूपको देख ॥ ८ ॥

॥ संजयउवाच ॥

एवमुक्त्वाततोराजन्महायोगेश्वरोहरिः ॥
दर्शयामासपार्थायपरमंरूपमैश्वरम् ॥९॥

दोहा–हेराजनयोंबोलिकै, योगेश्वरहरिराय ॥
विश्वरूपअर्जुनप्रती, अद्भुतदियोदिखाय ॥९॥
अब संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि–हे राजन् ! यह कहकर महा-योगेश्वर श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना परम ऐश्वर्य रूप दिखाया ॥ ९

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणंदिव्यानेकोद्यतायुधम्॥

दोहा–बहुआननलोचनबहुत, देखेअचरजहोत ॥
भूषितनानाभूषणनि, शस्त्रअनेकउदोत ॥ १०
उस रूपमें अनेक मुख और अनेक नेत्र है, अनेक अद्भुत अद्भुत दर्शनीय हैं, अनेक दिव्य आभूषण हैं अनेक प्रकारके दिव्य आयुध हैं ॥ १० ॥

दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयंदेवमनंतंविश्वतोमुखम् ॥ ११

दोहा–दिव्यहारदिव्यहिवसन, दिव्यसुगंधलगाय
अनंतदेवमुखजिततितै, सबअचरजकेभाय ॥
हे धृतराष्ट्र ! वह रूप दिव्य माला और दिव्य वस्त्रधारी है, अनेक प्रकारके चन्दनादि सुगंधित पदार्थोंसे अवलिप्त है वह रूप सब प्रकारसे आश्चर्योत्पादक, प्रकाशयुक्त और अन्तरहित है उसमें चारों ओर जिधर देखो उधर मुख हैं ॥ ११ ॥

दिविसूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदिभाःसदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः

दोहा–सहसकरविकाशमें, पूरिरहेसबज्योति ॥
दीपतिताप्रभुकीलखें, तऊनसमताहोति॥१२॥

जो आकाशमें सहस्र सूर्योंका प्रकाश एक साथ होजाय तौभी उस विश्वरूप भगवान् की कान्तिके समान कदाचित् ही हो सकता है अर्थात् सहस्र सूर्योंका प्रकाशभी उनकी कान्तिके समान नहीं है ॥

तत्रैकस्थंजगत्कृत्स्नंप्रविभक्तमनेकधा ॥
अपश्यद्देवदेवस्यशरीरेपांडवस्तदा ॥१३॥

दोहा–भिन्नभेदजेजगतमें, देखेसबइकठाउं ॥
देवदेवकीदेहमें, अर्जुनकितेगिनाउं ॥ १३ ॥

तब अर्जुनने उस देवदेवके शरीरमें एकही स्थानपर अनेक प्रकारसे स्थित संपूर्ण जगत देखा ॥ १३ ॥

ततःसविस्मयाविष्टोहृष्टरोमाधनंजयः ॥
प्रणम्यशिरसादेवंकृतांजलिरभाषत १४॥

दोहा–ताकोतबअचरजभयो, रोमहर्षकेदाय ॥
तादेवहिपरनामकरि, बोल्योचितकोचाय॥१४॥

तब उस विश्वरूपका दर्शन करके अर्जुनको बडा विस्मय हुआ, शरीरके रोमांच खडे होगये और वह सिर झुका हाथ जोड श्रीकृष्णसे कहने लगा ॥ १४ ॥

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ॥ ब्रह्माणमीशंकमलासन-

स्थमृषींश्चसर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५॥

दोहा–देखतहौंतवदेहमें, सबथिरचरसुर सिद्ध ॥
कमलासनऋषिईशपुनि, सबैनामसुमृद्ध ॥ १५

हे कृष्ण! मैं आपके देहमें संपूर्ण देवताओंको तथा संपूर्ण ऋषियोंको तथा संपूर्ण दिव्य रूपोंको देखता हूं ॥ १५ ॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम्॥ नांतं न मध्यंनपुनस्तवादिं पश्यामिविश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥ १६ ॥

दोहा–बहुतबाहुउदरौबहुत, मैंदेखौंबहुशीस ॥
अंतआदिमधियहनहीं, तुमअनंतजगदीस ॥

हे विश्वेश्वर! हे विश्वरूप! आपके देहमें सब जगह मुझे अनेक भुजा अनेक उदर, अनेक मुख, अनेक नेत्र और अनन्त रूप दिखाई देते हैं, आपका आदि, मध्य वा अन्त कहीं भी दिखाई नहीं देता है १६

किरीटिनंगदिनंचक्रिणंचतेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमंतम् ॥ पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम ॥१७॥

दोहा–मुकुटसीसकरचक्रगद, रूपराशिभगवान् ॥
दृगनिचौंधचितवतलगत, हौंरविअनलसमान

हे भगवन्! मुझे ऐसा दिखाई देता है कि–आप किरीट, गदा और

चक्र धारण कर रहे हैं,आप तेजःपुंज हैं,चारों ओरसे आप दीप्तिमान हैं, आपका अग्नि और सूर्यके समान ऐसा प्रकाश है कि--देखनेसे आँखें चकाचौंधमें पडती हैं,आपके अपरिमित रूप दिखाई देते हैं।

त्वमक्षरंपरमंवेदितव्यंत्वमस्यविश्वस्यपरं निधानम् ॥त्वमव्ययःशाश्वतधर्मगोप्तासनातनस्त्वंपुरुषो मतो मे ॥ १८॥

दोहा–अक्षरहौतुमहीपरम, हौसबजगतनिधान ॥
अविनाशीरक्षकधरम, उत्तमहोअनुमान॥ १॥
जान्योचाहतहैजिते, जिनकेज्ञाननयोग ॥
तुमहिंसनातनहोसदा, कहतविवेकीलोग ॥१८

हे कृष्ण! मुमुक्षुजनोंसे जानने योग्य आपही अक्षर परब्रह्म हो,इस संसारके परम आधार स्वरूप आपही हो,आपही सनातनधर्मके रक्षक विनाशरहित हो- आपही सनातन पुरुष हो; यह मेरा मत है ॥१८॥

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामित्वांदीप्तहुताशवक्त्रंस्वतेजसाविश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥

दोहा–आदिअंतमधिरहिततुम, बहुभुजरविशशिनैन
तुमरेमुखदीपतिअगनि, जगतप्रकाशतऐन ॥ १९

हे कृष्ण! आपका आदि,मध्य व अन्त कुछ नहीं है,आपका पराक्रम अनन्त है,आपकी भुजा असंख्य हैं, सूर्य और चंद्रमा आपके नेत्र हैं

प्रज्वलित अग्निके समान आपका मुख है, अपने तेजसे इस संपूर्ण संसारको आप तप्त कर रहे हैं आप ऐसे मुझको दिखाई देते हैं १९

द्यावापृथिव्योरिदमंतरंहिव्याप्तंत्वयैकेन-
दिशश्चसर्वाः॥ दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लो-
कत्रयंप्रव्यथितंमहात्मन् ॥ २० ॥

दोहा-गगनभूमिमधिसर्वदिशि, व्यापैतुमइकहैजु ॥
अद्भुतरूपसुउग्रलखि, प्रविशितलोकसबैजु ॥

हे कृष्ण ! हे महात्मन् ! आकाश और पृथ्वीके बीचमें जो यह बडाभारी अन्तरिक्ष अर्थात् पोल है इस सबमे आप अकेलेही व्याप्त होरहे हैं, संपूर्ण दिशाओंमेंभी आपही व्याप्त होरहे हैं आपके इस प्रचंड अद्भुत रूपको देखकर यह त्रिलोकी व्यथित होरही है ॥ २० ॥

अमीहित्वांसुरसंघाविशंतिकेचिद्भीताःप्रां-
जलयो गृणंति॥स्वस्तीत्युक्त्वामहर्षिसि-
द्धसंघाःस्तुवंतित्वांस्तुतिभिःपुष्कलाभिः

दोहा-पैठततोमें देवगण, विनयकरतभयमानि ॥
ऋषिअरुसिद्धसमाजहू, तेऐकरतबखानि ॥२१

हे कृष्ण ! ये देवताओंके समूह भयके मारे आपके शरण आये हैं कितनेही भयभीत होकर दूर खडे खडे हाथ जोडे हुए आपकी प्रार्थना करते हैं ये महर्षि और सिद्धोंके झुंडके झुंड स्वस्ति वचन करके अनेक प्रकारकी स्तुतिसे आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्याविश्वेऽश्विनौ
मरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसं-
घावीक्ष्यंतेत्वांविस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

दोहा–रुद्रसिद्धआदित्यवसु, अश्विनिविश्वेदेव ॥
साध्ययक्षगंधर्वसुर, मरुतनपावेभेव ॥ १ ॥
पितरउष्मपा नामजे, दैत्यविरोचनआदि ॥
एसबविस्मैपाइकै, देखततोहिअनादि ॥ २२ ॥

हे कृष्ण ! एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य अष्टवसु, साध्यनामक देवता, विश्वेदेव, दो अश्विनीकुमार, उनचास मरुद्गण, ऊष्मपा नामक पितर और गंधर्व, यक्ष, देवता तथा सिद्धोंके समूह ये सब विस्मित होकर तुम्हें देखते हैं ॥ २२ ॥

रूपंमहत्तेबहुवक्त्रनेत्रंमहाबाहो बहुबा
हूरुपादम् ॥ बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालंदृष्ट्वालो-
काःप्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

दोहा–रूपबडोबहुमुखनयन, भुजपदअरुउदरौंजु
देखिभयानकदाढबहु, विथितलोकअरुहौंजु ॥

हे कृष्ण! हे महाबाहो! आपके असंख्य मुख और नेत्र हैं, असंख्य भुजा, ऊरू और चरण हैं, आपके असंख्य उदर हैं और असंख्य दाढोंसे आपका रूप बडा कराल दिखाई देता है- इस रूपको देखकर सब लोक डर गये हैं और मैंभी डरके मारे व्याकुल हो रहा हूं ॥२३

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णंव्यात्ताननंदीप्त-
विशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वाहित्वां प्रव्यथितांतरा-
त्माधृतिंनविंदामिशमंचविष्णो ॥ २४ ॥

दोहा–पायपुहमिआकाशशिर, दीरघदृगमुखभाय ॥
ऐसेतुमकोदेखिकै, धीरजगयो पलाय ॥ २४ ॥

हे विष्णो! यह आपका देह इतना बडा है कि–आकाशको स्पर्श करता है, बडा प्रकाशमान है, अनेक वर्णोंसे युक्त है, उसमें बडा विस्तीर्ण मुख है, प्रज्वलित बडे बडे नेत्र हैं, इस रूपको देखकर मेरा अन्तरात्मा बडा व्याकुल होरहा है और किसी प्रकारसेभी धीरज और शान्ति ग्रहण नही करता है ॥ २४ ॥

दंष्ट्राकरालानिचतेमुखानिदृष्ट्वैवकालानल-
सन्निभानि ॥ दिशोनजानेनलभेचशर्मप्र-
सीददेवेशजगन्निवास ॥ २५ ॥

दोहा–कालअगनिसमदाढतुव, नादेखेभयभीनि
दिसभूलीसुखहूगयो, अबकीजैप्रभुप्रीति ॥२५

हे देवेश! हे जगन्निवास! कालानलके सदृश बडी बडी विकराल दाढवाले आपके मुखोंको देखकर मै ऐसा भयभीत होगया हूं कि मुझे दिशाओंका ज्ञान नहीं रहा है, न मुझमें शान्ति प्राप्त होती है, इससे हे भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥ २५ ॥

अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्यपुत्राःसर्वैसहैवावनि
पालसंघैः॥भीष्मोद्रोणःसूतपुत्रस्तथाऽसौ
सहास्मदीयैरपियोधमुख्यैः ॥ २६ ॥

दोहा–पूतसबै धृतराष्ट्रके, सबनृपनिनकेसंग ॥
कर्णद्रोणभीषमजिते, योधाहैंमोअंग ॥ २६ ॥

हे कृष्ण ! धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक सब पुत्र सम्पूर्ण राजाओंके समूहोंके साथ आपके मुखमें प्रवेश करते दिखाई देते हैं. भीष्म द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्ण आपके मुखमें प्रवेश कर रहे हैं और हमारेभी शिखंडी, धृष्टद्युम्नादिक बडे बडे मुख्य योधा आपके मुखमें प्रवेश करते दिखाई देते हैं ॥ २६ ॥

वक्त्राणितत्वरमाणाविशंतिदंष्ट्राकराला-
निभयानकानि ॥ केचिद्विलग्नादशनांतरे-
पुसंदृश्यंतेचूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७॥

दोहा–तुरततिहारेबदनमें, सबैपरतहैंधाय ॥
कोऊदाढनतरदले, कोउरहेलपटाय ॥ २७ ॥

ये सब आपके कराल डाढोंवाले मुखोंमें जल्दी जल्दी प्रवेश कर रहे हैं. इनमेंसे कितनोंहीके सिर चूर्ण होगये हैं और वे आपके दांतोंमें उलझ रहे हैं ॥ २७ ॥

यथानदीनांबहवोऽबुवेगाःसमुद्रमेवाभि-

मुखाद्रवंति ॥ तथातवामीनरलोकवीरा-
विशंतिवक्राण्यभिविज्वलंति ॥ २८ ॥

दोहा-ज्योंसरितावर्षाऋतुहि, परतसिंधुमेंजाय ॥
त्योंनृपतेरेवदनमें, सबैपरतहैंआय ॥ २८ ॥

हे कृष्ण! जैसे नदियोंकी अनेक शाखा समुद्रहीकी ओर दौडती हैं. वैसेही ये नरवीर तुह्मारे जाज्वल्यमान मुखोंमें शीघ्रतासे प्रवेश कररहेहैं॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशंति नाशा-
य समृद्धवेगाः ॥ तथैव नाशाय विशंति
लोकास्तवापि वक्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९

दोहा-ज्योंपतंगपरिदीपमें, लहतआपनोनास ॥
तैसेसबनृपपरतहैं, तेरे मुखकेपास ॥ २९ ॥

हे कृष्ण ! जैसे अत्यन्त वेगवती पतंग अपने नाशके लिये बडे वेगसे जलतीहुई अग्निमें घुसी चली जाती है. ऐसेही ये सब लोक अपने नाशके लिये आपके मुखमें घुसे चले जारहे हैं ॥ २९ ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रा-
न्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्य जगत्स-
मग्रं भासस्तवोग्राःप्रतपंति विष्णो ॥३०

दोहा-लीलतहौतिनकोजुलै, रसनासोंलपटाय॥
कांतिरावरीजगतको. देततापबहुभाय ॥ ३०॥

हे कृष्ण ! आप अपने प्रज्वलित मुखोंसे संपूर्ण लोकोंको चारों-ओरसे ग्रसतेहुए चाटे जाते हो अर्थात आप सब दृश्यमान् पदार्थों का भक्षण कर रहे हो, और आपकी उग्रकांति सब जगतको अपने तेजसे परिपूरित करके तप्त कर रहे हो ॥ ३० ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं नहि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ३१

दोहा–उग्ररूपतुमकौनहो, मोसोंकहियेदेव ॥
जान्योंचाहतहौंअबै, तुमचरितनकोभेव ॥३१

हे कृष्ण ! आप ऐसे उग्र रूपवाले कौन हैं ? सो कहो, मैं आपको बारंबार नमस्कार करता हूं, मैं आपकी प्रवृत्ति अर्थात् आपकी कुछभी बात नहीं जानता हूं, इससे मैं आप आदि पुरुषके विषयमें जानना चाहता हूं, हे देवश्रेष्ठ ! आप कृपा करके मुझे बतलाइये ३१

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेऽपि त्वां न भविष्यंति सर्वेयेऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः

दोहा–कालरूपव्हैहोतहौं, सबकौं मारनहार ॥
तोबिनुसबयोधानकौं, भखिजैहौंनिरधार ३२

हे अर्जुन ! मैं लोकक्षयकारी प्रवृद्ध काल हूं, मैं यहां इन लोकोंका संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूं, ये बडे बडे योधा जो सेनाओंमें

खडे हुए हैं, इनको जो तू नहीं मारेगा तौभी ये तो मरेंहींगे ॥३२॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुंक्ष्वराज्यं समृद्धम्॥मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भवसव्यसाचिन् ३३

दोहा–तातेउठिरणजीतले, लैकीरतिअरुराज ॥
मैंहनिराखेहैंनृपति, सबएतेरेकाज ॥ ३२ ॥

इससे हे, अर्जुन! तू कमरकस, खडा होजा, और शत्रुओंको जीतकर कीर्ति प्राप्तकर इस समृद्धराज्यको भोग, ये तो सब मुझसे पहिलेही मारेहुए हैं, हे सव्यसाचिन! तू तो केवल निमित्तमात्र होजा ॥३३॥

द्रोणंचभीष्मंचजयद्रथंचकर्णंतथाऽन्यानपियोधवीरान्॥ मयाहतांस्त्वंजहिमाव्यथिष्ठायुद्ध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ३४

दोहा–भीष्मद्रोणअरुजयद्रथहिं, करणआदिजेऔर
मेरेमारेमारतू, शत्रुयुद्धकठौर ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन! द्रोण, भीष्म, जयद्रथ कर्ण तथा औरभी बडे बडे शूरबीर योधा मुझसे मारेहुए हैं तू इन मेरे मारेहुओंही को मार, दुखी होनेकी कोई बात नहीं है, उठकर लड, तू रणमें अवश्य शत्रुओंको जीतैगा ॥

॥ संजय उवाच ॥

एतच्छ्रुत्वावचनंकेशवस्यकृतांजलिर्वेप-

मानःकिरीटी॥नमस्कृत्वाभूयएवाहकृष्णं
सगद्गदंभीतभीतःप्रणम्य ॥ ३५ ॥

दोहा–बचनसुनेश्रीकृष्णके, कांपीअर्जुनदेह ॥
तबप्रभुकोपदलागिकै, बोल्योबचनसनेह ॥३५

अब संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि हे राजन् ! केशवकी ऐसी ऐसी बातें सुनकर अर्जुन कांपने लगा हाथ जोड बार बार नमस्कार करता था और डरके मारे व्याकुल हो फिर नमस्कार कर गद्गद वाणीसे कृष्णसे कहने लगा ॥ ३५ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

स्थानेहृषीकेशतवप्रकीर्त्याजगत्प्रहृष्य-
त्यनुरज्यतेच ॥ रक्षांसिभीतानिदिशोद्रव-
न्तिसर्वेनमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

दोहा–सबजगकोयहजगतहै, रहैंतुमहिअनुरागि॥
सिद्धनवततोकोसदा, राक्षसजातजुभागि ॥३६

हे हृषीकेश ! आपका प्रभाव अति अद्भुत और कीर्ति अतुलनीय है इसीसे यह सब जगत् हर्षित होताहै, और आपमें अनुराग करता है राक्षस भयभीत होकर दिशाविदिशाओंमें भागे फिरते हैं और संपूर्ण सिद्धोंके समूह आपको नमस्कार करते हैं यह योग्यही है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३६ ॥

कस्माच्चतेननमेरन्महात्मन्गरीयसेब्रह्म-

णोऽप्यादिकर्त्रे ॥ अनन्तदेवेशजगन्निवास त्वमक्षरंसदसत्तत्परंयत ॥ ३७ ॥

दोहा–क्योंननवैतुमकोसबै, ब्रह्माकेकरतार ॥
जगतईशअक्षरअनँत, तुमसबतेहौपार ॥३७॥

हे महात्मन् ! हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! तुमको सब लोक नमस्कार क्यों न करें, क्योंकि आप तो ब्रह्मासेभी बडे हैं और सबके आदिकर्त्ता हैं तथा सत् और असत् के मूल कारणरूप अक्षर अर्थात् अविनाशी हैं इससे सबका आपको नमस्कार करना योग्यही है।

त्वमादिदेवःपुरुषःपुराणस्त्वमस्यविश्वस्य परंनिधानम् ॥ वेत्ताऽसि वेद्यं च परंचधा मत्वयाततंविश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

दोहा–पुरुषपुरातनआदिहौ, तुमहीजगतनिधान॥
तुमयहसबजगविस्तऱ्यो, जानतुमहीज्ञान ॥

हे कृष्ण ! आप आदिदेव और पुराणपुरुष हो, इस संपूर्ण विश्वके आपही लयस्थान हो, इस संपूर्ण विश्वके ज्ञाता आप हो, जो कुछ जानने योग्य वस्तु है सो आपही हो, परंधाम अर्थात् मोक्षस्थानभी आपही हो यह संपूर्ण विश्व आपके अनन्त रूपसे व्याप्त है ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणःशशांकःप्रजापतिस्त्वंप्र पितामहश्च ॥ नमोनमस्तेऽस्तुसहस्रकृत्वः पुनश्चभूयोऽपि नमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

दोहा–वायुप्रजापतिअग्नियम वरुणपितामहचंद ॥
बारबारसहसनि सतनि, प्रणवततोहिंमुकुंद ॥

हे कृष्ण ! वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा और ब्रह्माके पितामहभी आपही हैं इससे आपको सहस्रबार नमस्कार है और फिरभी आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोऽस्तुतेसर्वतएवसर्व ॥ अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वंसमाप्नोषिततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

दोहा–आगेतेतुमकोनवत, पाछेहूजुअनंत ॥
सर्वदिशनितुमकोनवत, अमितप्रबलभगवंत

हे सर्वेश्वर ! आपके सन्मुखसे नमस्कार है पीछेसे नमस्कार है, चारों ओरसे नमस्कार है, आप अनन्तवीर्य और अनन्त पराक्रमसे युक्त हो सबमें व्यापक हो इसीसे आप सर्व हो ॥ ४० ॥

सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेकृष्णहेयादवहेसखेति ॥ अजानता महिमानं तवेदं मयाप्रमादात्प्रणयेनवापि ॥ ४१ ॥

दोहा–मित्रजानिजोमैंकही, सोसुनियेहो देव ॥
जानोकहाजुबावरो, तवमहिमाकोभेव ॥ १ ॥
हे यादव हे कृष्ण हे, सखाकह्यौं अनजानि ॥
अथवाकह्योसनेहसों, क्षमियेसेवकमानि ॥

मैं आपको अपना सखा जानकर जो आपसे हे यादव ! हे कृष्ण! हे सखा ! यह ढिठाईसे कहा करताथा इसका यह कारण था कि मैं आपकी इस महिमाको नहीं जानता था, यह मेरा बडा प्रमाद था अथवा स्नेहके वशीभूत हो (अर्थात आपको अपना मामाका बेटा नातेदार समझकर) मैं आपसे ऐसा कहा करताथा ॥ ४१ ॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसिविहारशय्या-
सनभोजनेषु ॥ एकोऽथवाऽप्यच्युततत्स-
मक्षंतत्क्षामयेत्वा महमप्रमेयम् ॥४२॥

दोहा–भोजनशयनविहारमें,कियोअनादरभाय॥
तेजुक्षमासवकीजिये, प्रभुजूकेशौराय ॥ ४२ ॥

हे अच्युत ! खेलनेके समय, सोनेके समय, बैठनेके समय, वा भोजन करते समय एकान्तमें अथवा बहुत लोगोंके सन्मुख जो मैंने आपकी हँसी की हो और इस प्रकारकी हँसीसे आपका अनादर किया हो सो मैं आपसे क्षमा कराता हूं. आपका प्रभाव अप्रमेय है अर्थात उसका किसी प्रकार परिमाण नहीं हो सकता है ॥ ४२ ॥

पितासिलोकस्यचराचरस्यत्वमस्यपूज्य-
श्चगुरुर्गरीयान् ॥नत्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः
कुतोन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥४३॥

दोहा–पिताजुतुमसंसारके, तुमहीगुरुहो ईश ॥
तुमपटतरकोऊनहीं, अधिककोउजगदीश ॥

हे अपरमितप्रभावशालिन् ! आप इस चराचर जगतके पालनकर्ता

पिता हो, आपही पूज्य हो और महान् गुरुहो, तीनों लोकमें आपकी बराबर कोई नहीं है फिर आपसे अधिक और कैसे कोई हो सकता है॥

तस्मात्प्रणम्यप्रणिधायकायंप्रसादयेत्वा-
महमीशमीड्यम् ॥ पितेवपुत्रस्यसखेवस-
ख्युःप्रियःप्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४॥

दोहा–अस्तुतियोग्यसुईशहो,क्षमोदोषजोमोहि॥
ज्योंपितसुतकोपतिप्रियहि,मित्रमित्रकोजोहि

हे कृष्ण ! आप ईश्वर हो, आपही स्तुतिके योग्य हो ऐसे आपको मैं साष्टांग दंडवत करता हूं आप मुझपर प्रसन्न हूजिये, हे देव! आप मेरे अपराधोंको सहनकर ऐसे क्षमा कर सकते हो, जैसे पिता पुत्रके, मित्र मित्रके और पति अपनी स्त्रीके अपराधोंको सहनकर क्षमाकर देता है॥

अदृष्टपूर्वंहृषितोऽस्मिदृष्ट्वाभयेनचप्रव्य-
थितंमनोमे ॥ तदेवमेदर्शयदेवरूपंप्रसीद
देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

दोहा–पहिलोरूपदिखाइये, हौंजीऊं वाजोइ ॥
रूपनिरखयहरावरो. मोहिंहर्षभयहोइ ॥४५॥

हे कृष्ण! आपका ऐसा अद्भुत रूप पहिले कभी नहीं देखाथा इस अद्भुत रूपको देखकर मेरा मन बडा हर्षित हुआ है और भयके मारे मेरा मन व्याकुल हो रहा है इससे मुझको वही अपना पहिला रूप दिखाइये. हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥४५

किरीटिनं गदिनंचक्रहस्तमिच्छामि त्वां-
द्रष्टुमहं तथैव ॥ तेनैवरूपेणचतुर्भुजेनस-
हस्रबाहोभवविश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

दोहा-मुकुटविराजैसीसपर, गदाचक्रतुवहाथ ॥
इहिविधि मोहिदिखाइये, प्रभुहोतुमजगनाथ ॥१
चारिभुजाधरिप्रगटव्है, मोकोदरशनदेहु ॥
तवमूरतिजुअनँतहैं, मेरोवासोंनेहु ॥ ४६ ॥

हे सहस्रबाहो ! हे विश्वमूर्ते ! मैं आपका वही किरीट मुकुट युक्त गदाचक्रधारी रूप देखना चाहता हूं अतएव वही पहिलासा चतुर्भुज रूप धारण करलीजिये ॥ ४६ ॥

समीक्षा-यहां चतुर्भुजरूपसे यह अभिप्राय है कि आप धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थोंको स्वयं रखते हुये, भक्तजनोंको उनकी प्राप्तिका मार्ग बताकर उनकी प्राप्तिमें सहायिक बन सक्ते हो.

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मयाप्रसन्नेनतवार्जुनेदंरूपंपरंदर्शितमात्म
योगात ॥ तेजोमयंविश्वमनन्तमाद्यंयन्मे-
त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

दोहा-तोहिंदिखायोरूपमैं, अतिप्रसन्नचितहोय ॥
आदिअंतसोंतेजमय, देखिसकैनहिंकोय ॥४७

यह बात सुनकर भगवान् बोले-हे अर्जुन ! मेरा यह तेजोमय,

विश्वरूप, अनन्त और आद्य परमरूप है, यह तेरे सिवाय अबतक किसीनेभी नहीं देखा है, तुझपर अत्यन्त प्रसन्न होकर आत्मयोगसे तुझे दिखाया है (इसे देखकर तू क्यों डरता है ?)

नवेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्नचक्रियाभिर्नत-
पोभिरुग्रैः ॥ एवंरूपःशक्यअहंनृलोकेद्र-
ष्टुंत्वदन्येनकुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

दोहा—वेदयज्ञअध्ययनतप, क्रियाकरतपुनिदान ॥
ऐसेमेरेरूपको, तो बिनुलखै न आन ॥ ४८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरे इस रूपको तेरे सिवाय कोई वेदाध्ययन, यज्ञसाधन, दान, अग्निहोत्रादिक कर्म, वा उग्र तप करके देखना चाहे, तो नहीं देखसकता है ॥ ४८ ॥

मातेव्यथामाचविमूढभावोदृष्ट्वारूपंघोर-
मीदृङ्ममेदम् ॥ व्यपेतभीःप्रीतमनाःपु-
नस्त्वंतदेवमेरूपमिदंप्रपश्य ॥ ४९ ॥

दोहा—रूपभयानकदेखिकै,तू जनि हियहि डराहि
अबभयकोतूदूरिकरि, मेरेरूपहिचाहि ॥ १ ॥
घोररूपदेखौविथा, पावैजनिपुनिमोय ॥
लखिपहिलोईरूपयह,परसननिरभयहोय॥४९

हे अर्जुन ! मेरे इस घोर रूपको देखकर तू क्यों व्यथित होता है. व्याकुल मत हो और अपनी मूढताको छोडदे- निडर होकर प्रसन्न चित्तसे मेरे इस पहिले रूपको फिर देख ॥ ४९ ॥

॥ संजय उवाच ॥

इत्यर्जुनंवासुदेवस्तथोक्त्वास्वकंरूपंदर्शयामासभूयः ॥ आश्वासयामासचभीतमेनंभुत्वापुनःसौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

दोहा-अर्जुनसोंऐसेकह्यो, पहिलोवपुप्रगटाय ॥
समाधानबहुविधिकियो, भयतेलियोबचाय ॥

अब संजय कहते हैं कि-हे धृतराष्ट्र! श्रीकृष्णने अर्जुनसे यह कह अपना पहिला चतुर्भुज रूप फिर दिखाया और उस महात्माने अपना पहिला सा शान्तरूप फिर धारण कर डरे हुए अर्जुनका आश्वासन किया ॥ ५० ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

दृष्ट्वेदंमानुषंरूपंतवसौम्यं जनार्दन ॥
इदानीमस्मिसंवृत्तःसचेताःप्रकृतिंगतः ॥

दोहा-रूपअनूपमतुमधर्‍यो, तारूपहिकोदेखि ॥
प्रकृतिलहीमैंआपुनी, भयोसुचेतविशेषि॥५१

तब अर्जुन कहने लगा कि-हे जनार्दन! आपका यह शांतिमय मनुष्य रूप देखकर अब मैं सावधान होगया हूं और मेरा जी ठिकाने आगया है, सब भय जाता रहा है ॥ ५१ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

सुदुर्दर्शमिदंरूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥
देवाअप्यस्यरूपस्यानित्यंदर्शनकाङ्क्षिणः ५२

दोहा—देख्योपरतनरूपयह, जो देख्यो तैंमित्त ॥
तास्वरूपकोदेवता, देख्यो चाहत नित्त ॥५२॥

भगवान् बोले—हे अर्जुन ! जो मेरा अत्यन्त दुर्दर्श रूप तैंने देखा है इस रूपको देखनेको देवताभी सदा तरसते रहते हैं ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्नतपसा न दानेन नचेज्यया ॥
शक्यएवंविधोद्रष्टुंदृष्टवानसिमांयथा ॥

दोहा—दानयज्ञतपविधिकिये, मोहिनदेखैकोय ॥
विनश्रमपारथतूअबै, मोकोरह्यो जु जोय॥५३

हे अर्जुन ! जैसा मेरा रूप तुमने देखा है ऐसे मेरे रूपको कोई वेदाध्ययन, तपस्या, दान वा यज्ञादि कर्मद्वारा नहीं देख सकता है॥५३

भक्त्यात्वनन्ययाशक्यअहमेवंविधोऽर्जुन
ज्ञातुंद्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४

दोहा—भक्तिअनन्यजुजोकरै. सोदेखैयाभाय ॥
नीकेजानेमोहिसो, मोमेंरहै समाय ॥ ५४ ॥

हे अर्जुन ! हे परंतप ! मेरा जो ऐसा विश्वरूप है इसको मनुष्य अनन्यभक्तिद्वारा जान सकते हैं वा देख सकते हैं और तत्त्वज्ञान-:द्वारा इसमें लीन हो सकते हैं ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तःसङ्गवर्जितः॥
निर्वैरःसर्वभूतेषुयःसमामेतिपाण्डव ॥५५

दोहा—मोनिमित्तकर्मनिकरै, सजैभक्तिताजिऔर॥

वैरनकाहूसोंकरे, मोमें लहै सुठौर ॥ ५५ ॥
वेदयज्ञतपकोटितें, कबहुन देख्योजाय ॥
विश्वरूपभगवानसो, भक्तहिंदियोदिखाय ॥१॥
एकादशअध्यायमें, विश्वरूपकोभेव ॥
कह्योकृष्णसमुझाईकै, लखिअर्जुनकीसेव ॥२॥
विश्वरूपनीकेवरनि, इहिविधिआनँदराम ॥
पायोप्रभुपूरनपरम, उरमेंधरिघनश्याम ॥३॥

हे अर्जुन ! जो कोई मनुष्य मेरीही प्रीतिके लिये लौकिक वा वैदिक कर्म करते है; मुझीको अपना पुरुषार्थ मानते हैं, मुझीमें भक्ति रखते है; सब सांसारिक संगोसे मुख मोड चुके हैं; सम्पूर्ण प्राणिमात्रसे वैर छोड प्रीति रखते हैं, वेही मुझको प्राप्त हो सकते हैं॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

समीक्षा--इस अध्यायमें अर्जुन को विश्वदर्शन करानेका वर्णन है। विश्वदर्शन के ज्ञान से अर्जुनको यह पूर्ण विश्वास होगया कि कठिन से कठिन कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो परमात्माकी शक्ति से परे हो अतः परमकल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्योंको परमात्माके अनन्य भक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये। यही इस अध्यायका सारांश है।

[पृष्ठ २१२ से आगे]

[१८] हमारे देश में यह बडी कुप्रथा पडगई है कि संतान नहीं होनेपर सम्पत्ति एक नवयुवक को दत्तक पुत्र बनाकर दे जाते हैं और प्रायः इस बात

कोई भी ध्यान नहीं रक्खाजाता कि वह नवयुवक धर्मात्मा, देशभक्त और पूर्ण विद्वान् हो सकेगा या नहीं। इसका भयंकर परिणाम बहुत जगह तो यह देखने में आता है कि, वह नवयुवक उस सम्पत्तिको नष्ट भ्रष्ट कर देताहै और अपनेको तथा अपने कुटुम्बवालोंको कलंकित बनादेता है.इस लिये हमको चाहिये कि,यदि अपने कुटुम्बमें कोई योग्य और धर्मात्मा पुरुष अपना भाई या उसकी संतानमेंसे हो, तो सम्पत्ति का कुछ भाग उस को देकर शेष सम्पत्ति किसी उत्तम जातीय संस्था में लगा दें।

एकही मनुष्यको अपनी सम्पत्ति देनेकी जगह किसी जातीय संस्थाके एक से अधिक मनुष्यों को सम्पति सौंपकर जाना अधिक उत्तम और श्रेष्ठ कार्य है।

हम लोगों को यहभी चाहिये कि, अपने २ पुण्य सम्बन्धी कामों को मिलकर विचार के साथ करें। किसी एक सभा द्वारा यह रुपया व्यय किया जायगा तो बहुत उपयोगी कामोंमें लग सकेगा.

यह ध्यान रहे कि मनुष्यकी दशा सदा एकसी नहीं बनी रहती है; आज जो धनिक है कल दैवयोगसे वही निर्धन होसक्ता है।अतःहमको चाहिये कि अपनी उत्तम दशामें ही अपना बहुतसा रुपया जातीय संस्थाओंमें लगादें, इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि हमारी हीन दशामें हमारी सन्तानोंको इन्हीं जातीय संस्थाओं द्वारा ज्ञान और विद्या प्राप्तिमें पूर्ण सहायता मिलसकेगी जिससे वह पुनः अपनी पूर्व उत्तम दशाको प्राप्त करलेंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन जातीय संस्थाओंको रुपये की सहायता देना एक प्रकारका अपना ही स्वार्थ है।

[३९] प्राचीन मंदिरोंका जीर्णोद्धार होता रहना चाहिये,चाहे वह किसीके बनाये हुए हों और नये मंदिर बनाने वालोंको चाहिये कि अनेक देवोंके नाम से मंदिर न बनवाकर श्रीविष्णु भगवान्‌के अवतारों [श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण महाराज आदि] और शिव तथा देवीके नामसे बनवावें। छोटे२ देवताओं की मूर्त्तियां इन्हीं प्रधान देवोंकी मूर्त्तियोंके साथ रहें यथा रामचंद्रजीके मंदिरमें हनुमानजीकी प्रतिमा और शिवजीके मंदिर में श्रीगणेशजी की और देवीके मंदिरमें भैरवकी प्रतिमा रहे. स्मरण रखना चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु,शिव,देवी यह सब एक ही परमेश्वर के अनंत नाम हैं, कोई उसको देवी के नाम से माता करके पूजता है और कोई विष्णु,शिवादि के नामसे पिता करके पूजता है; इस लिये एक परमेश्वर को छोड़ कर अन्य क्षुद्रदेवोंके नाम से मंदिर न करावे. गीतामेंलिखा है:—

श्लोक—अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसां। देवान् देवयजो यांति मद्भक्तायांति मामपि ॥ गी. अ. ७ श्लो० २३ ॥

(अर्थ) देवता आदिको जो पूजने वाले हैं वह अल्प बुद्धि वाले मनुष्य हैं, क्योंकि उनकी भक्ति से प्राप्त फल अन्तवाला है। देवताओंको पूजनेवाले दयताओंको और मेरेभक्त मुझको प्राप्त होते हैं।

जब हिन्दू [आर्य] जाति के क्षुद्र देवताओं का पूजना इतना तुच्छ कहा है तो मुसल्मानों के पीर पैगंबरों को तो भूलकर भी न पूजे, क्योंकि गीता ही में लिखा है–

श्लोक–यांति देवव्रता देवान् पितृन्यांति पितृव्रताः । भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपिमाम् ॥ गी. अ. ९ श्लो०२५ ॥

अर्थ–देवताओं को पूजने वाले देव होते हैं पितरोंका ध्यान करने वाले पितर और भूत पिशाचों को पूजने वाले मरकर भूत पिशाच; अतः पीर पैगबरों को पूजने वाले मरकर "यवन प्रेत" होंगे इसीप्रकार मुसल्मान, ईसाईमत के धर्म और व्यवहारों को हिन्दू (आर्य) लोग न मानें जैसा कि मोहर्रम पर ताजियोंको पूजना या उनको अपने व्यय से बनवाना इत्यादि

[अपूर्ण]



अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

एवंसततयुक्तायेभक्तास्त्वांपर्युपासते ॥
येचाप्यक्षरमव्यक्तंतेषांकेयोगवित्तमाः॥ १

दोहा–जेसेवततुमकोसदा, करिकर्मनकेसाज ॥
अक्षरब्रह्महिंजेभजति, बडोकौनकहिराज ॥१॥

यह सुन अर्जुन पूंछने लगे कि–हे भगवन् जो निरन्तर भक्तिमें लयलीन होकर सदा आपके सगुण विश्वरूपकी उपासना करते है वे उत्तम है ? अथवा जो आपको अक्षर अविनाशी अव्यक्त मानकर आपकी उपासना करते हैं वे उत्तम है ? इन दोनोंमें कौन उत्तम हैं॥१॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मय्यावेश्यमनोयेमांनित्ययुक्ताउपासते॥
श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्ततमामताः ॥२

दोहा–जोमोमेंमनराखिकै, सेवतसेवकभाय ॥
बहुश्रद्धासोंजोभजत, सोसबतेअधिकाय ॥२॥

श्रीकृष्ण बोले–हे अर्जुन ! जो निरन्तर भक्तियोगसे युक्त होकर केवल मुझही में मन लगा कर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करते है वेही मुझको श्रेष्ठ मालूम होते हैं ॥ २ ॥

येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिंत्यंचकूटस्थमचलंध्रुवम् ॥३॥

दोहा–जोध्यावतहैंअक्षरहिं; जोनहिंप्रगटस्वरूप॥
व्यापीमायातेपरे, अचलअचिंत्यअरूप॥ ३॥

जो मुझे, अक्षर (अविनाशी), अनिर्देश्य (जो कहनेमें न आवे) अव्यक्त (इन्द्रियोंसे अगोचर), सर्वत्रग (सर्वत्रविद्यमान), अचिन्त्य (जो ध्यानमें न आवे), कूटस्थ (मायाप्रपंचका आधारस्वरूप), अचल (व्यापाररहित) और ध्रुव (नित्य और स्थिर) जानकर उपासना करते हैं॥

संनियम्येंद्रियग्रामंसर्वत्रसमबुद्धयः॥
तेप्राप्नुवंतिमामेवसर्वभूहितेरताः॥ ४॥

दोहा–सबइंद्रिनकोरोकिकै, सबकोलखैसमान॥
सबजीवनकोहितकरत, मोहिमिलैकरज्ञान॥४

हे अर्जुन! अपने सब इन्द्रियसमूहोंको वशीभूत करके संपूर्ण प्राणियोंके हितमें रहनेवाले और सबको समान बुद्धिसे देखनेवाले जो मेरे ऊपर कहेहुए रूपकी उपासना करते हैं वेही मुझे प्राप्त होते हैं॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्॥
अव्यक्ताहिगतिर्दुःखंदेहवद्भिरवाप्यते॥५

दोहा–तिन्हैंक्लेशबहुहोतहै, ब्रह्मलगायोचित्त॥
रूपरेखजाकेनसो, दुखसोंलहियतमित्त॥ ५॥

हे अर्जुन! जिनका चित्त मेरे अव्यक्तरूपमें आसक्त है. उनको क्लेश बहुत होता है क्योंकि देहधारियोंको अव्यक्तकी उपासना करना महान् कष्टकारक है॥ ५॥

येतुसर्वाणिकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्पराः॥
अनन्येनैवयोगेनमांध्यायंतउपासते ॥६॥

दोहा–जेसबकर्मनिकरतहैं, अर्पतमोकोजानि ॥
ध्यावतकेवलभक्तिसों, बहुउपासनाठानि ॥६॥

हे अर्जुन ! जो मेरे भक्त हैं, वह मुझमें तत्पर होकर संपूर्ण कर्मोंको मेरे निमित्त अर्पण करते हैं और अनन्य योगद्वारा ध्यान करतेहुए मेरा स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥

तेषामहंसमुद्धर्तामृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामिनचिरात्पार्थमय्यावेशितचेतसाम्

दोहा–मृत्युसहितभवउदधिते, ताकोकरतउधार॥
मोमेंचितराख्योजुउन, बहुभाइननिरधार ॥७॥

हे अर्जुन ! जो केवल मुझहीमें मन लगाकर मेरी उपासना करते हैं उनको मैं शीघ्रही इस मृत्युरूप संसारसागरसे बचा लेताहूं ॥ ७ ॥

मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिंनिवेशय ॥
निवसिष्यसिमय्येवअतऊर्ध्वंनसंशयः ॥८

दोहा–तातेअर्जुनबुद्धिमन, मोहीमनतूंराखि ॥
याआगेमोदेहमें, वसिहैंयहअभिलाषि ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! इससे तू अपना मन मुझमें लगा दे, अपनी बुद्धि मुझहीमें सन्निवेशितकर, जब तू अपना मन और बुद्धि मुझमें लगा देगा तब तू निश्चय अनन्त कालतक मुझहीमें निवास करेगा ॥८॥

अथचित्तंसमाधातुंनशक्नोषिमयिस्थिरम्।
अभ्यासयोगेनततोमामिच्छाप्तुंधनंजय ॥

दोहा—जोतूंमोमेंनहिंसकत, चितअपनोठहराय ॥
करअभ्यासमोमिलनको,मोहिनिरंतरध्याय॥

हे धनंजय ! जो तुम अपने चित्त स्थिरताके साथ मुझमें नहीं लगा सक्ते हौ तो इस चंचल चितको विषयोंसे वारवार रोककर अभ्यासद्वारा मेरी प्राप्तिकी इच्छा करते रहौ ॥ ९ ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसिमत्कर्मपरमोभव॥
मदर्थमपिकर्माणिकुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि

दोहा—जोअभ्यासनकरिमकै, कर्मसमर्प्योंमोहिं॥
मेरेकर्मनिकरनहूं, सिद्धिहोइगीतोहिं ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! जो तू अभ्यास करनेमेंभी समर्थ न हो तो मेरी प्रसन्नताके कर्मोंको कर, मेरी प्रसन्नताके कर्मोंको करनेसेभी तुझे सिद्धि प्राप्त होजायगी ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोसिकर्तुमद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागंततःकुरुयतात्मवान् ॥

दोहा—यहैनजोतूकीरसक, मोसरनहिंअनुराग ॥
सबैकर्मकेफलनको, अर्जुनदेतूत्याग ॥ ११ ॥

जो तू यहभी न करसकै तो अपनी इन्द्रियोंको वशीभूतकर एक मात्र मेरा आश्रय लेकर संपूर्ण कर्मोंके फलकी वासनाको त्याग दे ॥

श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानंविशिष्यते
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरं ॥

दोहा—ज्ञानभलोअभ्यासते, तातेध्यानविशेखि ॥
फलत्यागेतातेभलो, तातेशांतहिलेखि ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठहै, ज्ञानसे ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ है, कर्मफलके त्याग करनेपर शीघ्रही चित्तको शान्ति मिलजाती है ॥ १२ ॥

अद्वेष्टासर्वभूतानांमैत्रःकरुणएवच ॥
निर्ममोनिरहंकारःसमदुःखसुखःक्षमी ॥

दोहा—द्वेषनकाहूसोंकरै. मित्रभाइकरुनाजु ॥
अहंकारममतातजै,दुखसुखसमक्षमताजु॥१३

हे अर्जुन ! जो प्राणिमात्रसे द्वेष नही रखते हैं, सबसे मैत्रीभाव रखते हैं सबपर करुणा करते हैं, जो समता और अहंकार रहित हैं जो सुखको समान जानते हैं उन पर मैं शीघ्र कृपा करता हूं ॥ १३

संतुष्टःसततंयोगीयतात्माद्दढनिश्चयः ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तःसमेप्रियः ॥

दोहा--सदारहैसंतोषसों, मनराखैनिजहाथ ॥
प्राणबुद्धिमोमेंधरै, वहप्यारोमोसाथ ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य जितना मिलजाय उसीपर संतोष करता है, निरन्तर योगमें लीन रहता है, अपने आत्माको यम नियमद्वारा वशीभूत रखता है,जो मेरे विषय दृढ निश्चय रखते हैं, जो मन और

बुद्धिको मुझहीमें लगा देते हैं, ऐसे मेरे भक्तजन मुझे प्यारे लगते हैं॥

यस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचयः

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयःसचमेप्रियः॥१५

दोहा–वहकाहूसोंनहिंडरै, भयऔरहि नहिंदेय॥
हर्षक्रोधदोऊतजै, सो मोको हरिलेय॥
भयउद्वेगहीं तजैसब, कहूंमानिनहिंलेत॥
जोऐसो मो भक्तहै, तासोंमेरोहेत॥ १५॥

जिससे कोई प्राणी उद्वेग वा त्रास नहीं पाता है और जो स्वयं किसी प्राणीसे उद्वेग वा त्रास नहीं पाता है, जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेगसे रहित है वह मेरा अत्यन्त प्यारा है॥ १५॥

अनपेक्षःशुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः॥

सर्वारंभपरित्यागीयोमद्भक्तःसमेप्रियः॥

दोहा–चाहनकाहूकीकरै, रहै पुनीतसुदास॥
सबआरंभनकोतजै, रहैजुमेरे पास॥ १६॥

हे अर्जुन! जो मेरा भक्त किसी वस्तुकी चाहना नहीं करता है, जो अपने मन, वचन और कर्मसे पवित्र रहता है, जो चतुर है, जो शत्रु मित्रसे रहित है, जिसको किसी प्रकारकी मानसिक व्यथा नहीं है, जिसने सब प्रकार के उद्यम त्याग दिये हैं वही मुझे अत्यन्त प्रिय है

योनहृष्यतिनद्वेष्टिनशोचतिनकांक्षति॥

शुभाशुभपरित्यागीभक्तिमान्यःसमेप्रियः

दोहा–प्रियपायेहरषैनहीं, अप्रियलहैनदुःख ॥
सोचकांक्षानहिंकरै, तजिशुभअशुभविमुक्ख॥
ऐसोहैजोपुरुष, भक्तिवंत जो होय ॥
अर्जुनमेरेअधिकवह, सुप्रियताकोजोय ॥१७॥

हे अर्जुन ! जो प्रिय वस्तुको पाकर प्रसन्न नहीं होता है, अप्रिय वस्तुसे द्वेष नहीं करता है, जो इष्ट वस्तुको नष्ट होनेपर शोच नहीं करता है, अनमिलकी चाह नहीं करता है, शुभ अशुभ का परित्याग कर देता है वही भक्त मेरा प्रिय है ॥ १७ ॥

समःशत्रौचमित्रेचतथामानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषुसमःसंगविवर्जितः ॥

दोहा–शत्रुमित्रको समलखै, सहैमानअपमान ॥
शीतउष्णसुखदुखसहै, संगकरैनहिंआन ॥१८

हे अर्जुन। जो शत्रु मित्रको समान जानता है जो मान अपमानको तुल्य समझता है, जो सर्दी, गर्मी तथा सुख दुखमें समभावसे रहता है और किसीमें आसक्त नहीं होता है वही मुझे प्रिय है ॥ १८ ॥

तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनीसंतुष्टोयेनकेनचित्
अनिकेतःस्थिरमतिर्भक्तिमान्मेप्रियोनरः

दोहा–स्तुतिनिंदाएकसी, गहैमौनसंतोष ॥
गृह न करै थिरमतिरहै, लहै भक्तिसोंमोष॥१९

हे अर्जुन ! जो निन्दा स्तुतिको समान जानता है, थोडा बोलता है, जो कुछ मिलजाय उसीमें संतुष्ट रहता है, जो किसी एक जगहमें

घर बसकर नहीं रहता है जिसकी बुद्धि चलायमान नहीं है वही भक्तिमान पुरुष मेरा प्रिय है ॥ १९ ॥

येतु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ॥ श्रद्दधानामत्परमा भक्तास्तेऽतीवमेप्रियाः

दोहा–धर्मामृतजोमैंकह्यो, ताहिजुसेवैकोय ॥
श्रद्धायुतमेरोभगत, मोहिसुप्यारोहोय ॥२०॥
दुःखरूप अव्यक्तगति, औरबिघनबहुमान ॥
तबैबारहेंध्यायमें, भक्तिकहीभगवान ॥ १ ॥
निर्गुनसगुनउपासना, इनमें कान विशेखि ॥
वरनीआनंदरामयह, अधिकभक्तिअवरेखि॥२

हे अर्जुन ! जो कोई श्रद्धापूर्वक मेरे परम भक्त इस यथोक्त धर्मामृतरूप भक्तियोगकी उपासना करते है वेही मुझे अत्यंत प्रिय हैं २०

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां भक्तियोगोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समीक्षा–परमात्माके जो भक्त होते हैं उनके क्या लक्षण होते हैं. यह सब विषय इस बारहवें अध्यायमें वर्णन किया गया है और इस अध्यायमें सगुण और निर्गुण उपासनाकाभी भेद दिखाया गया है. सगुण उपासना करने वालेको लौकिक सुखोंके साधन धन, सम्पत्ति आदि मिलते हैं और निर्गुण उपासना करने वालोंको सर्व श्रेष्ठ मुक्ति फलही मिलता है इसलिये निर्गुण उपासना बड़ा कठिन और दुस्साध्य है, क्योंकि धनसम्पत्तिको लात मारने वाले विरलेही भक्त होसक्ते हैं ।

[पृष्ठ २३८ से आगे]

[४०] मंदिरों में जो आय होतीहै, वह अच्छे कामों में लगाई जाय । यथा-विद्यालय, महाविद्यालय आदि उत्तम संस्थाओंका खोलना और साथही विद्वानों को पुरस्कार दिलाना, जिससे वह उत्साह पूर्वक नई २ विद्याओंकी खोज करते रहें; जैसा कि अमेरिका और यूरोप देशोंके विद्वानकर रहे हैं.कुरीतिखंडनपर मंदिरोंमें विद्वानों के व्याख्यान होने चाहियें और गीता आदि धर्मग्रंथोंकी कथायें कराई जायँ । ऐसा प्रबंध भी किया जाय कि पुजारी और महंतलोग मंदिरोंके द्रव्य को अपने निजके कामों में न लगा सकें । दुष्ट पुजारी और महंतोंको मंदिरोंमें से निकलवा देना चाहिये । मंदिरों की आयव्ययका लेखापडताल पंचायती के लोगों के हाथ में रहना चाहिये, क्योंकि मंदिरोंमें द्रव्य देनेवाले मनुष्यों का यह अभिप्राय नहीं होता कि-उनकी दी हुई संपत्तियां पुजारी गुसाईं और महंत लोगों के भोग में आयें । दूसरी बात यह भी है कि महन्तो, पुजारियों और गुसाईं लोगोंके पास रुपया रहना उनकी आत्माके लियेभी हानिकारक है;देशके लिये तो प्रत्यक्ष हैही है ।

[४१]भारतवर्ष के राजाओं को और प्रजाके प्रतिनिधियोंको चाहिये कि मंदिरों के पुजारी और महंतोंके पास जो अगणित द्रव्य पडाहै उसको प्रजाके उपयोगी२और उत्तम२कामोंमें लगाने का उपाय करें । ठाकुरजी को समय२पर,भोगलगाना, जगाना सुलाना, रोगी बनाकर औषधि देना और वस्त्र आभूषणादि पहिराना आदि कामों पर जो निरर्थक अगणित रुपया लगाया जाता है वह सर्वथा रोक देना चाहिये।परमात्मा सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है और भक्तिसे प्रसन्न होनेवाला है न कि वस्त्रादिपर व्यय करनेसे । भक्तिपूर्वक जल,पुष्प,धूपादि चढाकर हाथ जोडने और दंडवत प्रणाम करने से जितना वह प्रसन्न होताहै उतना द्रव्य नष्ट करके आभूषणादि लेकर प्रसन्न नहीं होता । आभूषणादि बहुमूल्य वस्तुओं से तो पूजारी और महंत लोगों को प्रसन्न करना है न कि परमात्मा को ।

मंदिर भी एक जातीय संस्था है न कि-पूजारी लोगों की हाट [दुकान]; मूर्तियों के लिये वस्त्राभूषण बाहर के न रहें, केवल मूर्तियों के साथ ही खुदे हुए और रंग दिये हुए रहें, परमेश्वर भक्ति प्रिय है वस्त्र आभूषण प्रिय नहीं । यदि सुवर्ण रत्नादि और आभूषण हमारे मंदिरों में नहीं होते तो महमूदगजनवी द्वारा हमारे मंदिरोंकी लूट और उनका निरादर नहीं होता और आज कल भी मंदिरों में चोरों का भय बनाही रहता है, इसलिये इन के आभूषण उसी वस्तु के खुदे रहने चाहियें जिस वस्तु की वह मूर्ति हो, यथा-काष्ठ, पाषाण, धातु आदि ।

ऊपर से वस्त्राभूषण पहिनाना व्यर्थ है, क्योंकि उसमें चोरों का भय रहताहै और निरर्थक व्यय भी होता है ॥

[४२] विधर्मी लोग अर्थात्–मुसलमान, ईसाई लोग यदि हमारे देवालयोंमें प्रेम से आजायँ तो उनको दर्शन करनेसे न रोका जाय क्योंकि जिन मूर्तियोंको हमने परमेश्वर के अवतारों का चिन्ह मान रक्सा है उनको किसीके दर्शन से अपवित्र का होजाना मानना विद्वानों की दृष्टिमें कृपणता और मूर्खता का चिन्ह है ।

जैसाकि प्रोफेसर डयूसन [देवसेन] "मेरी भारतवर्षयात्रा सम्बन्धी स्मरणीय बातें" नामकी पुस्तकके पृष्ठ १४६ में लिखतेहैं किः–

" हम रामके बडे मन्दिरके समीप पहुंचे । मैंने अन्दर जाना चाहा, परन्तु मुझे बडी असभ्यतासे अन्दर जानेसे रोकदिया । मैंने संस्कृतभाषामें उनको (पूजारीलोगोंको) कहा कि "मैंने रामायणका अभ्यास किया है; यद्यपि मैं भारतवासी नहीं, तथापि मैं बहुत अधिक मनुष्योंकी अपेक्षा वीर रामके प्रति अपनी आदरपूर्वक भक्ति प्रगटकरनेका अधिक अधिकार रखताहूं" । मेरा यह सब समझाना निष्फल हुआ स्यात् इसका कारण यह था, कि वह संस्कृत भाषामें मेरा कथन नहीं समझ सके । अन्तमें मैं क्रुद्ध होगया और उनके विरोधमें बहुतसी बातें कहीं; अन्त को उन आतिथ्यसत्कार रहित मनुष्योंको "क्रुद्धोस्मि"(मैं क्रुद्ध हूं)कहता हुआ लौट आया ।

समीक्षा–पाठक विचारसक्ते हैं क्या यह आश्चर्य और शोककी बात नहीं है कि एक विदेशी सभ्य विद्वान दूरसे कष्ट उठाकर भक्तिपूर्वक हमारे मन्दिरमें आवे और उसको मूर्तिके दर्शन कराना तो दूररहा मन्दिरकी देहलीके अन्दरतक नहीं घुसनेदें साथ ही विचित्रता यह कि अधिकांश मन्दिरोंमें उत्सवोंके अवसर पर यवन भडवे और यावनी वेश्या गाना बजाना करने को मूर्तिके सामने बैठे या खडे रहसकें ।

और इससे अधिक लज्जाकी बात क्याहोसक्तीहै कि एक विदेशी पुरुष जो संस्कृत को जानते हुए रामायण का ज्ञाता होकर श्रीरामचन्द्रजी के सच्चे गुणोंका भक्त होकर अपने हृदय का भाव संस्कृत में प्रगट करे और पूजारीजीमहाराज, जिन्होंने वेद और परमेश्वरके अवतारों की मूर्तियोंको अपना कहनेका ठेका ले रक्खाथा। संस्कृत भाषा में होनेके कारण, उस भावको समझेही नहीं । बलिहारी है. हमारी इस हीन दशा पर और इस अविद्या पर ।

[४३] वर्तमान समयके तीर्थस्थानोंको सुधारनेकी बडी आवश्यकता है । तीर्थस्थानोंपर लोग जाते तो हैं शांति और ज्ञान प्राप्ति करने के लिये; परन्तु शोकहै कि शांतिके स्थानमें मूर्ख पंडों, साक्षियों, और भिखारियोंसे पीछा छुटाना कठिन हो जाता है. गैया आदि तीर्थस्थानों पर कर्मकाण्ड करानेका ठेका जो पंडोंने अपने हाथमें ले रक्खा है वह सर्वथा धर्मशास्त्र और युक्ति विरुद्ध है।जो विद्वान और धार्मिक ब्राह्मण हों वही कर्मकाण्ड कराने के अधिकारी हैं, नाकि मूर्ख और प्रमादी,

पंडे। परन्तु इसमें भूल हमारी ही है; यदि हम सुपात्रों को दान देने लगजायँ तो थोडे ही दिनों में तीर्थवासी ब्राह्मण,पंडे सच्चे पंडित बनजायँ; परन्तु आश्चर्यकी बात है कि—हमारे अधिकांश भाई समझाने पर भी नहीं समझते और कुपात्रोंके बहकावमें आकर उपदेश देनेवालोंको ही नास्तिक, दुष्ट आदि कहकर उनका उपदेश नहीं मानते और न अपनी बुद्धिसे ही काम लेते हैं।

"कहे भली माने बुरी, यही मूढकी रीत।जब कोठी गारकी ज्यों धोवे त्यों कीच"। तीर्थोंपर जाने वालोंको चाहिये कि उन्हीं पंडोंसे कर्मकाण्ड करानेकी अभिलाषा न रक्खें, जिन के पास कि उनके बाप दादोंके नाम मिलें; किन्तु विचार यह होना चाहिये कि जो भी उत्तम विद्वान और धार्मिक ब्राह्मण मिलें उन्हींसे कर्मकाण्ड करायें। इस प्रकार कर्मकाण्ड कराने का फल यह होगा कि विद्वानों का ही सत्कार होनेसे तीर्थवासी ब्राह्मण, पंडे विद्वान और धार्मिक होनेका प्रयत्न करने लगेंगे॥

हमारा इस लेखसे यह प्रयोजन नहींहै कि लोग तीर्थाटन ही न करें, परंच तीर्थाटन करें तो वहाँपर विद्वान और धर्मात्मा ब्राह्मणों,पंडों[पंडितों] द्वाराही कर्मकाण्ड करावें

[अपूर्ण]



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

॥ अर्जुन उवाच ॥

प्रकृतिंपुरुषञ्चैवक्षेत्रंक्षेत्रज्ञमेवच ॥
एतद्वेदितुमिच्छामिज्ञानंज्ञेयंचकेशव ॥१

दोहा–प्रकृतिकवनअरुपुरुषको. क्षेत्रक्षेत्रज्ञकहाय॥
यहजाननकोलालसा, ज्ञानज्ञेययदुराय ॥ १ ॥

अब अर्जुन कहते हैं कि–हे केशव ! मैं प्रकृति और पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञान ज्ञेयको जानना चाहता हूं ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इदंशरीरंकौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
एतद्योवेत्तितंप्राहुःक्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥२

दोहा–क्षेत्रकहतयादेहको, अर्जुनज्ञानीलोय ॥
जानतहैजोदेहको, सोक्षेत्रज्ञजुहोय ॥ २ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुन.श्रीकृष्ण बोले कि–हे अर्जुन ! यह शरीर संसार रूपी सस्यके उपजनेकी भूमि है,इससे यह क्षेत्र कहलाता है और जो मनुष्य इसे जानता है उसको इसके जाननेवाले क्षेत्रज्ञ कहते हैं॥२॥

क्षेत्रज्ञंचापिमांविद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानंयत्तज्ज्ञानंमतंमम ॥३॥

दोहा–क्षेत्रज्ञमोकोजानतू. बसतसबनकी देह ॥
यहैज्ञानकोजानिवो, मेरोमत है एह ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ जो संसारी जीव है उसे और परमात्मा जो मैं हूं सो मुझे भी जानौ. और मेरे मतमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका जो ज्ञान है सोही मोक्षका कारण और सर्वोत्तम है. इस ज्ञानके विना सब व्यर्थ हैं ॥ ३ ॥

तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्चयद्विकारियतश्चयत् ॥
सचयोयत्प्रभावश्चतत्समासेनमेशृणु॥४॥

दोहा–क्षेत्रतहांतेहैभयो, जोहैजैसेभाय ॥
जोविकारयामांझहै, कहुँसंक्षेप सुनाय ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! वही क्षेत्र जिसका मैं पहिले नाम ले चुका हूं वह जिस जड पदार्थसे बना हुआ है और जिन दर्शनादि स्वभावोंसे युक्त है और जैसे इच्छादिक धर्मोंसे युक्त है और जैसे इन्द्रियादिक विकारोंसे युक्त है और जैसे प्रकृति पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ है और जैसे स्थावर जंगमादि भेदोंसे नानारूपका है और क्षेत्रज्ञभी जैसे स्वरूप और अचिंत्य ऐश्वर्य के प्रभावसे युक्त है सो सब मैं संक्षेपसे कहता हूं तू सावधान होकर सुन ॥ ४

ऋषिभिर्बहुधागीतंछंदोभिर्विविधैःपृथक्॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैवहेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥५॥

दोहा–ऋषिनकहेबहुभाँतिजे, औरन्हूंयोंभाखि ॥
हेतुवादनिहचौजुकरि, कह्योउपनिषदसाखि ॥

हे अर्जुन ! यह क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप वसिष्ठ पाराशरादि ऋषियोंने योगशास्त्रादिद्वारा धारणा करके अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, अनेक प्रकारके नित्यनैमित्तिक और काम्य कर्मके उपदेश कर्ता ऋक्

सामादि वेदोंने जिसका स्वरूप अनेक रीतिसे निरूपण किया है, तथा ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले व्यासकृत ब्रह्मसूत्रोंद्वारा हेतु मान, निश्चित बातोंसे जिसका स्वरूप वर्णन किया गया है उसे मैं संक्षेपसे कहता हूं॥

महाभूतान्यहंकारोबुद्धिरव्यक्तमेवच ॥
इंद्रियाणिदशैकंचपंचचेंद्रियगोचराः॥६॥

दोहा–महाभूतअहंकारबुधि, अरुमायाहूजानि ॥
एकादशइंद्रीविषय, शब्दादिकहूंमानि ॥ ६ ॥

पंचमहाभूत अहंकार, बुद्धि अर्थात महत्तत्त्व, अव्यक्त अर्थात मूलप्रकृति, दस कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय, एक मन और पांच इन्द्रियोंके विषय येही क्षेत्र स्वरूपके चौवीस तत्त्व कहे गये हैं ॥ ६ ॥

इच्छाद्वेषःसुखदुःखंसंघातश्चेतनाधृतिः ॥
एतत्क्षेत्रंसमासेनसविकारमुदाहृतम् ॥७

दोहा–इच्छासुखदुखचेतना, द्वेषधीरताएहि ॥
यहमैंकह्योसंक्षेपसों, क्षेत्रजानितूंलेहि ॥ ७॥

हे अर्जुन ! जो चौवीस तत्व कहे हैं वे और इच्छा, द्वेष, सुख दुख, संघात अर्थात शरीर, चेतना अर्थात ज्ञानात्मक अन्तःकरणकी वृत्ति, धृति अर्थात धीरज इन सबसे:यह क्षेत्र बना है, यह सब मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है ॥ ७ ॥

अमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिरार्जवम्
आचार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः

दोहा—क्षमासरलअरुदंभतजि, हिंसादमअभिमान॥
गुरुसेवासंयमकरन, थिरतासोचप्रधान ॥ ८ ॥

अब क्षेत्रज्ञके जाननेके साधनोंको विस्तारपूर्वक कहते हैं, हे अर्जुन! अमानित्व (मानकी इच्छा न करना) अदंभित्व (दंभ न करना) अहिंसा (प्राणिमात्रको पीडा न पहुंचाना)क्षांति(क्षमा)आर्जव(सरल स्वभाव रखना) गुरुसेवा, पवित्रता, आत्माको निग्रहमें रखना ॥ ८

इंद्रियार्थेषुवैराग्यमनहंकारएवच ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्

दोहा—विषयनसों वैरागधरी, तजेरहै अहँकार ॥
जन्ममृत्युसुखव्याधिजरा.दुखदोषननिरधार ॥

इन्द्रियोंके रूप रस गंधादि विषयोंमें वैराग्य उत्पन्न होना; अहंकार न होना; पैदा होना; मरना बुढापा; रोग और दुख इनके दोषोंको वारवार विचारना ॥ ९ ॥

असक्तिरनभिष्वंगःपुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यंचसमचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

दोहा—नेहनपुत्रकलत्रसों, तादुखदुखी न होय ॥
चितमेंधरैसमानता, बुरेभलेकोखोय ॥ १० ॥

पुत्र, स्त्री, घर तथा धनादिकोंमें आसक्ति न होना, तथा स्त्रीपुत्रादिकोंके सुख दुःखमें सुख दुःख न मानना, और चाही या अनचाही जैसी वस्तु (दैवसंयोगसे) आमिलै इसमें चित्तको सावधानीसे समान रखना ॥ १०

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥११॥

दोहा–अटलभक्तिमोमेंधरे, सबको आतमजाने॥
रहैसदाएकांतमें,तजेसभासनमानि ॥ ११ ॥

मुझ परमेश्वररूपमें अनन्य योग अर्थात् सर्वत्र आत्मदृष्टिसे एकान्त भक्ति होना, एकान्त स्थानमें रहना और सांसारिक विषयोंमें लीन मनुष्यके संगमें अरुचि ॥ ११ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्
एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानंयदतोऽन्यथा॥

दोहा–अध्यातमज्ञानहिधरै, तत्वज्ञानकोदेखि ॥
यहसबजोकछुमैंकह्यो, यहैज्ञानअवरेखि ॥ १ ॥
त्वंपदार्थसोधनकरै, देखै मोक्ष विशेखि ॥
यहैज्ञानइनते अवर, अज्ञानो करलेखि ॥१२॥

अध्यात्मज्ञानमें सदा नित्यभाव और तत्वज्ञानका विषय जो मोक्ष उसको सर्व श्रेष्ठ मानना, ये ' अमानित्व ' से लेकर ',तत्वार्थदर्शन ' तक क्षेत्रज्ञज्ञानके बीच साधन कहे हैं और इससे विपरीत मान, दंभ आदि अज्ञान हैं ॥ १२ ॥

ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते॥
अनादिमत्परंब्रह्मनसत्तन्नासदुच्यते॥१३॥

दोहा–वहअमृतसमजानिवो, जातेमुक्तिजुहोय ॥
कारनकारजतेंपरै, नाहिंब्रह्मकोजोय ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो जाननेके योग्य वस्तु है सो मैं तुझसे कहता हूं, जिसके जाननेसे मनुष्य मुक्ति पाता है, (वह जाननेके योग्य पदार्थ कैसा है?) कि उसका आदि नहीं है, परब्रह्म है, वह न सत् है न असत है अर्थात् न विधि कह सकते हैं न निषेध ॥ १२ ॥

सर्वतःपाणिपादंतत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति १४

दोहा—सर्वत्राहि करचरणसिर,त्यौंहीमुखदृगकान॥
व्यापिरह्यौसबजगतमें, मोहिंदसौंदिसजान ॥

हे अर्जुन ! यह परब्रह्म सब ओर हस्त और पांव वाला है, उसके सब जगह नेत्र, शिर और मुख हैं, उसके सब जगह कान हैं और सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त होरहा है अर्थात् चराचरात्मक है, अनन्त शक्तियोंसे युक्त है ॥ १४ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासंसर्वेन्द्रियविवर्जितम्॥
असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृच॥१५॥

दोहा—सबविषयनतेहैंरहित, सबताको आभास॥
संगबिनासबकौंकरे, निर्गुणगुणनप्रकास॥१५॥

वही नेत्रादि सब इन्द्रियां और रूपादि विषयोंमें व्याप्त है और उनमें अनेक प्रकारसे भासता है, तथा सब इन्द्रिय विषयोंसे रहित है अर्थात् उनके बिनाभी सबको जाननेकी सामार्थ्य रखता है, संगरहित है सबका आधारस्वरूप है, सत्वादि गुणोंसे रहित है तथा उन गुणोंका भोक्ता है ॥ १५ ॥

बहिरंतश्चभूतानामचरंचरमेवच ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थंचांतिकेचतत ॥

दोहा–जंतुजितेचरहूअचर, अंतरबाहिरसोय ॥
सबतैंदूरसुनिकटहै, सूक्षमलखैनकोय ॥ १६ ॥

वही संपूर्ण चराचर प्राणियोंके भीतरबाहर है जैसे सुवर्ण कंकण कुण्डलादिमें भीतर और बाहर वर्त्तमान है स्वयं चराचर स्वरूप है, अत्यन्त सूक्ष्मरूप होनेसे वह जाननेमें नहीं आसक्ता है इससे अज्ञानियोंसे अमित दूर है और ज्ञानियोंके अत्यन्त निकट है ॥ १६ ॥

अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचास्थितम् ॥
भूतभर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णुच ॥

दोहा–तामेंभेदनकछुनहीं, सबमेंरज्जुविभाग ॥
उपजावतनासतसबनि, पालतकरिअनुराग ॥

हे अर्जुन ! वह संपूर्ण प्राणियोंमे कारणरूपसे अभिन्न है परन्तु भिन्नके समान स्थित है, संपूर्ण प्राणियोंका पोषक है, सबका संहारकर्त्ता है और सबका रचनेवाला है ॥ १७ ॥

ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते
ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृदिसर्वस्यधिष्ठितम् ॥

दोहा–ज्योतिनहूंकीज्योतिहै, अंधकारतेपार ॥
ज्ञानजानिबोहीयमें, सबकेहैंनिरधार ॥ १८ ॥

जो सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि ज्योतिष्मान पदार्थ हैं उनकाभी

प्रकाशक है अर्थात् ये सब उसीके तेजसे चमकते हैं, इसीलिये तम जो अज्ञान उससे परे है अर्थात् वहां अज्ञानका लेशमात्रभी नहीं है, ज्ञानस्वरूप है, ज्ञेय अर्थात् जाननेके योग्य हैं, प्रथम कहेहुए अदंभित्वादि ज्ञानके साधनोंसे पाया जाता है और प्राणिमात्रके हृदयमें नियन्तारूपसे स्थित है ॥ १८ ॥

इतिक्षेत्रंतथाज्ञानंज्ञेयंचोक्तंसमासतः ॥
मद्भक्तएतद्विज्ञायमद्भावायोपपद्यते ॥ १९

दोहा–क्षेत्रतथाअनुभवजुमें, तोकोंदयोबताय ॥
इनकोजानैजोभगत, लहैजुमोंपैभाय ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकार मैंने क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनोंका वर्णन संक्षेपसे तेरे सन्मुख किया है इसीको वसिष्ठादि ऋषियोंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, इसे जानकर मेरा भक्त मेरे भावको प्राप्त होजाताहै

प्रकृतिंपुरुषंचैवविद्ध्यनादीउभावपि ॥
विकारांश्चगुणांश्चैवविद्धिप्रकृतिसंभवान् ॥

दोहा–मायापुरुषअनादिहै, अर्जुनदोऊजानि ॥
गुणविकारसबजेभये, मायाहूतेमानि ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको अनादि जानो क्योंकि ईश्वर अनादि है और उसकी प्रकृतिभी अनादि है और पूर्णपुरुषका अंश है इससे पुरुषभी अनादि है तथा देह इन्द्रिय आदि विकार और सुख दुःख मोहादिक गुण उन सबको प्रकृतिसेही उत्पन्नहुए मान २०

कार्यकारणकर्तृत्वेहेतुःप्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषःसुखदुःखानांभोक्तृत्वेहेतुरुच्यते ॥

दोहा–कारजकारणकर्तउ, मायाइनकोहेत ॥
दुखअरुसुखकेभोगको, वहैपुरुषगहिलेत ॥ २१ ॥

हे अर्जुन! कार्य जो शरीर और कारण जो इन्द्रियां इनके कर्तृत्वमें प्रकृतिही हेतु कही गई है और सुखदुःखोंका भोगनेवाला पुरुष कहा गया है यह कपिलादिक ऋषियोंने कहा है इसका भावार्थ यह है कि यद्यपि प्रकृति अचेतन है इससे स्वतः कोई काम नहीं कर सकती है और पुरुष अविकारी है इससे स्वतः भोग नहीं सकता है, तथापि पुरुषके निकट होनेपर प्रकृति कर्ता है और प्रकृतिके निकट होनेसे पुरुष भोक्ता है ॥ २१ ॥

पुरुषःप्रकृतिस्थोहि भुंक्तेप्रकृतिजान्गुणान् ॥
कारणंगुणसंगोऽस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥

दोहा–पुरुषजबहिप्रकृतिभजत, तबहिकरतगुणभोग ॥
ऊँचनीचजनमहिलहत, जानिगुननकेयोग ॥ २२ ॥

हे अर्जुन! वह पुरुष प्रकृतिका कार्य जो देह उसमें तदात्मरूपसे स्थित हो प्रकृतिसे उत्पन्न सुखदुःखादि गुणोंको भोगता है. इससे यह पुरुष जो अच्छी वा बुरी योनियोंमें जन्म लेता है उसका मूलकारण प्रकृतिके गुणोंका संगही है ॥ २२ ॥

उपद्रष्टाऽनुमंताचकर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥
परमात्मेतिचाप्युक्तोदेहेऽस्मिन्पुरुषःपरः ॥

दोहा–परमआतमादेहतें, न्यारोजानतलोय ॥
साक्षीभर्ताभोगता, ईश्वरनिर्गुणहोय ॥ २३ ॥

हे अर्जुन! इस देहमें यह पुरुष वर्तमान रहकर देखनेवाला

अर्थात साक्षीभूत है, अनुमति (सलाह) देनेवाला है, पोषण करनेवाला है, भोगनेवाला है- महेश्वर अर्थात् ब्रह्मादिकोंकाभी ईश्वर है और परम आत्माभी कहागया है ॥ २३ ॥

यएवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिंचगुणैःसह ॥
सर्वथावर्तमानोऽपिनसभूयोऽभिजायते ॥

दोहा–जोकोउऐसेलखै, पुरुषप्रकृतिगुणमाथ ॥
सोकैसेजगमेंरहै, बहुरिनउपजैआय ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जो इस रीतिसे पुरुषको जान लेता है और गुणोंसहित प्रकृतिको जान लेता है वह सर्वथा संसारमें वर्तमान रहनेपर भी फिर जन्म नहीं लेता है ॥ २४ ॥

ध्यानेनात्मनिपश्यंतिकेचिदात्मानमात्मना ॥
अन्येसांख्येनयोगेनकर्मयोगेनचापरे ॥

दोहा–देहमांझआतमलखै, कोऊकायेध्यान ॥
सांख्ययोगअरुकर्मकरी, लखतदोनहूज्ञान ॥

हे अर्जुन ! कितनेही मनुष्य मनसे ध्यान करके अपनेहीमें आत्माको देखते हैं, कितनेही सांख्ययोग अर्थात प्रकृति पुरुषके विवेकसे देखते हैं और कितनेही कर्मयोगसे देखते हैं ॥ २५ ॥

अन्येत्वेवमजानंतःश्रुत्वान्येभ्यउपासते ॥
तेऽपिचातितरंत्येवमृत्युंश्रुतिपरायणाः ॥

दोहा–जेऐसेनहिंजानहीं, सुनिऔरनपैलेत ॥
ममउपासनाकरतहैं, भवभयमृत्युतरेत ॥२६॥

हे अर्जुन ! कितनेही ऐसे हैं जो सांख्ययोग वा कर्म योगको नहीं जानते हैं वे दूसरोंसे सुनकरही उपासना करते हैं वेभी श्रद्धापूर्वक उसके श्रवणमें तत्पर होकर इस संसारसागरसे तर जाते हैं ॥ २६ ॥

यावत्संजायतेकिंचित्सत्वंस्थावरजंगमम्
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ २७

दोहा–जितेजीवयाजगतमें, स्थावरजंगमहोत ॥
क्षेत्रऔरक्षेत्रज्ञमें, सबैलहतउद्योत ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! जो कुछ स्थावर जंगम प्राणिमात्र उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगसे जान लेना ॥ २७ ॥

समंसर्वेषुभूतेषु तिष्ठंतंपरमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतंयःपश्यतिसपश्यति

दोहा–परमेश्वरसबजगतमें, बैठ्योएकसमान ॥
तिन्हैंनसतविनसैनहीं, सोजानैसोजान

हे अर्जुन ! जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भावसे स्थित परमेश्वरको देखते हैं और भूतोंके नष्ट होनेपरभी जो आत्मा को अविनाशी देखता है वही देखता है ॥ २८ ॥

समंपश्यन्हिसर्वत्रसमवस्थितमीश्वरम् ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर सब स्थानोंमें समान भावसे स्थित है, ऐसीही दृष्टिसे जो ईश्वरको समान मानता है वह आपही अपने आत्माको नष्ट नहीं करता है. तबही वह मोक्षको प्राप्त होता है और जो ऐसी दृष्टिसे नहीं देखता है वह देहात्मदर्शी अपनी आत्माको नष्ट करता है और मरनेके पीछे प्रकाशरहित अंधकारमें प्रवेश करता है ॥ २९ ॥

प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥
यःपश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥

दोहा–मायाकृतजूकर्मको, जीवअकर्ताजोय ॥
जानतजोयाभेदको, लषतआतमासोय ॥३०॥

हे अर्जुन ! पुरुष जो संपूर्ण कर्मोंको प्रकृतिके किये हुए मानता है और आत्माको उन कर्मोंका कर्ता नहीं मानता है अर्थात् आत्मा देहाभिमानसेही कर्मोंका कर्ता है वास्तवमें आप किसी कर्मका कर्ता नहीं है वह मोक्ष पाता है ॥ ३० ॥

यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
ततएवचविस्तारंब्रह्मसंपद्यतेतदा ॥ ३१ ॥

दोहा–प्रलयसमैंप्राणीनको, प्रकृतिलीनरिषिलोय
बहुरिप्रकृतितेबिस्तरैं, लखैसुब्रह्महिहोय ॥३१॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष स्थावर जंगम सब प्राणियोंके जुदे जुदे भेदोंको प्रलयकालमें ईश्वरकी शक्तिरूप एकही प्रकृतिमें स्थित मानता है और उसी प्रकृतिमें सब प्राणियोंके विस्तारको मानता है, तब वह ब्रह्मस्वरूप होजाता है ॥ ३१ ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः
शरीरस्थोऽपिकौंतेयनकरोतिनलिप्यते ॥

दोहा—आदिअंतसोरहितहै, निरगुणआतमसोय ॥
देहमांझयद्यपिरहै, करैनलिपताहोय ॥ ३२ ॥

हे कौन्तेय ! यह परमात्मा अनादि और निर्गुण है इससे विनाश रहित है क्योंकि जो आदिसहित और गुणोंसे युक्त होता है वह नाशवान् है इसलिये देहमें वर्तमान होनेपरभी न कर्म करता है न कर्मफलमें लिप्त होता है ॥ ३२ ॥

यथासर्वगतंसौक्ष्म्यादाकाशंनोपलिप्यते॥
सर्वत्रावस्थितोदेहेतथात्मानोपलिप्यते ॥

दोहा—ज्योंअकाशसूक्षमबसै, सबमेंपरसतनाहिं ॥
त्योंहीहैयहगातमें, लिप्तनदेहनिमांहिं ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! जैसे आकाश सब जगह व्याप्त है परन्तु सूक्ष्म होनेके कारण कहीं लिप्त नहीं होता है, इसीतरह संपूर्ण देहमें स्थित आत्माभी देहके गुणोंमें लिप्त नहीं होता है ॥ ३३ ॥

यथाप्रकाशयत्येकःकृत्स्नंलोकमिमंरविः
क्षेत्रंक्षेत्रीतथाकृत्स्नंप्रकाशयतिभारत।३४

दोहा—ज्योंप्रकाशएकैकरत, सबजगसूरजदेव ॥
त्योंहीसबकीदेहमें, परमातमकोभेव ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन ! जैसे एकही सूर्य इस संपूर्ण भूमंडलको प्रकाशित

करता है, उसीतरह क्षेत्री अर्थात जीव संपूर्ण क्षेत्र अर्थात् देहको प्रकाशित करता है ॥ ३४ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षंचयेविदुर्यांतितेपरम् ॥

दोहा–क्षेत्रऔरक्षेत्रज्ञको, भेदलखैजोकोय ॥
भूतप्रकृतितेमोक्षको, जानैमुक्तसुहोय ॥ ३५ ॥
भगतजगततैंउद्धरो, कहेकृष्णएबैन ॥
तेहिकारणमैंयहकह्यो, तत्वज्ञानसुखदैन ॥ १ ॥
तत्वज्ञानउपदेशबिनु, मृत्युतरैनहिंकोय ॥
तातेंकह्योविवेकयह, प्रकृतिपुरुषकोजोय ॥२॥
सबजगसोंअनुरागकरि,आनन्दविमलविवेक
क्षेत्रक्षेत्रज्ञकोयोगहे, वरन्योतत्वविवेक ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो ज्ञानचक्षुओंसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका अंतर भली प्रकार जानते हैं और पहिले कहीहुई प्रकृतिसे मोक्षका उपायरूप धारणादि जानते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

समीक्षा–पूर्वके बाहर अध्यायोंमें कर्मकांड और भक्तिकांडका वर्णन होकर अब शेषके छः अध्यायोंमें ज्ञानकांडका वर्णन किया जायगा। बुद्धिमानों को उचित है कि स्वयं ज्ञानवान होते हुए

अपने मूर्ख भाइयोंकोभी विद्वान और ज्ञानी बनाएं। आजकल प्रायः यह देखाजाता है कि, लोग रातदिन यही कहा करते है कि 'देश की उन्नति करो' जिसका अर्थ यही है कि देशवासियोंको विद्वान, बुद्धिमान, स्मृद्धिमान और बलवान बनाओ। देशका क्या उन्नत होना है वह तो जड पदार्थ है। देशसे अभिप्राय किसी देश विषयके वासीयोंसे ही होता है। परंतु भारतवर्षमें आजकल बहुधा यह देखने में आरहा है कि देश की उन्नति चाहनेवाले विद्वान, अपने मूर्ख भाइयों से मिलना, बातचीत करना और उनके बीचमें बैठना अपनी योग्यताको या अपनी मानप्रतिष्ठाको खो बैठना समझते हैं। जबतक उनमें मिलजुलकर विद्वान लोग उनको शिक्षा और ज्ञान नहीं देंगें तबतक यह बात कैसे संभव है कि भारतवर्षके सौ पीछे पंचानन्वे अपठित स्त्रीपुरुष विद्वान होकर देशके भले बुरेका ज्ञान प्राप्त कर सकें। गीताका उपदेशही है कि तुम परस्पर मिलकर अपने बोध (ज्ञान) को बढाओ (देखो गीता अ० १० श्लो० ९) अतः आशा है कि हमलोग समग्र गीताके तात्पर्यको रातदिनके श्रवण मनन द्वारा भलीभांति जानकर अपना और अपने अपठित भाइयोंका कल्याण करेंगे।

अध्याय तेरहसे अध्याय अठारहकी समीक्षा हम पाठकों परही छोडते हैं। अतः क्षमा प्रार्थी हैं। गीताका विषय अतिगंभीर है इसके आशयको समझनेके लिये जितना जितना अधिक प्रयत्न किया जाएगा उतना २ ही अधिक और नया २ अर्थका भान होता जाएगा। और यह भी ध्यान रहे कि गीतामें सब उपदेश अधिकारी भेदसे दियेगये है। जहां गृहस्थोंको युद्धादिमें प्रवृत्त होकर शत्रुको मारनेका या दुष्ट प्राणियोंकी हिंसा करनेका उपदेश दिया गया है, वहीं वानप्रस्थी और संन्यासी लोगोंको प्राणीमात्र

की हिंसा करनेसे रोका है। इनके लिये दुष्ट-प्राणियोंके दिये कष्टोंको सहना और उनके अपराधके लिये उनको क्षमा करनेका उपदेश दिया गया है।

वानप्रस्थी, संन्यासी तथा ऋषिमहात्माओंके लिये शास्त्रोंका ऐसा उपदेश प्राचीन कालसेही चला आता है यथा विश्वामित्र ऋषि स्वयं राक्षसोंको मारनेमे समर्थ होतेहुएभी शत्रुओंसे यज्ञकी रक्षाके लिये रामचन्द्रजी को जो क्षत्री थे ले गये।

[पृष्ठ २४९ से आगे]

[४४] तीर्थस्थानोंपर जो बातें धर्मविरुद्ध देखने में आरही हैं, उनको सर्वथा हटानेकी चेष्टा कीजानी चाहिये,जैसा कि पुरीमें वर्त्तमान समयके जगन्नाथजीके मंदिरको देखने से बुद्धिमान् मनुष्यको बड़ाही दुःख होता है, क्योंकि मंदिरके शिखरपर महा अश्लील भ्रष्टपुतलिया रक्खी हुई हैं। उच्छिष्ट भात आदिका भोजन खाना पड़ता है। जिस मूर्तिको हम परमेश्वरके अवतारोंकी रूपसूचक मानते हैं वह भग्नहो और उसीको प्रत्येक बारहवें वर्ष असाध्य रोगी बनाकर मृतक बनायें और उसीके स्थानपर वैसीही दूसरी मूर्ति रक्खें, जिस क्रियाका नाम " कलेवरयात्रा" रक्खा है। विचार करनेकी बात है कि ऐसी २ बातें उपहास करानेवाली हैं और आश्चर्यजनक हैं। वहाके आचार्योंको चाहिये कि ऐसी कुप्रथाओंको रोककर शास्त्रानुसार कार्य करनेपर उद्यतहो यशके भागी बनें। ऐसे स्थानोंपर जाकर सब प्रकारकी हानि उठानेके अतिरिक्त और क्या लाभ उठाया जासक्ता है।

ऐसा प्रबन्ध अतिशीघ्र किया जाय कि धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंके विरुद्ध जिन २ तीर्थस्थानोंपर जो २ भ्रष्टाचार और पाखण्ड फैल रहे हों उनको सर्वथा हटाकर प्राचनिकालके सदृश " तीर्थस्थान "बनायें, जैसाकि अबभी कोई २ स्थान तीर्थ कहलानेके योग्य हैं; जहा जाकर अबभी शांति मिलती है; विद्वान और धार्मिक पंडितों और साधुओंके संगसे कई प्रकारके लाभ पहुंचते हैं। बहुतसे तीर्थस्थानोंके संबन्धमें तो भोले भाले यात्रियोंको ठगनेके लिये " तीर्थमाहात्म्य" बनगये हैं। इन बनावटी तीर्थमाहात्म्योंकी जगह सच्चेधर्मके ग्रंथ–गीता, उपनिषद, वेदांत, योगदर्शन आदिकी कथायें होनी चाहियें॥

तीर्थस्थानों पर विद्यालय और महाविद्यालय खुलने चाहियें, जिनके लिये यात्रियोंसे सहायता लीजाया करे, जिससे उनका दान और तीर्थयात्रा सफल हो

[४५] दरिद्र स्थिति के पुरुषोंको चाहिये कि दूरके तीर्थस्थानोंको न जाकर अपने पासके ही तीर्थस्थानों पर जावें क्योंकि परमेश्वरतो सबजगह है और भक्ति से प्रसन्न है. रेल्वे तथा जहाजी कम्पनियोंको करोडों रुपया किराये का कुम्भादि मेलोंपर देकर और सब प्रकार का अकथनीय कष्ट उठाकर अपनेको अधिक दरिद्र बनाने की अपेक्षा यदि वह रुपया अपने कुटुंबके भरणपोषणमें लगावें तो उनके गृहस्थाश्रम का सुखपूर्वक निर्वाह होगा ॥

[४६] बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि मूर्ख नामधारीसाधुओं और ब्राह्मणोंको तीर्थयात्राके निमित्त रेल्वे तथा स्टीमर [जहाज]की टिकट न दिलावें; क्योंकि ऐसा करनेसे व्यर्थ धन का नाश होता है और न देशको ही वहां पर उनके जानेसे कुछ लाभ होताहै.

विद्वान साधु तीर्थों पर जाकर उपदेशाकरें तो अवश्य देशको लाभ हो सकाहै, परन्तु विद्वान साधुओं को भी चाहिये कि जहाँतक बनसके वहाँतक रेल्वे और स्टीमरकम्पनियोंको देशका रुपया न देकर, पैदलही जैन साधुओंकी भाँति यात्रा किया करें, जिससे ग्रामश्में लोगोंको साधुओंके उपदेशोंका लाभ हो और साधुओंको भी देशकी स्थितिका पूर्ण यथावत् ज्ञान प्राप्त होजाय ॥

[४७] भारतवर्षके भिन्न २ प्रांतोंमें "नवयुवक हिन्दू [आर्य] मण्डल" होने चाहियें, जिनके उद्देश्य निम्नलिखित हों ।

[क] नवयुवकोंमें इसबातका प्रचार करना कि मादक पदार्थोंका सेवन न करें और सोलहवर्षसे पहले तमाखू सिगरेट न पीवें। अपने चरित्र उत्तम रखने को अपने पास घरोंमें अश्लील चित्र न रक्खें; कामोत्तेजक खेल तमाशे कदापि न देखें; आजकल राधाकृष्णकी आडमें कामोत्तेजक गीत, खेल, तमाशे, चित्र बहुत देखनेमें आरहेहैं; अतः ऐसी लीलायें कभी न होनेपावें.

वेश्याओंके यहां कदापि न जावें. यदि विवाहादि उत्सवोंपर कहीं वेश्या नाचकी बात हो तो जहांतक होसके विवाह करानेवालोंसे अनुरोध करें कि-वह सर्वथा वेश्या नाच न होने दें, किन्तु अच्छे विद्वानों को बुलाकर धर्म विषय पर व्याख्यान दिलावें जिससे अत्यंत लाभ हो.

[ख] नवयुवकोंमें बलपराक्रम बढानेके साधनों यथा-दंड, कसरत, फुटबाल, टेनिस, क्रिकेट, कबड्डी, घोडासवारी, दूरश्दौडना भागना, आदि खेलोंका प्रचार करना.

[ग] जहां कहीं अपने हिन्दू [आर्य] भाइयोंको सहायताकी आवश्यका हो वहां सहायक बनें. यथा पानीकी बाढ आने तथा अग्निलगने आदि किसी आकस्मात दुर्घटनाके समयमें ।

[घ] लोगोंमें विज्ञान फैलानेके निमित्त सप्ताहमें एकवार उपदेश देने या पढनेका प्रयत्न करना.

[ङ] भारतवर्षसे बाहर देशोंमें जानेवाले अपने भाइयोंकी दुर्दशाको साधारण लोगोंको बताना, कि वहापर कैसे २ भयानक अत्याचार विदेशियों द्वारा होरहे हैं अतः हमको प्रयत्न करना चाहिये कि, हमारे भाई वहा कुली बनकर न जायें, उनके लिये यहीं वृत्तिका प्रवन्ध कियाजाय. और लोगोंको यहभी बताना कि इन भोले भाले लोगोंको बहकाने वाले हममेंसे ही नींच और लोभी पुरुष हैं. जहा२ लोगों को बहका कर भरती करनेवाले ऐसे पुरुषोंका पता लगे उनको धिक्कारने और इस कामसे हटानेका प्रयत्न करें; यदि वह न मानें तो उनके साथ सब प्रकारका व्यवहार बंद करवा देना चाहिये।

अफ्रिका आदि देशोंमें हमारे देशवासी कुलियोंको इतना कष्ट मिलता है कि वह थोडेही समयमें मर जाते हैं. इसी प्रकारके अन्य २ उत्तम कामोंको सोचना चाहिये, क्योंकि मनुष्यशरीरको धारण करनेका उद्देश्य अपना पेटही भरना नहीं है. जैसाकि लिखा हैः—

[श्लोक] आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् । धर्मोहि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनो पशुभिः समानः ॥

(अर्थ) भोजन, निद्रा, भय, स्त्रीसग, मनुष्यों और पशुओंमें समान हैं मनुष्योंमें विशेषता यही है कि—वह धर्म और अधर्मका ज्ञान रखते हैं परतु पशु नहीं रखते इसलिये हमको परोपकारादि धर्मकार्योंमें सदा तत्पर रहना चाहिये

(च) हमारे नवयुवकोंको चाहिये कि विद्यालयमें पढते समयही जीवनका अपना एक लक्ष्य बनावें. अर्थात् इसी समय इस वातका दृढ निश्चय भलीभांति सोचविचारके साथ करलें, कि में अमुक धंधा करताहुआ स्वतंत्रतासे अपने जीवनका निर्वाह करूंगा। यथा वैद्यक, डाकटरी, इंजिनियरी, वकालत, वैरिस्टरी, वाणिज्य, व्यापार, कृषि, धर्म और शिक्षाप्रचार इत्यादि अनेक प्रकारके जो उन्नतिकारक और स्वतत्र धंधे हैं उनमेंसे एकको अपना मुख्य लक्ष्य बनाकर उसीमें पूर्ण निपुण होनेकी पूरी २ चेष्टाकरनी चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य किसी विद्यामें पूर्ण निपुण नहीं हैं उनको वह आदर और द्रव्यकी आय प्राप्त नहीं होसक्ती जोकि एक पूर्ण विद्वानको प्राप्त होसक्तीहै यदि इसी अवस्थामें इसवातका विचार न किया जायगा तो गृहस्थाश्रममें वडा कष्ट उठाना पडेगा। पराधीन होकर अनेक मनुष्योंकी सेवा करनी होगी। " विद्यार्थीजीवन " आदि अनेक उत्तम २ पुस्तकें अभीसे पढनी चाहियें।

(छ) ऐसा प्रयत्नकरना कि एक " हिन्दू (आर्य) धर्मप्रचारक मडल " स्थापित होजाए। इस मडल द्वारा तीन प्रकारके उपदेशक नियत किये जाने चाहियें प्रथम उत्तम श्रेणीके उपदेशक, जो वेद वेदांग पारग होनेके साथ कई भाषाओंके विद्वान हों और पाश्चात्य विज्ञानसेभी पूर्ण जानकारहो प्राचीनकालमे तो हमारे विद्वान यथा " साहित्य दर्पण "के कर्त्ता, चौदह २ भाषा जानते थे, अवभी हमारे विद्वानोंको न्यूनसेन्यून चार पाच भाषा तो

अवश्य जाननी चाहिये. दूसरे मध्यम श्रेणी के उपदेशक जो किन्हीं अंशोंमें उत्तम श्रेणीके उपदेशकोंसे न्यून हों. तीसरे कनिष्ट श्रेणी के उपदेशक जो मध्यम श्रेणी वालों से योग्यता मे किन्हीं अंशों में न्यून हो ॥

इन उपदेशकों द्वारा भारतवर्ष के भिन्न २ नगरों और ग्रामों में धर्म मंडन और कुरीति खंडन पर व्याख्यान दिलाये जावें। यथा लोगों को समझाया जावे कि आजकल जो होलीके व्यवहार पर अपशब्दोंका बोलना, मदिरा आदि मादक पदार्थों का खाना पीना, और अन्य २ प्रमादके कामों का करना है वह सब हमारे धर्म शास्त्रके विरुद्ध हैं, ऐसी प्रमादमय बातों में लगने से शरीर मन और वाणी को अपवित्र करके इनकी शक्तियों को घटानेका महापाप लगताहै, अतः इन घोर पापके कामों कोन करके धर्मके कार्योंमें हमको लगना चाहिये. यथा व्याख्यानोंका देना प्रेम पूर्वक मिलकर देश और जाति के हितकार्यों को सोचना इत्यादि।

[अपूर्ण]



अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

परंभूयःप्रवक्ष्यामिज्ञानानांज्ञानमुत्तमम् ॥
यज्ज्ञात्वामुनयःसर्वेपरांसिद्धिमितोगताः॥

दोहा–परमज्ञानउत्तमसोई, तोकोंदेउँबताय ॥
जाहिजानिकैमुनिसबै, रहेमुक्तिकोपाय ॥ १ ॥

भगवान् बोले हे अर्जुन ! मैं संपूर्ण ज्ञानोंमें उत्तम ज्ञान फिर तेरे सन्मुख कहताहूं, इसी ज्ञानके सहारेसे संपूर्ण मुनिजन इस जगहसे सर्वश्रेष्ठ मोक्षको प्राप्तहुए हैं ॥ १ ॥

इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमागताः ॥
सर्गेऽपिनोपजायंतेप्रलयेनव्यथंतिच ॥ २

दोहा–यहीज्ञानको सेइकै, मेरोलह्योस्वरूप ॥
प्रलयसृष्टितिनकोंनहीं, परैनतेभवकूप ॥ २ ॥

जिस ज्ञानको मैं अब तुझे सुनाऊंगा उसीका आश्रय लेकर जो मुनिगण मेरे सांधर्म्यको प्राप्त होगये हैं, वे सृष्टि कालमें उत्पन्न नहीं होते हैं और न प्रलयकालमें दुःख भोगते हैं अर्थात जन्ममरणसे रहित होगये हैं

ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्गर्भंदधाम्यहम्
संभवःसर्वभूतानांततोभवतिभारत ॥ ३॥

दोहा–ब्रह्मप्रकृतिमोयोनिहै, तामैंगर्भहिराखि ॥
उपजावतसबसृष्टिहौं,अर्जुनाचितअभिलाखि॥

हे अर्जुन ! महतब्रह्म अर्थात् प्रकृति मेरे योनि है इसीमें मैं गर्भधारण करता हूं उसी गर्भसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है॥३॥

सर्वयोनिषुकौंतेयमूर्तयःसंभवंतियाः ॥
तासांब्रह्ममहद्योनिरहंबीजप्रदःपिता ४ ॥

दोहा–जोजोमूरतिहोतहैं, सबयोनिनमेंआय ॥
तिनकोहौंहीबीजहौं, मैंहिपिताअरुमाय ॥४॥

हे कौंतेय ! मनुष्यसे आदि लेकर यावन्मात्र स्थावर जंगम उत्पन्न हुआ करते हैं उन सबकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान प्रकृति है और बीज देनेवाला गर्भाधानका कर्ता पितास्वरूप मैंही हूं ॥ ४ ॥

सत्वंरजस्तमइतिगुणाःप्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नंतिमहाबाहोदेहेदेहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

दोहा–सतरजतमजगुणभये, मायाहीतेमानि ॥
तममेंअव्ययजीवको, तेगुणबांधतिआनि ॥

हे महाबाहो ! सतोगुण; रजोगुण और तमोगुण, प्रकृतिसे उत्पन्न हुए, ये गुण अविनाशी जीवका इस देहमें बन्धन करते हैं अर्थात् उसे दुखसुखरूप बन्धनमें डालते हैं ॥ ५ ॥

तत्रसत्वंनिर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेनबध्नाति ज्ञानसंगेनचानघ ॥ ६॥

दोहा–निर्मलअरुपरकासकरि, सतगुणशांतिसुभाय
ज्ञानसंगसुखसंगसों, बांधतजीवहिआय ॥ ६ ॥

हे अनघ! उन तीनों गुणोंमेंसे सतोगुण निर्मल है और अनामय अर्थात् रोगरहित शान्तिस्वरूप है इसीसे यह सतोगुण शान्तिके कार्य सुख और प्रकाशके कार्य ज्ञानसे बांधता है अर्थात् मैं सुखी हूं मैं ज्ञानी हूं इस प्रकार अहंकारसे जीवका बन्धन करता है ॥ ६ ॥

रजोरागात्मकंविद्धितृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नातिकौंतेयकर्मसंगेनदेहिनम् ॥ ७

दोहा—रजगुणरागस्वरूपहै, तृष्णासंगकोहेतु ॥
कामसंगकरिजीवको, ऐसेबंधनदेतु ॥ ७ ॥

हे कौन्तेय! रजोगुणको उत्पत्ति तृष्णा और स्त्रीधन पुत्रादिकमें आसक्तिसे है इससे यह रागात्मक है अर्थात् सांसारिक विषयोंमें स्नेह करानेवाला है तू ऐसा जानले, सो यह रजोगुण जीवको कर्मोंकी आसक्तिमें बांधता है अर्थात् रजोगुणद्वारा मनुष्य कर्म करनेमें प्रवृत्त होता है

तमस्त्वज्ञानजंविद्धिमोहनंसर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नातिभारत ॥

दोहा—होतजुतमअज्ञानतें, मोहितसबकोहीय ॥
आलसनिद्राविकलता, इनसोंबांधतजीय

हे भारत! तमोगुण अज्ञानसे उत्पन्न होता है इसलिये इसे संपूर्ण प्राणियोंका मोहनेवाला जानो, इसी हेतुसे यह प्रमाद, आलस्य और निद्राद्वारा जीवको बांधता है ॥ ८ ॥

सत्त्वंसुखेसंजयतिरजःकर्मणिभारत ॥
ज्ञानमावृत्यतुतमःप्रमादेसंजयत्युत ॥९॥

दोहा-सतगुणसुखसनमुखकरै, रजगुणकर्मनिलीन॥
तमगुणआलसयुतकरै, होतज्ञानसबछीन ॥ ९ ॥

हे भारत ! सत्वगुण जीवको सुखमें प्रवृति कराता है. रजोगुण कर्म करनेमें प्रवृत्ति कराता है और तमोगुण ज्ञान को आच्छादित कर जीवको प्रमादमें लगाता है ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूयसत्वंभवतिभारत॥
रजःसत्वंतमश्चैवतमःसत्वंरजस्तथा ॥१०

दोहा-रजगुणतमगुणपेलिकै, रहैसत्वगुणपूरि॥
सततमकोपेलैजुरज, तमतसतरजदूरि ॥ १०॥

हे अर्जुन ! जब रजोगुण और तमोगुण इन दोनोंको जीत कर सतोगुणकी आधिकता होतीहै, तब यह सतोगुण प्राणियोंको सुख और ज्ञान संयुक्त करताहै, इसी तरह रजोगुणभी सतोगुण और तमोगुणका पराभव करके तृष्णा आदि अपने कर्मोंमें प्रवृत्त करताहै इसीतरह तमोगुण सतोगुण और रजोगुणका पराभव करके अपने आलस्य और अज्ञानादि कार्योंमें प्रवृत्त करता है ॥ १० ॥

सर्वद्वारेषुदेहेऽस्मिन्प्रकाशउपजायते ।
ज्ञानंयदातदाविद्याद्विवृद्धंसत्वमित्युत ॥

दोहा-सबद्वारनतेदेहमें, जबहिप्रकासतज्ञान॥
तबहिवढ्योहैसत्वगुण, अर्जुनयहतूजान ॥११॥

हे अर्जुन ! जब इस देहमें नेत्रादि संपूर्ण द्वारोंमें होकर प्रकाश अर्थात् रूपादिका यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है तब सतोगुणकी वृद्धि

जानी जाती हैं क्योंकि सतोगुणहीसे इन्द्रियां अपने यथार्थ काममे प्रवृत्त होती हैं ॥ ११ ॥

लोभःप्रवृत्तिरारंभःकर्मणामशमःस्पृहाः ॥
रजस्येतानिजायंतेविवृद्धेभरतर्षभ ॥ १२

दोहा–बढतरजोगुणहैजबहि, नरशरीरमेंआय ॥
लोभकर्मउद्यमअसम, इनहिदेतप्रगटाय ॥१॥
कामविषैनितहीजब, अर्जुनहोतप्रवृत्त ॥
अरुलालचतेजानिये, बढ्योरजोगुणमित्त १२

हे भरतर्षभ ! जब रजोगुण बढताहै तब लोभ, कार्यमें नित्यप्रति प्रवृत्ति, कर्मोंका आरंभ, चित्तमें अशान्ति और स्पृहा ये उत्पन्न होते हैं इन्हीं चिन्होंसे रजोगुणकी वृद्धि जानी जाती है ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्चप्रमादोमोहएवच ॥
तमस्येतानिजायंतेविवृद्धेकुरुनंदन ॥ १३

दोहा–अर्जुनतबहीकरतहै, तमगुणआयप्रकाश ॥
आलसमोहअज्ञानता, मनमेंकरतविलास १३॥

हे कुरुनन्दन ! तमोगुणके बढनेपर ज्ञानका नाश, उद्यम हीनता, प्रमाद अर्थात कर्तव्य कर्मोंसे विमुखता और मिथ्या पदार्थोंमें प्रीति ये सब उत्पन्न होते हैं अर्थात् जब ऐसे ऐसे कर्म मनुष्य करता है तब तमोगुणके बढनेके चिन्ह जाने जाते हैं ॥ १३ ॥

यदासत्वेप्रवृद्धेतुप्रलयंयातिदेहभृत ॥
तदोत्तमविदांल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते १४

दोहा–जोसतगुणकीवृद्धिमें, तजैजीवनिजदेह ॥
तोज्ञानिनकेलोकमें, जाइकरैसोगेह ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! जिस समय सतोगुणकी वृद्धि होती है यदि उस समय प्राणी देह त्याग देवै तौ वह उन निर्मल लोकोंको प्राप्त होता है जहां हिरण्यगर्भादिकी उपासना करनेवाले रहते हैं, अथवा आत्मज्ञानियोंके कुलमें उत्पन्न होताहै क्योंकि–लोक शब्द 'भुवन' और 'जन, दोनों अर्थोंका वाचक है ॥ १४ ॥

रजसिप्रलयंगत्वाकर्मसंगिषुजायते ॥
तथाप्रलीनस्तमसिमूढयोनिषुजायते ॥ १५ ॥

दोहा–रजगुणमैंतजिजीवको, कर्मवंतघटिजाय ॥
तमगुणमेंजोमरतहै पशुनमांझप्रगटाय ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! और जो प्राणी रजोगुणकी वृद्धिमें मरता है वह उन मनुष्योंमें जन्म लेताहै जो कर्मोंमें आसक्त हैं तथा जो तमोगुणकी वृद्धिमें मरतेहैं वे मूढयोनि अर्थात पशुओंमें जन्म लेते हैं ॥ १५ ॥

कर्मणःसुकृतस्याहुःसात्विकंनिर्मलंफलम्
रजसस्तुफलंदुःखमज्ञानंतमसःफलम् १६

दोहा–सुकृतकर्मतेहोतहै, सात्विकफलअतिसुच्छ
रजगुणकोफलदुःखहै, तमअज्ञानफलतुच्छ १६

सुकृत कर्मोंका फल सात्विक और निर्मल है, रजोगुण संबंधी कर्मोंका फल दुःख है और तमोगुण संबंधी कर्मोंका फल अज्ञान है ये सब कपिलाचार्यादि ऋषियोंके वाक्य हैं ॥ १६ ॥

सत्वात्संजायतेज्ञानंरजसोलोभएवच ॥
प्रमादमोहौतमसोभवतोऽज्ञानमेवच १७

दोहा—लोभरजोगुणतेभयो, सतगुणतेहैज्ञान ॥
तमगुणतेहैविकलता, मोहऔरअज्ञान ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! सतोगुणसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है और रजोगुणसे लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुणसे असावधानता, मोह और अज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वंगच्छन्तिसत्वस्थामध्येतिष्ठन्तिराजसाः
जघन्यगुणवृतिस्थाअधोगच्छन्तितामसाः

दोहा—सात्विकऊंचेजातुहैं, राजसमध्यमलोक ॥
तामसजातअधोगतिनि, पावतबहुविधिशोक

हे अर्जुन ! जिसकी सतोगुणी वृत्ति है और सात्विक कर्म करते हैं वे सत्यलोकमें जाते हैं और मोक्षगामी हैं और जिनकी रजोगुणी वृत्ति है वे इस मृत्युलोकमें जन्म लेते हैं और अनेक प्रकारके जन्ममरणादि कष्ट सहते हैं और जिनकी तमोगुणी वृत्ति है और नीच कर्म करनेमें प्रवृत्त रहते हैं वे अधोलोकको जाते हैं ॥ १८ ॥

नान्यंगुणेभ्यःकर्तारंयदाद्रष्टाऽनुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्चपरंवेत्तिमद्भावंसोऽधिगच्छति ॥

दोहा—गुणहींकोकरतारकरि, जानेज्ञानीकोय ॥
मोहिलखैगुणतेपरे, मोमेंलीनसुहोय ॥ १९ ॥

जब द्रष्टा जो देखनेवाला विवेकी पुरुष है वह सत्वादि गुणोंके अतिरिक्त किसी औरको कर्त्ता नहीं जानता है अर्थात यह समझता है कि-ये सब कर्म गुणहीद्वारा होते हैं और गुणोंसे परे साक्षीरूप आत्माको जानता है वे मेरे रूपको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिविमुक्तोऽमृतमश्नुते

दोहा-देहकरतजोतीनगुण, तिनकोंदेहजुत्यागि ॥
जन्ममृत्युतेदुखछुटे, रहैमुक्तिरसपागि ॥ २० ॥

यह देहधारी प्राणी देहसे उत्पन्न हुये इन तीनों सत्वादि गुणोंका उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधियोंसे छूटकर अमर होजाता है अर्थात् ब्रह्मपदको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतोभवतिप्रभो ॥
किमाचारःकथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥

दोहा-जोत्यागतहैतीनगुण, ताकोलक्षणकौन ॥
कैसेताकेआचर, तुममोसोंसुकहौन ॥ २१ ॥

यह सुन अर्जुनने पूछा कि हे प्रभो। जो इन तीनों गुणोंका उल्लंघन करता है उसका लक्षण क्या है? अर्थात् वह किन लक्षणोंमे पहिचाना जाता है, इसका आचरण कैसा है? और किस तरह इन तीनों गुणोंका अतिक्रमण होता है? ॥ २१ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

प्रकाशंचप्रवृत्तिंचमोहमेवचपाण्डव ॥
नद्वेष्टिसंप्रवृत्तानिननिवृत्तानिकांक्षति ॥

दोहा--मोहज्ञानअरुकर्मको, जोजानैहियमाहिं ॥
बिनुपायेचाहतनहीं, लहिदुखपावैनाहिं ॥२२॥

यह सुनकर भगवान् बोले हे अर्जुन ! सतोगुण रजोगुण और तमोगुणके जो जो प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह ये तीन कार्य हैं इनके प्रवृत्त होनेपर जो इनके त्यागनेकी इच्छा नहीं करता है और निवृत्त होनेपर ग्रहणकी इच्छा नहीं करता है वही पुरुष गुणातीत है ॥२२॥

उदासीनवदासीनोगुणैर्योनविचाल्यते ॥
गुणावर्तन्तइत्येवयोऽवतिष्ठतिनेङ्गते २३

दोहा-उदासीनबैठारहै, सुखदुखचपलनहोय ॥
गुणसबकारजकरतहैं, योंजानैजोलोय ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! जो उदासीनकी तरह स्थित रहता है और सत्वादि गुणोंके सुखदुःखादिरूप कार्योंसे विचलित नहीं होता है और ऐसा जानता है कि ये गुण अपने अपने कार्य्योंमें स्वतःही प्रवृत्त रहते हैं, जो पुरुष ऐसे रहते हैं और चलायमान नहीं होते वेही गुणातीत हैं॥

समदुःखसुखःस्वस्थःसमलोष्टाश्मकाञ्चनः
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः

जो सुख दुःखमें समान हैं, स्वस्थ अर्थात् मानसिकादि विकारोंसे रहित हैं जिनके कंकर पत्थर और सुवर्ण समान है जिसके प्रिय अप्रिय समान है जो धैर्यवान् है, जिनके स्तुति और निन्दा समान है. ऐसेही पुरुष गुणातीत हैं ॥ २४ ॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्योमित्रारिपक्षयोः
सर्वारम्भपरित्यागीगुणातीतःसउच्यते ॥

दोहा–तुल्यमानअपमानअरु, मित्रशत्रुसममान
सवआरम्भनिजोतजै, गुणातीतकहिजान २५॥

हे अर्जुन ! जिसकी दृष्टिमें मान अपमान तुल्य हैं, और जो शत्रु मित्रको समान जानता है जो किसी कार्यको आरंभही नहीं करता है वह गुणातीत है ॥ २५ ॥

मांचयोऽव्यभिचारेणभक्तियोगेनसेवते ॥
सगुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयायकल्पते ॥

दोहा–मोकोजोदृढभक्तिसों, सेवैचितकेचाय ॥
सोतीन्योंगुनकोंलहै, रहैब्रह्मको पाय ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! जो कोई अनन्य भक्तिसे मेरा सेवन करता है वह इन तीनों गुणोंका उल्लंघन करके ब्रह्मभावको प्राप्त होजाता है ॥ २६ ॥

ब्रह्मणोहिप्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्यच ॥
शाश्वतस्यचधर्मस्यसुखस्यैकान्तिकस्यच

के भी बाल श्वेत नहीं होते इसका कारण यही है कि वह बहुधा कडुवा-तेलही काम में लाते हैं ॥

[४५] मारवाड प्रान्तमें बहुत जगह यह चाल पड़ती जा रही है कि, स्त्रियें घूंघट का प्रचार रखती हुई भी बारीक कपडोंको धारण करती हैं, जिससे उनका प्रायः सब अंग दिखाई देता है। घर वाले मनुष्योंको बडी लज्जा आती है; एक प्रकार की मानसिक निर्बलता के कारण वह कुछ बोल नहीं सके; परन्तु पढे लिखे और विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि, इस बुरीचालको तुरंत हटा दें। और यह भी चाहिये कि, मारवाड़ी जाति में जितनी भी प्रकार की कुरीतियां हैं, उन को हटाने के लिये एक सभा बनावें जिस का " मारवाडीसमाज सुधारक समिति " या दूसरा नाम रक्खा जाय.

यदि ऐसा न किया जायगा तो कलकत्ता आदि नगरोंमें, विदेशी लोगों की हंसी से हटना तो दूर रहा, हमारे ही बंगाली आदि हिन्दू (आर्य) भाईयों की हंसी से भी छुटकारा नहीं मिलेगा। इसलिये मारवाडी समाज के बुद्धिमान् पुरुष इस ओर अवश्य ध्यान दें।

[४६] मारवाडप्रांतमें बहुधा यह देखने में आरहा है,कि हमारे बहुत ब्राह्मणभाई यजमानोंको रुपया देनेका एक यंत्र समझकर विद्याध्ययन,योगसाधन आदि ब्राह्मणों के गुणोंको न धारण करके सुलफा, गांजा, भांग आदि नशेके पदार्थोंका सेवन करके और तीतर, कबूतर, हिरण, मेंढा आदि पशुओंको पालकर अपने अमूल्य जन्मको वृथाही खोबैठते हैं. यह यजमान पुरोहितकी प्रणाली जिसप्रकार प्राचीनकालमें थी, उसी प्रकार होनी चाहिये. जैसे तीर्थस्थानों में घरू पंडोंका होना हानिकारक है, वैसेही योग्य तथा अयोग्य का विचार न होकर जन्मसेही यजमान पुरोहितोंका सम्बन्ध होनाभी हानिकारक है, इसलिये इस प्रथामें फेरफार होना अत्यावश्यक है।

[४७] भारतवर्षके प्राचीन कालका एक उत्तम और बृहत्, प्रामाणिक इतिहास बनाया जाय, जिससे सब लोगोंको विदित होजाय कि आजतक अर्थात् पौषशुक्ला पौर्णिमा, विक्रमीय सम्वत् उन्नीससो सत्तर पर्यंत हिन्दू (आर्य) जातिको इस पृथ्वीपर निवास करते हुए अट्ठतीस लाख तिरानवेसहस्र चौदहवर्ष होगये. सृष्टिके आदिसेही समस्त भूमंडलपर यहांके क्षत्री राजा राज्य करते रहे. युधिष्ठिर महाराज तक तो बराबरही क्षत्रियवंशी राजाओंका राज्य समस्त भूमंडल पर फैलाहुआ था, परन्तु उनके पश्चात्भी महाराज चन्द्रगुप्त तक भारतवर्षीय राजाओंका राज्य दूर २ तक रहा. चन्द्रगुप्त महाराज का राज्य जिसको अब दोसहस्र वर्षके आसपास

होगये सिंघलद्वीप (सिलोन) काबुल, वर्मादेश, श्याम और यवद्वीप [जावा] तक फैला हुआथा।

चंद्रगुप्तके पोते महाराज अशोकके पीछेही, भारतवर्षका राज्य और प्रताप भारतवर्षसे बाहरके देशोंमें नहीं रहा। उसी समय रूम, ग्रीस आदि देश स्वतंत्र राज्य बनगये और तभी से उन्होंने आर्यधर्मको भी छोड दिया और संसार में ईसाई, मुसल्मान आदियतभी फैलगये जो संसारको केवल पांचसहस्र वर्षसेही उत्पन्नमानतेहैं, परंतु उनका ऐसा मानना विज्ञानवेत्ताओं द्वारा सर्वथा प्रमाण विरुद्ध सिद्धहोगया है।

विक्रम सम्वत् १२४९ में महाराज पृथ्वीराज को उस मुहम्मदगोरीसे हारना पडा जिसको इन्होंने कईवार पकड २ कर दयावश हो जीवदान दिया था।

हम यहा सूक्ष्मरूपसे उस आर्यवीरकी दशा और इस यवनके वर्तावका दिग्दर्शन कराते हैं जिससमय पृथ्वीराज पराजित हुए शहाबुद्दीन इनको गजनी अपने साथ लेगया वह केवल इस क्षत्रिय कुलकमल दिवाकरको ही नहीं लेगया था किन्तु भारतवर्षसे जितना धन वह लेजासका अपने साथ लेगया था। भारतभूमि क्‍यू भिखारी न हो तो कौनहो जिसके गर्भसे इसी प्रकार कितनेही वार जिन यवनोंने असंख्य धन लेकर अपने देशोंको समृद्धशाली बनाया था, उन्हीमें एक यह गोरीभी था। यदि वह इसवीर राजपूतसे वैसाही वर्ताव करता जैसा इसने उसके साथ किया था, तो भी ठीक होता परन्तु नहीं जब वह उनको गजनी लेगया तब वहा एक सुनसान कारागृहमें बंदकरके इनकी दोनों आखोंमें तप्तलोहे की सलाई फिरवा दी, तबसे महाराज अंधे हो उसीमें अपने जीवनके दिन बिताते थे भारतवर्ष केवल वीरही नहीं उत्पन्न करता था वरन। धर्मवीर, और नीतिज्ञभी इसने अनेक उत्पन्न किये है इसमें स्त्री पुरुषोंका प्रेम यहातक था कि स्त्रियें पतिके मरनेपर उसके शवके स प्रेमके आवेशमें आकर भस्म हो जातीथीं इसी प्रकार एक मित्र दूसरे मित्रके लिये तन मन, धन अर्पण कर देताथा, देखो दुर्योधन और कर्णकी कैसा मित्रता थी कि जबसे इनकी मित्रता हुई एक दूसरेके लिये तन, मन, धन अर्पण किये हुएथे, अपने मित्रके शत्रुओं को अपनेही शत्रु समझते थे महाभारत जैसा रणरंगम रचाथा और दुर्योधन कर्णके बलपर ही था. केवल पाण्डवोंके आक्षेप परही कर्णको तिलकधारी राजा बनाया था।

इसी प्रकार की मित्रता महाराज पृथ्वीराज और चंदकविमें थी चाहे पृथ्वीराज उनको अपना आश्रयी (आधीन) ही क्यों न समझते हों किन्तु यह कविवर उनको हृदयसे प्रेम करताथा; इसीलिये जब महाराज कैदमें होकर गजनी जानेलगे तो यह चंदकवि भी उनके प्रेमके बंधनमें बंधकर उनके साथ चला और गजनी पहुंचा; देखिये जिस क्षत्रियवीरने अपने इस शत्रुको कितनेही वार जीवदान दियाथा आज उसी यवन शत्रुने इनके साथ बडा कुत्सित वर्ताव कर अपनी कुनीतिका परिचय दिया।

परन्तु कहते हैं कि इन्हीं कविवर चंदकी सहायतासे पृथ्वीराज अंतमें अपना बदला लेसके थे।

भारतवर्षके सौभाग्य का तारा पृथ्वीराजके साथही अस्त हुआ और सैकडों

वर्ष अनेक धार्मिक विपत्तियें और बाधायें सहनेके पश्चात् सम्वत् १९१४ में यह भारतवर्ष राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरियाके हाथमें आया, तबसे लोगोंको अपनी उन्नति करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ ॥

श्रीमान् महाराज "स्वायंभुव" मनुसे लेकर महाराज युधिष्ठिर पर्यंतका इतिहास महाभारतादि ग्रंथोंमें लिखाहै । हमको चाहिये कि सब स्थानोंपर महाभारत और रामायणकी कथाओंका प्रचार करायें और इनकी एक २ प्रति उत्तम भाषाटीकाओं सहित हमारे पुस्तकालयोंमें रखवायें जिससे सबलोग इनको देखसकें. इनकी उत्तम भाषाटीका आजकल लाहोरमें "हिन्दी [आर्य] प्रचारिणी कम्पनी" द्वारा बनवाई गई है और "भारतवर्षका प्राचीनइतिहास" नामकी एक छोटीसी पुस्तक प्रोफ़ेसर रामदेवजीने बनाईहै वह सबको मँगवाकर देखनी चाहिये, यह पुस्तक भी लाहोरसे मिलसक्ती है ॥

महाराज युधिष्ठिरके पश्चात् एकसौ सोलह कई प्रतापी राजा हुएहैं यथा—परीक्षित महाराज और महाराज चन्द्रगुप्त, महाराज अशोक; महाराज विक्रम, जिनका सम्वत् अबतक चलता है; महाराज पृथ्वीराज, महाराज भोज जो इतने विद्याप्रेमी थे कि जिनके राज्य में रखसे लेकर रावतक सब बडे विद्वान और कवि होते थे यहांतक कि लकडहारे भी संस्कृत कवितामें ही बातचीत किया करतेथे; महाराज रानाप्रतापसिंहजी जो मेवाड के राजा थे और जिन्होंने आजन्म कष्ट उठाकर भी अपनी कन्या यवनराजाको नहीं दी; छत्रपति शिवाजी, जिन्होंने मुसल्मान बादशाह औरंगजेबको कई बार नीचा दिखाया, यहांतक कि अंतमें मुसल्मानी राज्य की जडको खोखला करडाला, महाराज रणजीतसिंहजी जिनको पंजाबकेसरी भी कहते हैं । इत्यादि प्रसिद्ध २ वीर राजा हुये हैं ।

जब हम सब लोग आर्य राजाओंके इतिहास पढेंगे तो स्वयं वीर, उत्साही और धार्मिक बननेकी चेष्टा करेंगे; जिससे भारतवर्षका गौरव और यश बढेगा।

यूरोपियन लोगोंने जो हमारे भारतवर्षका प्राचीन इतिहास लिखाहै वह कई अंशों में ठीक नहीं है; जैसा कि प्रोफेसर रामदेवजीने अपने "भारतवर्षके प्राचीन इतिहास" में प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है ।

यूरोपियन लोगोंने जो मध्यएशियासे हमारा भारतवर्षमें आना बतायाहै वह मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रंथोंसे विरुद्धहै.हम तो सृष्टिकालसेही इस भारतकी पवित्रभूमिमें निवास करते आयेहैं.

[भारतहितैषी अन्य विद्वानो के भारतोन्नतिविषयक विचार]

अब हम कुछ भारतहितैषी विद्वानोंके सुधार विषयक विचारोंको प्रगट करके अपनेइस लेख को समाप्त करते हैं ।

[क] "यह बतला देना आवश्यकहै कि परोपकार करना प्रत्येक वर्णका कर्तव्यहै। हर्बर्ट स्पेंसर इत्यादि पश्चिमीय विद्वानोंने भी हमारे देशकी वर्णव्यवस्था को बहुत उत्तम मानाहै।पूर्वकालमें चारोंवर्णोंके बालक एक वर्ण होकर गुरूके संनिकट विद्याध्ययन करतेथे । गुरुके कुलसे निकलनेपर वर्णव्यवस्थाके अनुसार गृहाश्रमी बनकर अपने २ कर्तव्यका पालन करते थे । ब्रह्मचर्याश्रममें ज्ञान,विज्ञानका अभ्यास किया जाताहै, गृहस्थाश्रम में संसारका अनुभव प्राप्त होता है, वानप्रस्थाश्रममें तपसे ब्रह्मज्ञानको मांजा जाता है और संन्यासाश्रममें ब्रह्मज्ञानका अनुभव तथा प्रचार करते हुए परमपिता की गोदको प्राप्त किया जाता है।"

" "ब्राह्मण–वास्तवमें सम्पूर्ण जगत का स्वामी है. तप, ज्ञान, विद्या, स्वार्थत्याग, निर्भयता ब्राह्मणोंके प्रधान गुणहैं.ये बातें जिनमें नहींहैं, उन्हें अपनेको ब्राह्मण नहीं कहलाना चाहिये न्यायाध्यक्ष निस्पृह ब्राह्मणही होना चाहिये । जहां निस्पृहता और त्यागहै वहीं सत्य और न्याय है । प्राचीन आर्योंमें न्यायाध्यक्ष और मंत्री ब्राह्मणही होते थे और इसीलिये वह निष्पक्ष होकर दूधका दूध और पानीका पानी कर देते थे, परन्तु जबसे प्रतिष्ठा से धनका सम्बन्ध करदिया गया, तभीसे न्यायाध्यक्ष लोग लालची होगये, यहाँतक कि खुल्लमखुल्ला घूस (रिश्वत) चलने लगी । प्राचीन कालमें, महाराज दशरथ के समान चक्रवर्ती राजा विश्वामित्र ब्राह्मणकी खड़े होकर प्रतिष्ठा करते थे । प्रधान मंत्री वशिष्ठ ब्राह्मण हीथे । राजा दशरथ सदा उनकी सम्मति को शीश झुकाते थे । श्रीरामचन्द्रजीके बनको जाने और दशरथके देहान्त होने पर भी राजविद्रोह नहीं हुआ। इसका कारण यही था कि राज्यके रक्षक सच्चे ब्राह्मण थे।"

"क्षत्रिय–समाज की बाहुके तुल्यहै, यह सारे शरीरकी अपने बलसे रक्षा करताहै। सारांश यह है कि क्षत्रियोंको शारीरिक बल, चातुर्य, राजनीतिज्ञता, प्रजाहितैषिता, युक्ति, शक्ति इत्यादि गुणों की आवश्यकता है"।

शरीरमें मेदे (पक्वाशय) का जो कामहै वही समाजमें वैश्य का काम है । वैश्यको चाहिये कि शिल्पशास्त्रके अनुसार सब पदार्थों को उपयोगी बनाकर सारे समाजकी आवश्यकताओं की पूर्ति करे । वैश्यके लिये अर्थशास्त्रका जानना भी बड़ा आवश्यक है. वास्तवमें ब्राह्मण से शिल्पशास्त्र, कृषिविज्ञान, अर्थविद्या जानकरही वैश्यों को व्यवसाय में पड़ना चाहिये, तभी वे अपने काममें सफलता प्राप्त करसके हैं।"

"शूद्रों का काम सेवा करनाहै.उनसे यदिआप उचित रीति से काम लेंगे तो आपको सुख संतोष होगा,उन्हें आप यदि पीड़ित करेंगे तो स्वयं आपको भी कष्ट होगा । चलना जब कभी होगा तब पावों केही बलसे होगा। शिरसे या बाहुसे या पेटसे चलना कदापि नहींहोसक्ता है । शूद्र वहीहै जिसमें मास्तिष्क [विचार]बल नहीं, जो मूर्ख और अज्ञानी है । अतएव निर्बुद्धि मनुष्योंको शूद्र मानना चाहिये.

आज कल वर्णव्यवस्था ठीक न होनेके कारण सब अंग अपना २ काम नहीं करते इसीसे अशांति है."पौषशु० २ सं० १९७०को वृन्दावनमें एक अनुभवी और

भारतहितैषी प्रोफेसरद्वारा वर्णव्यवस्थापर दियेहुए व्याख्यानका सार.

(ख) "जबतक शिक्षा सर्वत्र नहीं फैलेगी देशसुधार कभी नहीं होसक्ता। अनपढही ठगाई में बहुत आते हैं, और इनमेंही कुमति बहुत फैलरही है। न केवल रोटी कमानेके लियेही शिक्षाकी आवश्यक्ता है, किन्तु धर्मके लिये शिक्षाकी आवश्यक्ता उससे अधिक है आज ... लोग अपनेधर्मसे अनजान ही मिलते हैं, बहुतसे ब्राह्मण ... गायत्री का करना तथा जपना तो दूररहा बहुतसे ... विष्णुको अपना इष्टदेव लिखाया फिर जब उनसे दूसरी बार पूछा गया तो भूलगये। धर्मकी सीमा केवल यही रहगई है, कि स्नान करके सूर्यके सामने हाथ जोड लिये, या सत्यनारायण की कथाको सुनलिया या श्राद्ध में ब्राह्मण जिमादिये इत्यादि और यहभी सबमें नहीं।"

"वेदोंका गौरव सबमें है, परन्तु वेदोंमें क्या है यह सामान्य पुरुष क्या, पंडित भी कम जानते हैं जब धर्मशिक्षाका ऐसा अभाव है तो देशमें धर्मकी वृद्धि कैसे होसक्ती है इसलिये अब मातापिता अपनी सततिको केवल विद्यालय और कालिजों में भेजकर संतोष न करलें किन्तु अपने धर्मानुकूल शुद्धाचारसे उनके लिये आदर्श बनें।"

"अनपढ पुरोहितपाधोंको कदापि दान न दिया जाय। समय २ पर महानुभावों के चरित्रोंपर व्याख्यान दियेजावें, रामायण, महाभारतादिकी कथा कराना बडा उपयोगी होगा और लडकोंसे सन्ध्योपासना कराई जावे।"

"स्त्रीशिक्षा की दशा बहुतही शोचनीय है। भारतकी स्त्रियां जिनके चरित्र इतिहासों और पुराणों मे मिलते हैं, वह सब पढीलिखी सुशिक्षिता होती थीं, और सुशिक्षिता होनेके कारणही वे अपने पतियों की आपत्कालमें सहायता करसक्तीथी। सती, सावित्री, दमयती, और द्रौपदी आदि कभी भी वह कष्ट, जो उन्होंने अपने पतियों के साथ वा उनके वियोगमें उठाये न उठातीं, यदि उनको धर्म में पूरी २ शिक्षा न होती। देशसुधार मे स्त्रियोंका मूढ रहना एक बडा प्रतिबन्ध है न उनसे सन्तानकी शिक्षा होसकी है न वे दूसरोके धोखेसे बच सक्ती हैं॥"

"इसदेशमें सदा लाखों रुपयो का दान होता है, परन्तु इसमें बहुतसा दुराचारियो आलसियो और मूर्खोंकी पुष्टि के हेतु जाता है, विद्या या धर्मकी वृद्धि में बहुत कम खर्च कियाजाता है॥"

"कुम्भ पर एक २ अखाडे या मढली वालों को देशके एक २ गृहस्थ दश २ बीस २ सहस्र रुपये देता है, वे महीनोंतक सकडो मनुष्यों को जो उनके मत मे हों, खूब माल खिलाते और आनन्द भोगते हैं। इस दानसे कौनसे धर्म या विद्याकी वृद्धि होती है, (अर्थात् किसीकीभी नहीं) तीर्थोंके पडे या गुसाई और ब्राह्मण जिनको खूब दान मिलता है, वे गरीब बिचारे यात्रियो की परिश्रमकी कमाई, मद्यपान और वेश्याओं मे प्राय. उडादेते है। वल्लभकुल के आचार अदालतोंतक मे प्रगट हुए हैं। चौबे कहते हैं कि औरोंकी विद्या और चौबोंकी महाविद्या, जिसका अर्थ यह है कि भगपीना, लड्डूखाना इत्यादि (महाविद्याहैं) जब देशमें दान देनेवालों और दान लेने वालोंकी यह व्यवस्था है तो धर्मकी हानि नहीं तो और क्या होगा? इसका सुधार यही है कि पात्र कुपात्र का विचार करके दान दियाजाए।"

"जातिके सुधारकी बडी आवश्यक्ता है, पृथ्वीभरमें किसी न किसी रीतिसे जाति भेद तो सर्वत्र है, परन्तु यहा जैसा तो कहीं नहीं है अबसब विचारशील पुरुषोंकी इसबातमें सम्मति है कि जबतक एकही जातिके वह छोटे २ भेद, जो स्थान या धन्धेके कारण हुए हैं, दूर न होंगे तो सुधारकी कोई आशा नहीं होसक्ती। इस समयके जातिके भेद और उनके अवातर भेद जितने द्रोह और द्वेष के कारण है और वृद्धि और सुधारके मार्ग में जैसे प्रतिबन्धक हैं वह सब को प्रतीत है।"

"समुद्रयात्रा" वेदो और इतिहासो के समय मे निषिद्ध नहीं थी। अब यह योग्य चाहिये कि हर जाति के लोग अपनी २ एक सभा बनावे और उस जाति के जो मनुष्य समुद्रयात्रा करें और विदेशमें आचार व्यवहार को शुद्ध रक्खें तो वह जाति से न निकाले जावें" ॥ धर्मविचार पृष्ट १११ से ११७ ॥

समीक्षा—और जिन्होंने अपना आचार भ्रष्ट कर लियाहो उनको प्रायश्चित कराके जातिमें लेवें. हिन्दू (आर्य) जाति, संख्या में ऐसेही घटरही है, यदि प्रायश्चितद्वारा अपने भाइयोंको अपनेमें न सम्मिलित करेंगे तो वह शनैः२ विधर्मी बनते जाएंगे, जिससे हमको भविष्यमें बडी हानि होगी. इसलिये हिंदू (आर्य) जाति के नेताओंको इसबातपर ध्यान देना अत्यावश्यक है ॥ [पूर्ण]



अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थंप्राहुरव्ययम् ॥
छन्दांसियस्यपर्णानियस्तंवेदसवेदवित् ॥

दोहा–ऊरधजरशाखातरे, अविनाशीअश्वत्थ ॥
वेदपत्रजोजानई, सोजानैसबअर्थ ॥ १ ॥

वैराग्य बिना ज्ञान और भक्तिका होना बडा दुर्लभ है इसलिये इस अध्यायमें भगवानने वैराग्य सहित ज्ञानका उपदेश दिया है और यह कहचुके हैं कि "मांच योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते" अर्थात् जो अनन्य भक्तिसे मेरी उपासना करते हैं वे मुक्त होजाते हैं सो जबतक वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है तबतक न तो अनन्य भक्ति होती है और न ज्ञानही होता है, इसीसे वृक्षके रूपकालंकारसे संसारके स्वरूपका वर्णन भगवान् करते हैं कि हे अर्जुन ! क्षर अक्षरसे भी ऊर्ध्व अर्थात् सबसे ऊंचे और सबसे उत्कृष्ट पुरुषोत्तम भगवान् इसके मूल हैं इससे इस संसारको ऊर्ध्वमूल कहते हैं अर्थात् इस संसारकी जड ऊपरको है, इसमें नीचेकी ओर कार्यरूप विरूप हिरण्यगर्भादिक तथा मनुष्यसे कीट पतंग पर्यन्त सब वृक्ष ा शाखा हैं इसीसे इसे अधःशाख कहते हैं यह संसाररूप अश्वत्थ वृक्ष अविनाशी है क्योंकि बार बार नष्ट होकर फिर बनजाता है इससे इसका नाशही नहीं है, वेद इसके पत्ते हैं अर्थात् वैदिक कर्मोंके करनेसे यह संसार चलता है और जैसे वृक्षके पत्तोंकी छायामें आश्रय लेकर संसारी मनुष्य त्रितापसे सुरक्षित होजाते हैं जो इस संसार वृक्षके ऐसे रूपको जानता है वही वेदको जानता है ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वंप्रसृतास्तस्यशाखागुणप्रवृद्धा-
विषयप्रवालाः ॥ अधश्चमूलान्यनुसंतता-
निकर्मानुबन्धीनिमनुष्यलोके ॥ २ ॥

दोहा–गुणसींचीसाखाबढी, विषयापल्लवभाय ॥
जरफैलीकर्मनबँधी, मनुजलोकमेंआय ॥ २ ॥

संसार वृक्षकी ये शाखा सतोगुणादि रूप जलसे सींचे जानेके कारण ऊपर और नीचे चारों ओर फैलती चली गई हैं इनमें इन्द्रियोंके शब्दरूप रसादि विषय नई कोपलोंके समान हैं अर्थात् जो सात्विक कर्म करते हैं वे देवता और देवताओंसे भी उत्तम योनियोंको प्राप्त करके ऊर्ध्व लोकोंमें निवास करते हैं और जो नीचकर्म करनेवाले हैं वे पशुआदि नीच योनियोंमें पडकर अधोलोकमें निवास करते हैं और मनुष्य लोकमेंभी अच्छे बुरे कर्मोंके अनुसार मूल फैले हुए हैं अर्थात् जो जैसा कार्य करता है उसीके अनुसार वह सुख दुःखादिको भोगता है ॥ २ ॥

नरूपमस्येहतथोपलभ्यतेनान्तोनचादि-
र्नचसंप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनं सुविरूढमू-
लमसङ्गशस्त्रेणदृढेनछित्वा ॥ ३ ॥

दोहा–आदिअंतनहिंजानिये, स्थानरूपनहिंजाहिं ॥
दृढअसंगहथियारलै, दुसहमूलतरुढाहिं ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य इस संसारमें रहते हैं वे इस वृक्षके यथार्थ

रूपको नहीं जान सकते हैं कारण यह है कि, इसका मूल उपरको है और शाखा नीचेको हैं- इससे ऊपर नीचेका ज्ञान अल्प बुद्धिवाले मनुष्योंको नहीं होसकता है, इसका आदि अंत जाननेमें नहीं आ-सकता है और न इसकी स्थितिका कोई अनुमान करसकता है ऐसे इस दृढ मूलवाले वृक्षका छेदन महा कठिण है क्योंकि इसकी जडें बडी विस्तृत और गहरी हैं अहंकार और ममताका त्यागही एक ऐसा दृढ कुठार है जिससे इस संसारका छेदनकर पार हो सकते हैं ॥३

ततःपदंतत्परिमार्गितव्यंयस्मिन्गतान-
निवर्तन्तिभूयः ॥ तमेवचाद्यंपुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिःप्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

दोहा–चाहिकरेताठौरकी, फिरैनताकोपाय ॥
सृष्टिभईजापुरुषते, ताकीशरनजुआय ॥ ४ ॥

तदनन्तर सांसारिक मूल कारण स्वरूप ईश्वरपदकी खोजकरना उचित है उस पदको प्राप्त होकर फिर संसारमें आवागमन नहीं होता है (उस पदके ढूंढनेका उपाय है) कि जिस पदसे इस पुरातन संसारकी प्रवृत्ति हुई है उसी आदिपुरुषकी शरणमें जाकर अनन्य भक्ति करै ॥४

निर्मानमोहाजितसङ्गदोषा अध्यात्मनि-
त्याविनिवृत्तकामाः ॥ द्वन्द्वैर्विमुक्ताःसुख
दुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाःपदमव्ययं तत् ५

दोहा–कामसंगअरुमोहतजि, अध्यातमरतिहोय ॥
सुखदुखतजिताकौंलहै, अविनाशीपदजोय ॥५॥

उस पदकी प्राप्तिके लिये दूसरा उपाय कहा जाता है कि वे मनुष्य जिनके मानोपमान वा मोह नहीं है, जिनके स्त्रीपुत्र धन आदिकी आसक्ति जाती रही है, जो दिन रात अध्यात्मज्ञानमे लीन रहते हैं, जिनकी सब सांसारिक वासना दूर होगई है, जो सुख दुःख, शीत उष्ण, हानि लाभ आदि द्वन्द्वोंसे छूट गये हैं ऐसेही ज्ञानीजन उस अव्यय पदको पाते हैं ॥ ५ ॥

नतद्भासयतेसूर्योनशशाङ्कोनपावकः ॥
यद्गत्वानंनिवर्त्तन्तेतद्धामपरमंमम ॥ ६ ॥

दोहा–पावकरविअरुचंद्रमा, ताहिकरैनप्रकाश ॥
फिरैनताको पाइकै, सोहै मेरो वास ॥ ६ ॥

अब उस पदका विशेषरूप कहते हैं कि–हे अर्जुन ! जहां सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका प्रकाश नहीं पहुंचता है और जो कोई इस पदको प्राप्तभया है वह संसारमें आने जानेसे छूट जाता है वही हमारा तेजोमय स्वरूप है वहा सुख दुःखादिका कामही क्या है ॥ ६ ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतःसनातनः॥
मनःषष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति

दोहा–जीवलोकमेंजीवजे, अविनाशीमोरूप ॥
मनहिआदिइंद्रियानिको, खैंचतप्रकृतिहिचूप॥

हे अर्जुन! जीवलोकमें यह जीव मेराही अंश है, यही जीव अविद्याके कारण सनातन अर्थात् संसारी कहलाता है और सुषुप्ति तथा प्रलयके समय प्रकृतिमें लीन होकर रहता है इस तरह मन और पाच ज्ञानेंद्रिय इन छःओंके सासारी भोगोंकेलिये खैंचता है, इसका तात्पर्य

यह है कि विवेकी जीव तो मुझमें लीन होकर आवागमनसे निवृत्त होजाता है और अविवेकीको संसारमें बारंबार जन्म लेना पड़ता है।

शरीरंयदवाप्नोतियच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानिसंयातिवायुर्गन्धानिवाशयात्

दोहा–जाशरीरकोतजतयह, जहांकरैसंबंध ॥
इंद्रीईश्वरसंगरहै, वायुसंगज्योंगंध ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! जब यह देह और मन और इन्द्रियोंका स्वामी कर्मोंकी वासनासे दूसरा धारण करता है अथवा जब मरनेके समय वर्तमान देहको छोडता है तब अपने प्रथम देहके मन और इन्द्रियोंको साथ लेकर दूसरे शरीरमें ऐसे प्रवेश करता है जैसे वायु पुष्पवाटिकासे गंधोंको ग्रहण कर अन्य स्थानोंमें चला जाता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रंचक्षुःस्पर्शनञ्चरसनंघ्राणमेवच ॥
अधिष्ठायमनश्चायंविषयानुपसेवते ॥९॥

दोहा–श्रवणनेत्रअरुनासिका,त्वच अरु रसनाजानि
इनकोगहिमनुसंगले, लहतजीवविषयानि ॥९

हे अर्जुन ! यह जीव कान, आंख, त्वचा, जिव्हा, नासिका और मन इ[illegible] आश्रय लेकर विषयोंको भोगता है ॥ ९ ॥

यहां यह शंका है कि जीवका यह देहपरिवर्तनरूप कर्म सबको क्यों नहीं दिखाई देता है? इसपर कहतेहैं कि–हे अर्जुन! मूढ मनुष्य इस बातको नहीं देख सकतेहैं कि-यह जीवात्मा इस गुणयुक्त देहको कैसे छोडता है और दूसरे देहमें रहकर विषयोंका उपयोग कैसे करता है? इन बातोंको केवल वेही देख सकते हैं जिनके ज्ञानचक्षु खुलगयेहैं

यतंतोयोगिनश्चैनंपश्यंत्यात्मन्यवस्थितम्
यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनंपश्यंत्यचेतसः

दोहा–योगीश्वरयतनहिकिये, देखतहैंहियमांहि॥
मूरखजतनहिकरतहैं, जीवहिदेखतनांहि॥११॥

हे अर्जुन! योगीजन समाधिस्थ होकर यत्न करतेहुए अन्तःकरणमें वर्तमान इस आत्माके पृथक् स्वरूपको देखते हैं और अकृतात्मा यत्न करनेपरभी इसके स्वरूपको नहीं देख सकते हैं क्योंकि उनका चित्त शुद्ध नहीं होता है ॥ ११ ॥

यदादित्यगतंतेजो जगद्भासयतेऽखिलम्॥
यच्चंद्रमसियच्चाग्नौतत्तेजो विद्धिमामकम्

दोहा–तेजजुहैआदित्यमें, भासतसबसंसार॥
चंद्रमांहिअरुअग्निमें, सोमेरानिरधार॥१२॥

हे अर्जुन! सूर्यका वह तेज संपूर्ण संसारको प्रकाशित करता है, और जो तेज चन्द्रमा और अग्निमें वर्तमान है उसको मेराही तेजजान

गामाविश्यचभूतानिधारयाम्यहमोजसा
पुष्णामिचौषधीःसर्वाःसोमोभूत्वारसात्मकः

दोहा-धारतहौंजबजीवकों, पैठिपुहमिपरवेस ॥
पोषतहौंहीऔषधी, व्हैरसशशिकेभेस ॥ १३

हे अर्जुन ! मैंही पृथ्वीमें प्रवेश करके सब चराचर प्राणियोंको धारण करता हूं और रसात्मक सोम होकर सम्पूर्ण औषधियोंका पोषण करताहूं अर्थात उन्हें बढताहूं ॥ १३ ॥

अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः
प्राणापानसमायुक्त.

दोहा-मैंहींजठराअगिनिव्है, सबदेहिनिमेआय
प्राणअपानसहाइसों, जारतअन्नपचाय ॥१

हे अर्जुन ! मैंही वैश्वानर अर्थात् जठराग्नि होकर प्राणियोंके देहमें प्रवेश करके प्राण और अपान वायुको संग ले भक्ष्य, भोज्य, चोष्य लेह्य इन चारों प्रकारके अन्नोंका पचाता हूं ॥ १४ ॥

सर्वस्यचाहंहृदिसन्निविष्टोमत्तःस्मृतिर्ज्ञा-
नमपोहनंच ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वे
दांतकृद्वेदविदेवचाहम् ॥ १५ ॥

दोहा-सबकेहियमेंहौंरहों, मोतेंज्ञानविचार ॥
वेदसबैमोकोकहैं, मैंतिनकोकरतार ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! मैंही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे श करताहूं इसीलिये मेरेहीद्वारा पहिले किये हुए विषयोंका होता है इन्द्रियोंके संयोगसे रूपादि विषयोंका ज्ञानभी

होता है, इन सबका विचारभी मेरेही द्वारा होता है, मैंही सब वेदोंसेजा नने योग्यहूं और वेदांतका कर्ता तथा वेदोंका जाननेवालाभी मैंहीं हूं

द्वाविमौपुरुषौलोके क्षरश्चाक्षरएवच ॥
क्षरःसर्वाणिभूतानिकूटस्थोऽक्षरउच्यते ॥

दोहा—लोकमांझहैंपुरुषहैं, क्षरअरुअक्षरभाय ॥
क्षरशरीरकोकहतहैं, अक्षरजीवगिनाय ॥१६॥

अब अपना सर्वोत्कृष्टत्व दिखाते हैं कि—हे अर्जुन! इस लोकमें क्षर और अक्षर दो प्रकारके पुरुषहैं, इसमें जो ब्रह्मादिक देहधारी हैं वे क्षर हैं और जो कूटस्थ अर्थात विकाररहित स्थित है वह अक्षर है ॥१६॥

उत्तमःपुरुषस्त्वन्यःपरमात्मेत्युदाहृतः ॥
योलोकत्रयमाविश्यबिभर्त्यव्ययईश्वरः ॥

दोहा—उत्तमपुरुषसुऔरहैं, परमातमकोभेव ॥
तीनलोकसोधरतुहैं, करिकरिनिजपदसेव १७॥

इन दोनोंमें एक उत्तम पुरुष और है जिसे परमात्मा कहतेहैं, वहीअविनाशी ईश्वर तीनों लोकोंमें प्रवेश करके त्रिलोकीका पालन करताहै ॥

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तमः॥
अतोऽस्मिलोकेवेदेचप्रथितःपुरुषोत्तमः

दोहा—क्षरअरुअक्षरतेपरे, हौंसबतेअधिकाम ॥
तातेवेदरुलोकमें पुरुषोत्तम ममनाम॥ १८॥

अब भगवान् अपने पुरुषोत्तम नामकी यथार्थता दिखाते हैं कि-हे अर्जुन! क्षर जो जड पदार्थ है उनसे मैं उत्तमहूं और अक्षर जो चेतन पदार्थहैं उनको मैं प्रेरणा कर्ता हूं इसलिये अक्षरसेभी उत्तमहूं इन्हीं हतुओंसे मैं लोक वेद दोनोंमें पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूं ॥ १८॥

योमामेवमसंमूढोजानातिपुरुषोत्तमम् ॥
ससर्वविद्भजतिमांसर्वभावेनभारत ॥ १९

दोहा–पुरुषोत्तममोनामको, जोजानैंइहिभाय ॥
सोसबविधिमोकोंभजै, सकलज्ञाननिधिमाय

हे भारत ! जो पूर्वोक्त लक्षणोंसे निश्चयात्मक बुद्धिद्वारा मुझको पुरुषोत्तम जानता है वह सर्व ज्ञाता संपूर्ण भावोंसे मुझको भजताहै।

इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ॥
एतद्बुद्ध्वाबुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्चभारत ॥

दोहा–छिपीबातग्रंथनरही, सोतोसोंकहिदीन ॥
पारथसोजानैयहै, सोइबुद्धिप्रवीन ॥ २० ॥
ज्ञाननहीं बैरागबिनु, औरभक्तिनहिंहोय ॥
तबैज्ञानबैरागयुत, कह्योरहैसोजोय ॥ १ ॥
इहांप्रकटकरिकैकह्यो, जगतवृक्षकोरूप ॥
छेदैंदृढबैरागसों, पावैज्ञानअनूप ॥ २ ॥
बरन्योआनंदरामनैं, यहपुरुषोत्तमयोग ॥
कीनोपरउपकारहै, रहोसुखीसब लोग ॥ ३ ॥

हे निष्पाप अर्जुन ! इसप्रकार बहुतही गुप्त रखनेके योग्य यह शास्त्र मैंने तुझे सुनाया है,इसको जान लेनेसे मनुष्य बुद्धिमान् और और कृतकृत्य होजाताहै ॥ २० ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां पुराणपुरुषोत्तमयोगोनामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

❋ विचार दर्पण ❋

दर्शन ५.



वर्तमान समयका भूगोल वृत्तान्त.

मनुष्यको संसार का यथावत् ज्ञान तभी प्राप्त हो सक्ताहै जब कि वह भलीप्रकार तिहास और भूगोलको जानता हो हम भारतवर्षके इतिहासका दिग्दर्शनमात्रतो पिछले दर्शनमें कराचुके, अब भूगोलसम्बन्धी कुछ मूल बातें लिखतेहैं । स्मरण रहे कि भूगोल विद्याकी यथावत् ज्ञानप्राप्तिमें निम्नलिखित विद्याओंके जाननेकी आवश्यकता है। [१) ज्योतिष (अस्ट्रोनोमी) (२) भूगर्भविद्या (जिओलोजी] [३] रसायन शास्त्र (केमिसटरी) (४) वायुशास्त्र मिटिओरोलोजी (५) वनस्पतिशास्त्र [बोटैनी] (६) जीवजन्तु शास्त्र [जुओलोजी) (७) मनुष्यजाति विज्ञान (ऐनथ्रोपोलोजी) (८) इतिहास [हिसटरी]

भूगोल विद्या चार भागोंमें बांटी गई है । (१) गणितभूगोल,जिसमें सूर्यके चारों ओर पृथ्वीकी चाल आदिका वर्णन है (२)प्राकृतिकभूगोल,जिसमें पृथ्वीकी ऋतुओं और उसके तलपर जो २ पहाड वनस्पति आदि हैं उनका वर्णन है । [३] प्रान्तिक भूगोल,जिसमें पृथ्वीके भिन्न२ देशों और नगरोंके नाम, क्षेत्रफल आदिका वर्णन है। (४) व्यापारिक भूगोल, जिसमें भिन्न २देशोंकी व्यापार सम्बन्धी वस्तुओंका तथा उनको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर लेजानेके मार्गों आदिका वर्णन है ।.

हमारा जो पृथ्वी मंडल है वह नारंगीकीभाँति गोलहै, इसी लिये इस समस्त पृथ्वीमंडल का नाम "भूगोल,, रक्खा गया है ।

परमात्माकी सृष्टिमें ऐसे अनेक अर्थात् अनंत गोले आकाशमें घूमरहेहैं;इनसबको,

मिलाकर "ब्रह्माड" कहते हैं; हमारे पूर्वज ऋषिगण योगबलद्वारा ब्रह्माडका बहुतकुछ वृत्तांत जानते थे, परंतु जब इस समयके हमलोग सो पीछे पंचानवे मनुष्य अपनी मातृभाषाका लिखना पढनाही नहीं जानते, तो ब्राह्मांडका वृतांत कैसे जान सकेहैं। हमारे ब्राह्मण और साधुलोगोंने योगविद्याका अभ्यासही छोड दिया; उनमेंसे अधिकाश तो भारतवर्षके भिन्न२ प्रांतोंका नामतक नहीं जानते, जो बडे शोक की बात है।

पृथ्वीमंडलके बीचों बीच उत्तर दक्षिणको यदि एक शंकु [कीली] निकालाजाय तो वह सातसहस्र नो सो मील लंबा होगा और पूर्वपश्चिम निकाला जाय तो सातसहस्र नौसौ छब्बीस मील लंबा होगा अर्थात् उत्तर दक्षिणवाले शंकुसे छब्बीस मील बडा। पृथ्वीकी परिधि 'घेर' चौबीस सहस्र नौसौ मील लम्बी है। पृथ्वी भी एक ग्रह है। सब ग्रहोंमें प्रधान ग्रह सूर्य है, उसके चारोंओर दूसरे ग्रह पृथ्वी, चन्द्रमा शुक्र, शनि आदि घूम रहे हैं।

सूर्य एक आगका गोला है यह चारों ओर प्रकाश और तेज देरहा है। उसकी गर्मीमेंसे पृथ्वी केवल बाईस करोड सत्ताइस लाखवों भाग लेती है, तो भी यह उष्णता (गर्मी) सर्वजीव जन्तुओंकी आयुकी रक्षाके लिये पर्याप्त है। सूर्य एकवर्षमें जो उष्णता आकाशमें विस्तारित करता है, उसका अनुमान इसीसे होसक्ता है कि यदि पृथ्वी जैसे बडे साठ कोयलेके टुकडे जलाये जायें तो भी वह उतनी उष्णता नहीं दे सकेंगे।

पृथ्वी सूर्यके चारों ओर अपने ध्रुवपर घूम रही है. इस धुरीके उत्तरके सिरेको उत्तरध्रुव और दक्षिणके सिरेको दक्षिणध्रुव कहते हैं. इन ध्रुवोंपर चारोंओर हिम (वर्फ) ही हिम फैलीहुई है. वहां तक पहुँचनेकी चेष्टा अब कीजारहीहै। कुछ पुरुषार्थीलोग उनके आसपास पहुचे भी हैं, परंतु पूरा पता अभीतक नहीं लगाहै कि उनके आगे क्या है।

[जल भाग]

पृथ्वीमंडलमें तीन भाग जल है और एकभाग स्थल है. जलके पांच बडे भाग हैं, जिनके नाम निम्न लिखित हैं :-

(१) पैसिफिक अर्थात् शांत समुद्र, अमेरिका और एशियाके बीचमें है, यह बहुत बडा समुद्र है अर्थात् पृथ्वीमंडलका तिहाई भागघेरे हुए है और शेषके चारों समुद्रोंके बराबरहै इस का क्षेत्रफल आठकरोड वर्गमीलहै।) इसमें वायुका बल अधिक नहीं रहता है; इसकी गहराई सत्ताईस सहस्र नौसौ तीस फीट मापीगईहै.

(२) एटलांटिक अर्थात् वायुप्रधान महासागर, यूरोप, आफ्रिका, और अमेरिकाके बीचमें फैला हुआ है। यहांका वायु बडा प्रबल है, इसीलियेजहाजोंको यहां अधिक तूफान का भय रहता है, इसके किनारेकी भूमिका क्षेत्रफल बावन

सहस्र मील है और इसका क्षेत्रफल दोकरोड पचास लाख मील है ।

(३) भारतवर्षीयमहासागर, यह समुद्र एशियाके दक्षिण भागमें फैला हुआ है;इसके उत्तरमें अधिक भाग भारतवर्षका है. क्षेत्रफल दोकरोड वर्गमील है ।

(४) उत्तरीयध्रुव महासागर, प्रायः हिमाच्छादित है अर्थात् इसमें वर्फही वर्फ फैल हुआ है, इसका पूर्णवृत्तात अभीतक नहीं ज्ञातहुआ. क्षेत्रफल पचासलाख वर्गमील समझाजाता है।

(५) दक्षिणीयध्रुवमहासागर, प्रायः हिमाच्छादित है; इसका वृत्तांत भी पूरा २ नहीं जानागयाहै, इसका क्षेत्रफल अस्सीलाख वर्गमील समझा जाता है ।

[स्थलभाग]

स्थलके निम्नलिखित छः बडे भाग. हैंः—

(१) एशिया, इसका क्षेत्रफल एक करोड साठ लाख वर्ग मीलहै, स्थल भागमें यह सबसे बडा भाग है ।

(२) यूरोप, इसका प्राचीन नाम हरिवर्षदेश था,इसका क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील है. यह सबसे छोटास्थल भाग है ।

(३) अफ्रिका, इसका क्षेत्रफल एककरोड बीसलाख वर्गमील है।

(४) दक्षिण अमेरिका, इसका क्षेत्रफल सत्तर लाख वर्गमील है ।

(५) उत्तरअमेरिका, इसका क्षेत्रफल नव्वेलाख वर्गमील है ।

(६) ओशीनिया, (बहुत से बडे टापुओंका समूह) इसका क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील है ।

इसप्रकार समस्त स्थल भाग का क्षेत्रफल पांच करोड बीसलाख वर्गमील हुआ.

मनुष्यसंख्या—समस्त पृथ्वीमंडलकी मनुष्यसंख्या संवत् १९५७की मनुष्यगणनाके अनुसार, एकअर्ब बावनकरोड समझी जाती है, इनमें ईसाई पैंतालीस करोड़हैं. और बौद्ध पैंतालीस करोड हैं.

हिन्दू (आर्य) बीस करोड हैं.मुसलमान उन्नीसकरोड हैं. यहूदी अस्सीलाख और अन्य २ मतावलंबी लोग उन्नीस करोड हैं ।

समीक्षा—हिन्दू(आर्य लोग दिन प्रतिदिन घटते जातेहैं; अतः हिन्दू (आर्य) जातिके हितैषी लोगोंको चाहिये कि अपनी शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सुधारें और अपने अछूत भाइयोंकी ओर भी ध्यानदें।

भाषायें—पृथ्वीमंडलपर लगभग चारसहस्र भाषायें बोली जाती हैं; परन्तु सातभाषायें जिनको चार २ करोडसे अधिक मनुष्य बोलते हैं; चीनी, अंग्रेजी,हिन्दी जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, और रशियन भाषायें हैं।

(१) एक मील चौडी एक मील लम्बी भूमि एक१ वर्गमील कहलातीहै ।

पृथ्वी के महाद्वीप ।

पृथ्वीके उसभागको,जिसमें बहुतसे देशहों " महाद्वीप" कहते हैं. इससमय पृथ्वीमंडलमें एशिया आदि छः महाद्वीप हैं जैसा कि– ऊपर वर्णन किया गया है.

१—एशिया.

मनुष्य संख्या छियासी करोडहै अर्थात् पृथ्वीके मनुष्यों से आधी से अधिक है, यह गणना सन् १९०१ अर्थात् सम्वत् १९५७की मनुष्यगणना के अनुसार है, लंबाई पूर्व पश्चिम छः सहस्र सातसौ मील और चौडाई उत्तर दक्षिण पांच सहस्र तीनसौ मील है। सम्पूर्ण क्षेत्रफल एक करोड साठलाख वर्गमील है ॥

एशियाके देश.

१—भारतवर्ष;यहांका राज्य अंग्रेजीगवर्नमेंट करती है; क्षेत्रफल सत्तरलाख तेहत्तर सहस्र वर्गमील है; और मनुष्यसंख्या उन्तीस करोड चवालीस लाख है.

२—अर्बस्तान; यहांका राज्य सुल्तानरूम करते हैं. क्षेत्रफल बारहलाख वर्गमील है, और मनुष्यसंख्या साठ लाख है॥

३—एशियाइरूम; यहांका राज्य सुल्तान रूम करते हैं. क्षेत्रफल सात लाख वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या दो करोड बासलाख है ॥

४—ईरान- यहांका राज्य राजा और प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं. क्षेत्रफल छ.लाखअट्ठाईस सहस्र वर्गमील है, और मनुष्यसंख्यापचानवे लाख है.

५—अफगानिस्तान; यहांका राज्य एक राजा द्वारा होता है; क्षेत्रफल दो लाख पचास सहस्र वर्गमील है और मनुष्यसंख्या पैंतालीसलाख है॥

६—सीलोन (सिंहलद्वीप); यहांका राज्य अंग्रेजी गवर्नमेंट करती है, क्षेत्रफल चौबीस सहस्र वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या छत्तीस लाख है ॥

७—श्यामदेश; यहांका राज्य स्वतंत्र एक राजाही करता है, क्षेत्रफल दो लाख चवालीस सहस्र वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या पचास लाख है ॥

८—फ्रेंचइंडोचाइना; इसका राज्य फ्रेंचगवर्नमेंट करती है. क्षेत्रफल दो लाख छप्पन सहस्र वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या एक करोड सत्तर लाख है ॥

९—चीन; यहांका राज्य प्रजातंत्र है. क्षेत्रफल बियालीस लाख सतत्तर सहस्र वर्गमील है, और मनुष्यसंख्या तियालीसकरोड पैंतालीस लाख है ॥

१०—एशियाइरूस; यहां रूसका जार स्वतंत्र राज्य करता है. क्षेत्रफल बासठलाख इकीस सहस्र वर्गमील है, और मनुष्यसंख्या एक करोड बानबे लाख है ॥

२-यूरोप.

मनुष्य संख्या-उनतालीसकरोड नव्वेलाख है. लम्बाई पूर्वपश्चिम चौतीससौ मील है. चौड़ाई-उत्तर दक्षिण चौबीस सौ मील है.
भारतवर्ष से तीनगुणा बडा है.सम्पूर्ण क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील है ॥

यूरोपके देश.

१-ग्रेटब्रिटेन और आयर्लेंड अर्थात् अंग्रेजोंकादेश,जिसे हम लोग विलायतकहते हैं. जहां राजा और प्रजाप्रतिनिधि सभा राज्य करते हैं. इनका क्षेत्रफल एकलाख इक्कीससहस्र तीनसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चारकरोड उन्नीस लाखहै ॥

२-फ्रान्स; यह राज्य प्रजातंत्र है क्षेत्रफल दोलाख सातसहस्र वर्गमील है और मनुष्य संख्या तीन करोड नवासी लाख है ॥

३-स्विट्जरलेंड-यहांका राज्य प्रजातंत्र है, क्षेत्रफल पंद्रह सहस्र नौसौ वर्गमील है और मनुष्य संख्या तेतीसलाख है ॥

४-जरमनी-यहांका राज्य राजा और प्रजा प्रतिनिधि सभा द्वारा चलाया जाता है क्षेत्रफल दोलाख आठसहस्र आठ सौ वर्गमील हैं, मनुष्यसंख्या छःकरोड दोलाख है

५ आस्ट्रियाहंगेरी-यहांराजा और प्रजाप्रतिनिधि सभा राज्य करते हैं क्षेत्रफल दो-लाख पैंसठ सहस्र वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चारकरोड सत्तर लाख है

७-यूरोपियनरूस-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं. क्षेत्रफल उन्नीस लाख छिआनवे सहस्र सातसौ वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या दस करोड चोहत्तर लाख है

७-इटेली यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं, क्षेत्रफल एक लाख दश सहस्र पांचसौ वर्गमीलहै और मनुष्यसंख्या दश करोड चोहत्तर लाख है ॥

८-स्पेन-यहां का राज्य राजा और नाम मात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल एक लाख चौरानवे सहस्र सातसौ वर्गमील है; मनुष्यसंख्या एक करोड छियालीसलाख है ॥

९-पोर्तगाल-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं;क्षेत्रफल पैंतीस सहस्र चारसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चौवन लाख है ॥

१०-नार्वे-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधि सभा करते हैं; क्षेत्रफल एकलाख चौवीस सहस्र चारसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या बाईसलाख है

११-स्वीडन-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं

क्षेत्रफल एकलाख बहत्तर सहस्र आठसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या इक्यावन लाख है ॥

१२–डेन्मार्क–यहा का राज्य राजा और नाम मात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल पंद्रह सहस्र तीनसौ वर्गमील है और मनुष्य संख्या चौबीस लाख है ॥

१३–हालेंड-यहा का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं क्षेत्रफल बारह सहस्र छःसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या पचपन लाख है ॥

१४–बेलजियम-यहा का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करतेहैं, क्षेत्रफल ग्यारह सहस्र तीनसौ, वर्गमील है और मनुष्यसंख्या बहत्तर लाख है ॥

१५–रोमानिया–यहा का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं, क्षेत्रफल पचास सहस्र सातसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या उनसठ लाख है ॥

१६–बल्गेरिया-यहा का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल सैंतीस सहस्र दोसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या सैंतीस लाख है॥

१७–सर्विया–यहां का राज्य, राजा और नाममात्र की, प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं;क्षेत्रफल अठारह सहस्र छःसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चौवीस लाखहै ॥

१८–ग्रीस [यूनान]यहांका राज्य राजा और नाममात्र की, प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल पचीससहस्र वर्गमील है और मनुष्य संख्या चौवीस लाख है ॥

१९–यूरोपियन टर्की–यहां का राज्य राजा और प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल पैंसठसहस्र तीनसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या इकसठ लाख है ॥

३–अफ्रिका.

यह महाद्वीप उत्तरदक्षिण पांचसहस्र मील लम्बा है और पूर्वपश्चिम चारसहस्र छःसौ मीलचौडा है। इसका क्षेत्रफल एक करोड बीसलाख वर्गमील है ।

मनुष्यसंख्या–पंद्रहकरोडसे बीसकरोड समझी जाती है ।

इसदेशमें प्रधानतः अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, बेलजियम, इटालियन, पोर्चूगीज, स्पेनिश,टर्की गवर्नमेंट राज्य कररही हैं ।

प्रधान २ देशोंके नाम–इजिप्ट, मोरोको, ट्रिपोली, अलजीरिया, सोडान, काँगो, ट्रान्सवाल आदिहैं ।

यहांपर प्रधानता यहांके निवासी, हब्शी आदि काले रंगके लोगोंकी है. यूरोपियनलोग राज्यहोनेपर भी बहुत थोडे हैं; इसदेशके बहुतसे भागोंमें जंगली लोगही बसते हैं जो प्रायः नग्न अवस्थामें रहते हैं ।

४--उत्तरीय अमेरिका.

क्षेत्रफल—नब्बेलाख वर्गमील है ।

मनुष्यसंख्या-दशकरोड तीनलाख है;जिनमें गौरांग लोग सातकरोड पचासलाख हैं प्राचीन निवासी पचासलाख, हब्शीलोग एककरोड, चालीसलाख और अन्य लोग नब्बे लाख हैं ।

प्रसिद्ध २ देश—कनेडा, ग्रीनलेंड, यूनाईटेड स्टेट्स, मेकसिको आदि हैं ।

५—दक्षिण अमेरिका.

क्षेत्रफल—सत्तरलाख वर्गमील है ।

मनुष्यसंख्या—दोकरोड चौबीसलाख है ।

प्रसिद्ध २ देश—पानामा कोलंबिया, ग्याना लापलाटा, चिल्लीआदिहैं ।

६—ओशीनिया.

पैसीफिकमहासागरमें बहुतसे टापू हैं; जिन में से प्रधान मैलेशिया, आस्ट्रेलिया, मैलेनेशिया, माइक्रोनेशिया और पोलीनेशिया हैं; इनको मिलाकर ओशीनिया बोलते हैं.

इनसबका क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील से अधिक है अर्थात भारतवर्षसे तीनगुणा अधिकक्षेत्रफल है।और इन सबमें मनुष्यसंख्या चारकरोडके आसपास है।

वर्तमानभारतवर्षके, भूगोलका

संक्षिप्त वर्णन.

सीमा—उत्तरमें हिमालयपर्वत जो पृथ्वीके समस्त पर्वतोंसे ऊंचा है । पूर्वमें बंगालकीखाडी और चीन, दक्षिणमें भारतवर्षका महासागर जिसको " इंडियन ओशन " कहते हैं; पश्चिममें अफगानस्थान और अरबका समुद्र है लंबाई उत्तरसे दक्षिण तक और चाडाई पूर्वसे पश्चिमतक समानही है अर्थात्अठारह २ सौ (१८००) मील है.

क्षेत्रफल—पद्रहलाख वर्गमील है ।

मनुष्यसंख्या-इकतीस करोड चौबीस सहस्र है; इनमें हिन्दू (आर्य) लोग तेईस करोड हैं और शेष इतर लोग हैं.

पर्वतश्रेणिया—मुख्य २ ये हैं:—हिमालयपर्वत, विंध्याचलपर्वत, सतपुरापर्वत, अरवलीपर्वत जिसकी सबसे बडी चोटी "आबू" कहलाती है; पश्चिमीघाट और पूर्वीघाटके पर्वत.

नदियाँ-मुख्य२ ये हैं:-सिन्धनदी जो भारतवर्षमें सबसे लंबी नदी है । झेलम, चनाव, रावी, ब्यास, और सतलज ये पांच बडी नदियाँ सिन्धनदीमें मिलती हैं. यह सब पंजाब (पंचाल) देशकी प्रधान नदियां हैं ।

ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना, नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी क्रमशः बडी २ नदियां हैं; ऐरावती नदी बर्मामें है ।

देशके विभाग-इससमयका भारतवर्ष दो भागोंमें विभक्त है

[क] ब्रिटिशइंडिया अर्थात् भारतवर्षका वह भाग, जिसका शासन मुख्यतया सरकार अंग्रेजी" के हाथमें है. इस भागका क्षेत्र फल अनुमान दशलाख ,,अठानवे सहस्त्र वर्गमील है. मनुष्यसंख्या चौवीसकरोड है.

(ख) भारत वर्षका वह भाग जिसका शासन मुख्यतया देशी राजा महाराजाओं के हाथमें है ।

देशी छोटे बडे रजवाडोंकी संख्या छःसो छयालीस (६४६) है ।

इनका क्षेत्रफल-चारलाख दोसहस्त्र वर्गमील है और मनुष्य संख्या छः करोड इकहत्तर लाख (६७१०००००) है

ब्रिटिश इंडियाके भागोंके नाम

इनमेंसे प्रत्येक भाग "प्रान्त"कहलाता है, सब प्रान्त यह हैं. बंगाल, मद्रास, मंबई संयुक्तप्रान्त आगरा और अवध,पंजाब,आसाम और चटगाम, वर्मा, मध्यप्रदेश और बरार, संयुक्तप्रान्त बिहार और उडीसा, कुर्ग, अजमेर (मेवाड).

देशीरजवाडोंके नाम

मुख्यतया ये हैं. नेपाल, हैदराबाद, मैसूर,काश्मीर, जम्बू,बडोदा. कोल्हापुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, इन्दोर, ग्वालियर, रीवाँ, भोपाल, भरतपुर करोली, झींद, नाभा, पटियाला, सिरोही,कोटा, बूंदी.

समीक्षा-जलवायु और ऋतुओंकी अपेक्षासे भारतवर्ष पृथ्वीके सब देशोंमें सर्वशिरोमणि माना गया है यहापर सब देशोंकी ऋतुयें, सब देशोंकी उत्तम २ वनस्पतियें प्राप्त हैं. हमारे प्राचीन ऋषियोंनेभी इसीदेशका निवासउत्तम मानाहै.

श्लोक-सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ॥ तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ मनुः२।१७॥ (अर्थ) सरस्वती और दृषद्वती जो देवनदियां हैं, इन दोनोंके मध्यका भाग देवोनिर्मित है अर्थात् देवताओं द्वारा उत्तम बनाया हुआ है इसदेशको मुनिजन ब्रह्मावर्त देश कहते हैं ।

समीक्षा—पूर्व कालमें ये दोनों नदियाँ कुरुक्षेत्रमें थीं

श्लोक-तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्य क्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ मनुः अ. २ ॥ श्लो.१८

(अर्थ) उसदेशमे रहनेवाले ब्राह्मणादिका जो परंपरासे आया हुआ आचार, अर्थात् रहने सहनेका ढग है उसीको सदाचार कहते हैं. समीक्षा–आशय यह है कि श्रेष्ठ पुरुष "ब्रह्मावर्त" निवासियोंके तुल्यही आचरण करें ॥

श्लोक–कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः । एषः ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनंतरः । २। १९।

(अर्थ) कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल शूरसेन (मथुरा प्रान्त) ब्रह्मर्षिदेश है ॥

(श्लोक) आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ म० २। २२ ॥

(अर्थ) पूर्वके समुद्रसे पश्चिम और पश्चिम के समुद्रसे पूर्व तथा हिमालय और विंध्याचलके बीचके देशको "आर्यावर्त" कहते हैं।

समीक्षा–इस देशका यह नाम सनातन है।
आर्यजन सदासे इसमे वास करते आये हैं इसी इससे देशका नाम आर्यावर्त हुआ । जो लोग कहतेहैं कि हिन्दू (आर्य) लोग यहांपर मध्यएशिया या ईरानसे आये वह प्रमाणविरुद्ध हीकहते हैं.

श्लोक–एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वे मानवाः ॥ मनुः अ० २ श्लोक २० ॥

(अर्थ) इन उपरोक्त ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षिदेश तथा आर्यवर्त देशोमे जो लोग ब्राह्मणादि द्विजातिवर्ग हैं उनके सकाशसे पृथ्वीके सब मनुष्य अपने २ कर्तव्य और आचारविचारकी शिक्षा ग्रहणकरें.

समीक्षा--पाठकविचार सतेहैं कि जिससमय यह श्लोक बना है उससमय यह भारतवर्षदेश कैसा उन्नतथा, यहातक कि संसारभरके सब मनुष्योंको अपने २ आचार व्यवहार इस आर्यावर्तदेश निवासियोंका सा करना पडता था और अब वह समय आगया है कि हमारे देश निवासियोंमे, (विशेषकर शिक्षित नवयुवकोंमें) रहनसहनमे विदेशी लोगोंका अनुकरण करनेकी बड़ी इच्छारहतीहै और इस विदेशी आचारको वह फैशनके नामसे पुकारते हैं ॥

इसका कारण यह है कि वह अपनी रीति, नीति और धर्मसे अत्यन्त अनभिज्ञ हैं. मनुष्यका धर्म उसके भाषा, भेष, भावसे पहिचाना जासका है और यह तीनोंही उसकी प्रतिष्ठाके कारणभी हैं । इनकी उन्नतिसे देशकी उन्नति, और अवनति से अवनति होती है; इसके लिये प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं. प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जबतक भारतवर्ष उपरोक्त तीनों बातोंको धारण किये हुएथातबतक इतनी हीनदशा इस देशकी नहीं हुई थी, कि उन्नति होना तो दूर रहा, रही सही धर्मरूपी गाठकी पूंजीभी खो बैठनेका भय उत्पन्न होगया

आजकलके नवयुवक इन बातोंकी ओर ध्यान नहीं देकर अपनी उन्नति विदेशी भेष ग्रहण करनेमें ही मानते हैं. कोट, पैंट और हैटको धारणकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं, जिसका फल यह होता है कि काकमयूरन्याय की भांति अपनी समाजसे भी तिरस्कृत होते हैं, और अभिलषित भी हास्यका कारण बनते हैं ।

जिस समय भाषा, भेष, भाव यहतीनों ही मनुष्यके बदल गये, उस समय समझलेना चाहिये कि उसको अपने धर्म और देश के गौरव की कुछ परवाह नहीं रही और न उससे अपने देश अथवा समाज का कुछ लाभही होसक्ता है। यद्यपि भारतवर्षके कितने ही नवयुवकों में भाषा तथा भेषका परिवर्तन आरंभ हुआ है किन्तु धर्मभाव का परिवर्तन अभी तक नहीं हुआ है; यह देशका सौभाग्य ही समझना चाहिये। जिस दिन यह पिछला परिवर्तन होना प्रारंभहोजायगा उसदिन भारतवर्ष की न जाने क्या गति होगी।

इसलिये नवयुवकों से हमारा अनुरोध है कि वह अपनी उन्नति अपने धर्म, सभा और भेषकी उन्नतिमें ही समझें। [पूर्ण]



अथ षोडशोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अभयंसत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः॥
दानंदमश्चयज्ञश्चस्वाध्यायस्तपआर्जवम् ।

दोहा–अभयहियेकी शुद्धता, ज्ञानयोगथिर होय॥
दानयज्ञतपवेद रुचि, दमऋजुसरलता जोय ॥१॥

पन्द्रहवें अध्यायमें जो भगवान्ने कहाहै कि मेरे कहे हुए ज्ञानको जो जानलेतेहैं वे बुद्धिमान और कृतकृत्य होजाते है इसलिये इस अध्यायमें तत्वज्ञानके अधिकारी और अनधिकारी मनुष्योंका वर्णन करतेहुए उस तत्त्वज्ञान के अधिकारके निमित्त देवीसंपदाका वर्णन करते हैं कि हे अर्जुन ! निर्भयता, चित्तकी प्रसन्नता, आत्मज्ञानमें निष्ठा, सुपात्रको दान, इन्द्रियोंका निग्रह,पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान, वेदोंका पठनपाठन, तपश्चर्या, नम्रता ॥ १ ॥

अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागःशांतिरपैशुनम्
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वंमार्दवंह्रीरचापलम्॥२

दोहा–अनहिंसाअरु सत्यसव, रहैक्रोधविनुनित्य
त्यागशांतिवहुविधरचै, दोषनआनैचित्त ॥१॥
दयाकरसवजंतुपर, तजिचपलाईभाय ॥
लाजकर्महृदयमृदु, व्यर्थक्रियाछुटिजाय॥२॥

किसीको पीडा न पहुंचाना, हितकारी सत्यभाषण करना, क्रोध न करना, त्याग अर्थात् प्रिय अप्रिय वातोंको छोड देना, शान्ति

(चित्तमें उद्विग्नता न होने देना) निन्दा न करना प्राणिमात्रपर दया, स्थिर चित्तता, स्वभावमें कोमलता, अकरणीय कर्मोंसे लाज करना चंचलता को छोड देना ॥ २ ॥

तेजःक्षमाधृतिःशौचमद्रोहोनातिमानिता
भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३

दोहा-तेजछमाशुचिधर्म धृति,तजे द्रोहअभिमान
दैव संपदा जिन लही, तामें एगुण जान ॥ ३ ॥

तेज, क्षमा, धृति (दुःखमें चित्तको स्थिर रखना), शौच (मनको बुरी बातोंसे पवित्र रखना), किसीसे द्रोह न करना, अपनेमें पूज्य होनेका अभिमान न करना, ये छब्बीस दैवीसंपदा हैं, ये उसी मनुष्य के होती हैं जिसका आगेको कल्याण होनेवाला है ॥ ३ ॥

दंभोदर्पोऽभिमानश्चक्रोधःपारुष्यमेवच ॥
अज्ञानंचाभिजातस्यपार्थसंपदमासुरीम्

दोहा-दंभदर्पअज्ञानरिस, अरु अज्ञानकठोर ॥
जामेंएगुणतीनलहि, असुरसंपदाघोर ॥ ४ ॥

दंभ (धर्मकी ओटमें कपट व्यवहार रखना), दर्प (धन और विद्याका गुमान) अभिमान, अति निष्ठुरता और अज्ञान ये छः आसुरी संपदा उसके होती हैं जिसका अकल्याण होनहार है ॥४॥

दैवीसंपद्विमोक्षायनिबंधायासुरीमता ॥
माशुचःसंपदंदैवीमभिजातोऽसिपांडव ॥

दोहा–दैवसंपदाते मुकति, बंधआसुरीजोहि ॥
सोचेजनि अर्जुन भई, दैवसंपदा तोहि ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! जो दैवीसंपदासे युक्त हैं वे तत्त्वज्ञानके अधिकारी हैं और इस तत्त्वज्ञानसे मोक्ष होजाता है और जो आसुरी संपदासे युक्त हैं वे बन्धनमें पडते हैं (यह सुन अर्जुनको संदेह हुआ कि मैं तत्त्वज्ञानका अधिकारी हूं वा नहीं ? अर्जुनके मनकी यह बात जान श्रीकृष्ण बोले) कि हे अर्जुन ! तेरा जन्म तो दैवीसंपदाके अभिमुख है तू शोच मत कर ॥ ५ ॥

द्वाभूतसर्गौलोकेऽस्मिन्दैवआसुरएवच ॥
दैवोविस्तरशःप्रोक्तआसुरंपार्थमेशृणु ॥६॥

दोहा–दैवआसुरीभेदतें, द्विविधि सृष्टि है एहु ॥
प्रथम कही विस्तारसों, अब दूजी सुनि लेहु६

हे अर्जुन ! इससंसारमें दो प्रकारकी प्राणियोंकी सृष्टि है, एक दैवी, दूसरी आसुरी इनमेंसे दैवीका तो विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया है, अब आसुरीका वर्णन सुन ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचजनानविदुरासुराः ॥
नशौचंनापिचाचारोनसत्यंतेषुविद्यते ॥७

दो०–अविधि औरविधि जगतकी,आसुरजानतनाहिं
सत्यशौचआचारशुभ,नहिं एगुणतिनमाहिं ॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य आसुरी स्वभाववाले हैं सांसारिक धर्मोंमें प्रवृत्त होना नहीं जानते हैं और न उनसे छूटना जानते हैं, न उनमें पवित्रता है न आचार है और न सत्यही है ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठंतेजगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतंकिमन्यत्कामहैतुकम् ॥८

दोहा--वेदपुराणजुईश्वरहिं, एनहिंजानतमूढ ॥
मैथुनते संसार है, काम हेतु यह गूढ ॥ ८ ॥

हे अर्जुन! जो आसुर हैं वे यह कहते हैं कि यह जगत् असत्य है, इसको कोई आधार नहीं है और यहभी कहते हैं कि यह जगत् अनीश्वर है इसका कर्ता कोई नहीं है और अपरस्परसंभूत अर्थात् स्त्रीपुरुषके संयोगसे उपजा है इस लिये स्त्रीपुरुषका जो काम है सोई प्रवाहरूपसे इस जगतका कारण है, यह नास्तिकोंका मत है ॥ ८ ॥

एतांदृष्टिमवष्टभ्यनष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणःक्षयायजगतोऽहिताः ॥

दोहा-अल्पबुद्धिहै, नष्ट जे, यहै दृष्टिगहिलेत ॥
हिंसायुत कर्मनिकरै, रिपुजयक्षयकेहेत ॥ ९ ॥

हे अर्जुन! नष्ट जिनके आत्मा होगये हैं ऐसे अल्पबुद्धि अनीश्वरवादी जगतको ऐसी दृष्टिसे देखते हैं के क्रूर कर्मोंके करनेवाले जगतके हितकर्ता नहीं हैं, ये तो जगतके नष्ट करनेके लिये उत्पन्न होते हैं ॥

काममाश्रित्यदुष्पूरंदंभमानमदान्विताः
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तंतेशुचिव्रताः

दोहा-भजत अपूरन कामको, दंभमान मदमाय
गहन बुराईमोहतें, मांस और मदखाय ॥१

हे अर्जुन ! जो असुर हैं वे दंभ, मान और मदसे युक्त होकर ऐसी कामनाओंके लिये जो अत्यन्त कष्ट उठानेपरभी पूरी नहीं हो सकती है क्षुद्र देवताओंकी आराधनामें तत्पर हो जाते हैं और मोहमें पडकर मारण मोहन, उचाटनादि असद्ग्राह मंत्रोंको जपते है जिनसे ऐहिक वा पारमार्थिक कुछ लाभ नहीं होता है, ऐसे लोगोंका आचरण बडा घृणित होता है ॥ १० ॥

चिंतामपरिमेयांचप्रलयांतामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमाएतावदितिनिश्चिताः ॥

दोहा–जाको कछु प्रमान नहिं, ताचिंतामें लीन ॥
कामभोग ह्वैहै भलो, निश्चै मानतदीन ॥११॥

हे अर्जुन ! आसुरी, स्वभाववाले ऐसी चितामें फंसे रहते हैं जिसका कुछ प्रमाण नहीं है और जिसका अंतभी जीवनके अन्तके साथही होता है और कामभोगको सुखकी परमावधि और परम पुरुषार्थ मान उसीमें लगे रहते हैं ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाःकामक्रोधपरायणाः॥
ईहंतेकामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥

दोहा–आशाफांसनिसोबँधे, कामक्रोधचितचाह
जोरत धन अन्यायकरि, कामभोगनिबाह ॥

अनेक प्रकारकी असंख्य आशारूपी फांसियोंमें बंधेहुए काम और क्रोधके आधीन होकर कामनाओंके उपभोगके लिये अनक तरहके अन्याय कर करके धनादिकोंका संचय करते हैं ॥ १२ ॥

इदमद्यमयालब्धमिमंप्राप्स्येमनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपिमेभविष्यतिपुनर्धनम् ॥

दोहा-यह मैं पायो है अबै. लहैं मनोरथ और ॥
यहधन मेरे गेहमें, जोरौंगो बहुठौर ॥ १३ ॥

वे रात दिन ऐसे झगडोंमें फँसे रहते है कि 'आज मुझको यह मिला' 'मेरा यह मनोरथ पूरा हुआ' 'आज मेरेपास इतना धन है' 'अब इतना होजायगा' ॥ १३ ॥

असौमयाहतःशत्रुर्हनिष्येचापरानपि ॥
ईश्वरोऽहमहंभोगीसिद्धोहंबलवान्सुखी ॥

दोहा-यहवैरीमैंहीहन्यो. करौंऔरकोअंत ॥
ईश्वरहौंभोगीहुहौं, सुखीसिद्धबलवंत ॥ १४ ॥

आज मैने अमुक शत्रुको मारलिया है, कल औरोंको मारूंगा, मैही ईश्वर हूं, मैंही भोगी हूं तथा सिद्ध, बलवान् और सुखी हूं॥१४

आढ्योऽभिजनवानस्मिकोऽन्योऽस्तिसदृशोमया ॥
यक्ष्येदास्यामिमोदिष्यइत्यज्ञानविमोहिताः॥

दोहा-मैंहौंधनीकुलीनहौं. औरनमोहिसमान ॥
यजौंदवैंमोदहितहौं, मोहितव्हैअज्ञान ॥ १५ ॥

मैंही धनाढ्य हूं, उत्तम कुलमें जन्म है तौ मेरा है, मेरे समान और दूसरा कौन है? मैंही यज्ञ करूंगा, मैंही दान दूंगा और मैंही आनन्द करूंगा. ऐसे२ विफल मनोरथ आसुरी बुद्धिवाले अज्ञानी किया करते हैं

अनेकचित्तविभ्रांतामोहजालसमावृता:॥
प्रसक्ताःकामभोगेषुपतंतिनरकेऽशुचौ ॥

दोहा—उनकोमनबहुभ्रमतुहै, मोहजालपरिनित्त,
परतघोरअतिनरकमें. कामभोगकेहित्त ॥१६॥

हे अर्जुन ! इस प्रकार इनका चित्त मोहजालरूपी अनेक मनोरथोंमें फंसाहुआ भ्रमता रहता है और ये कामोपभोगोंमें आसक्त रहनेके कारण घोर अपवित्र नरकोंमें पडते हैं ॥ १६ ॥

आत्मसंभाविताःस्तब्धाधनमानमदान्विताः
यजंतेनामयज्ञैस्तेदंभेनाविधिपूर्वकम् ॥

दो०-निजबडियाईनितकहत,नवत न धनअभिमान
नाममात्रयज्ञहिकरत, दंभीविनाविधान ॥१७॥

हे अर्जुन ! ऐसे मनुष्य अपनेलिये सबसे श्रेष्ठ मानते हैं, किसीको झुकतेतक नहीं हैं तथा धन, मान और मदसे युक्त होनेके कारण बिना बिधिके ऐसे नाममात्र यज्ञ करते हैं. जिनमें ऊपर धर्मका आडंबर हो और भीतर कपट भराहो ॥ १७ ॥

अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंचसंश्रिताः ॥
मामात्मपरदेहेषुप्रद्विषंतोऽभ्यसूयकाः ॥

दोहा—अहंकारबलदर्पअरु, कामक्रोधगहिलेत ॥
द्वेषीनिजपरदेहमें, मोकों तेदुखदेत ॥१८॥

हे अर्जुन ! ये आसुरीबुद्धिवाले अहंकार, बल, दर्प, काम और

क्रोधके आश्रित रहते हैं और अपनी तथा पराई देहोंमें अन्तर्यामी-रूपसे रहनेवाले मुझ परमेश्वरसे द्वेष रखते हैं और निंदा करते हैं॥

तानहंद्विषतःक्रूरान्संसारेषुनराधमान् ॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ॥

दोहा–मोद्रोही अरुक्रूरको, पापीअधमनिहारि ॥
जगतआसुरीयोंनिमें, तिनहिंदेतहौं डारि १९

हे अर्जुन! मुझसे द्वेष करनेवाले उन नराधमोंको मैं इसी संसारकेबीच आसुरीयोंनियोंमें बराबर डालताहूं ये बडे क्रूर अर्थात दुष्ट स्वभाववालेहैं और ऐसे अशुभ हैं कि इनकी सूरत देखनेसेभी पाप लगताहै॥

आसुरींयोनिमापन्नामूढाजन्मनिजन्मनि
मामप्राप्यैवकौन्तेयततोयांत्यधमांगतिम्

दोहा–जन्मजन्ममेंमूढते, होतजुआसुरआय ॥
मोकोतेपावतनहीं, परतअधमगतिजाय॥ २०

हे अर्जुन! ये मूढ जन्म जन्ममें आसुरीयोंनिको पातेहैं मुझको कदापि नहीं पाते और इस तरह सदा अधमगतिमें पडे रहते हैं ॥ २०॥

त्रिविधंनरकस्येदंद्वारंनाशनमात्मनः ॥
कामःक्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत्॥

दोहा–नरकद्वारविधितीनहैं, करतआतमकोनाश
कामक्रोधअरुलोभपुनि,इन्हैंछांडिसुखवास

हे अर्जुन ! काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नरकके द्वार हैं, येही आत्मा कोनष्ट कर देते हैं, इससे हरएकरीतिसेइन तीनोका त्यागना उचित है ॥ २१ ॥

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥
आचरत्यात्मनःश्रेयस्ततोयातिपरांगतिम् २२

दोहा–तीन्योद्वारज्ञुनर्कके,तिनतेछुटैजुकोय ॥
यतनकरैकल्यानको, तबहिपरमगतिहोय २२

हे कौंतेय ! जो मनुष्य नरकके द्वार इन तीनों काम,क्रोध,लोभको छोड देताहै वही अपनी आत्माके कल्याणसाधनका उपाय करता है और अन्तमें परमगति पाता है ॥ २२ ॥

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्यवर्ततेकामकारतः ॥
नससिद्धिमवाप्नोतिनसुखंनपरांगतिम् २३

दो-जो शास्त्रहिविधिछोडिकै, करतक्रियाबसकाम
सिद्धलोकनहिंपरमगति, नहिंसुखमेंविश्राम ॥

जो मनुष्य शास्त्रोक्तविधियोंको छोडकर स्वेच्छाचारसे काम करता है उसको न तो सिद्धि मिलती है,न सुख मिलताहै और न मोक्ष मिलती है अर्थात उसके हाथसे यह लोक और वह लोक दोनोंजातेरहतेहैं

तस्माच्छास्त्रंप्रमाणंतेकार्याकार्यव्यवस्थितौ
ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तंकर्मकर्तुमिहार्हसि

दोहा—तातेकाजअकाजमें, ताकोंवेदप्रमाण ॥
कर्मनकरितूंजानिकै, तिनकोंविधिसुविधान ॥
वेदकहैसुपरोक्षको, मोकोंदेवबताय ॥
मेरेईकर्मनिकरै, मेरीआज्ञापाय ॥ १ ॥
तजैआसुरीसंपदा, दैवी संपति पाय ॥
ते नर मुक्ति लहै यही, कह्यो सोरहेंऽध्याय ॥२॥
दैवासुर संपत्तिको, कह्यो विभागविचार ॥
तातेसात्विककोकरयो, तत्वज्ञानअधिकार ३॥
दैवासुरसंपतिवरनि, आनँदरामविशेष ॥
बिनवैं बनवारीजिसों, हियमेंनटवरभेष ॥ ४ ॥

इन ऊपर कहेहुए हेतुओंसे, हे अर्जुन ! कर्तव्य और अकर्त्तव्य कर्मोंकी व्यवस्थामें शास्त्रको प्रमाण समझकर शास्त्रोक्त विधिसे कर्म करना उचित है ॥ २४ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां दैवासुरसंपद्विभागयोगो नामषोडशोऽध्यायः ॥१६॥

❋ विचार दर्पण ❋

दर्शन ६.

(मुसल्मान, ईसाईमत समीक्षा)

हम कुछ बातें सत्यार्थप्रकाशसे उद्धृत करके इस दर्शनमें लिखते हैं, जिनको पढकर बुद्धिमानों को स्वयं अनुमान होगा

हमारे हिन्दू [आर्य] धर्मग्रन्थों, गीतादिके वाक्योंके सामने यह कैसे युक्तिहीन और विज्ञानविरुद्ध ठहरते हैं।

कुरानके वाक्य ।

[१] निश्चय तुह्मारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथ्वीको छः दिनोंमें उत्पन्नकिया फिर करार पकडा अर्शपर । मंजिल २ सिपारा८सूरत ७आयत ५३ ॥ ५४ ॥

समीक्षक— "भला जो छःदिनों में जगत् को बनावे और अर्श अर्थात् ऊपरके आकाश में सिंहासनपर आराम करे वह सर्वशक्तिमान् और सर्व व्यापक कैसे है " ॥

[२] क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हमने शयतानों को ऊपर काफिरोंके बहकाते हैं उनको बहकानेपर ॥ मं. ४ सि.१६सू.१९आ.८१

[समीक्षक]—जब खुदाही शयतानों को बहकानेके लिये भेजता है तो बहकानेवालों का कुछ दोष नहीं होसक्ता । और न उनको दंड होसक्ता है और न शयतानोंको, क्योंकि इय खुदाके हुक्मसे सब होता है.

[३]फिर निश्चय तुम दिन कयामतकेउठाये जाओगे।। मं.४ सि.१८सू.२३आ.१६

[समीक्षक]"कयामत तक मुरदे कबरमेंरहेंगे व किसी अन्य जगह।जो उन्होंमें रहेंगे तो सडे हुए दुर्गन्ध शरीरमें रहकर पुण्यात्माभी दुःखभोग करेंगे यह न्याय नहीं अन्याय है,,॥

[४] और जिसदिन कि फटजावेगा आसमानसाथ बदलीके॥मं.१९ सू.२५आ. २४

(समीक्षक) यह बात कभी सच नहीं होसक्ती कि आकाश बदलोंके साथ फटजावेगा भारतवर्षका हिन्दू (आर्य) जो साधरणभी पठित है जानता है कि आकाश कभी फट नहीं सक्ता, क्योंकि आकाश निराकार और शून्य और अनंत अनादिहै वह कोई फटनेकी नहीं है"॥

[५] और जबकि आसमान फट जावे। और जब तारे झड जावें और जब दर्याचीरे जावें और जब कबरें जिलाकर उठाईजावें ॥
मं. ७ सि.३०सू. ८२ आ. १।२।३।४॥

समीक्षक—यह सब बातें विज्ञान शून्य प्रतीत होती हैं ।

हमने ग्रंथ बढानेके भयसे अन्य बातें नहीं लिखीं, पाठकों को यदि अधिक बातें जाननेकी इच्छा हो तो सत्यार्थप्रकाश या पंडित भोजदत्त कृत कुरानका भाषा अनुवाद मंगाकर देखें ।

बाईबल के वाक्य ।

[१] तब ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमें अपने समान बनावें तब ईश्वरने आदमको अपने स्वरूप में उत्पन्न किया। उसने उस ईश्वरके स्वरूपमें उत्पन्न किया उसने उन्हें नर और नारी बनाया और ईश्वरने उन्हें आशीर्वाद दिया तौरते पर्व १ आयत २६ । २७ । २८।

[समीक्षक]"यदि आदमको ईश्वरने अपने स्वरूपमें बनाया तो ईश्वरका स्वरूप पवित्र ज्ञानस्वरूप आनंदमय आदि लक्षणयुक्त है उसके सदृश आदम क्यों न हुआ। जब आदम ईश्वरके सदृश बनातो ईश्वर आदमके सदृश अवश्य होना चाहिये। वाह कैसी प्रमाणाशून्य ये बातें लिखी हैं" ॥

(२) तब परमेश्वर ईश्वरने भूमिकी धूलसे आदमको बनाया और उसके नथनोंमें जीवनका श्वास फूंका और आदम जीवता प्राणी हुआ और परमेश्वर ईश्वरने अदनमें पूर्व की ओर एक बाडी लगाई और उस आदम को जिसको उसने बनायाथा उसमें रक्खा ॥ पर्व २आ.७-८

(समीक्षक) जब ईश्वरने अदनमें बाडी बनाकर उसमें आदमको रक्खा, तब ईश्वर नहीं जानताथा कि इसको पुनः यहांसे निकालना पडेगा और जब ईश्वर आदमको धूलीसे बनाया तो ईश्वरका स्वरूप नहीं हुआ और है तो ईश्वरभी धूलीसे बनाहोगा जब उसके नथः-

नोंमें ईश्वरने श्वास फूंका तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था या भिन्न जो भिन्न था तो ईश्वर आदमके स्वरूपमें नहीं बना" ॥

(३) और परमेश्वर ईश्वरने आदमकोबडी नींदमें डाला और वह सो गया-और आदमकी पसली से एक नारी बनाई और उसे आदमके पास लाया ॥ पर्व २ आ. २१।२२॥

[समीक्षक]"जो ईश्वरने आदमको धूलीसे बनाया तो उसकी स्त्रीको धूलीसे क्यों न बनाया? देखिये कैसी किलोसोफी है। जो आदमकी एक पसली निकालकर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों होती" ॥

[४] तब वह उनसे जो बाईं ओर कहेगा कि हे स्रापित लोगो मेरे पाससे उस अनंत आगमें जाओजोशैतान और उसके दूतोंको लिए तैयार कीगई है। इंजील मत्ती प.२५आ.४१

[समीक्षक] "भला यह कितनी बडी पक्षपातकी बात है जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग और जो उनके दूसरे हैं उनको अनंत आगमें गिराना परन्तु जब आकाशही न रहेगा तो अनंत आग, नरक,स्वर्ग कहा रहेंगे जो शैतान और उसके दूतोंको ईश्वर न बनाता तो इतनी नरककी तयारी क्यों करनी पडती और एक शयतानही ईश्वरके भयसे न डरा,तो वह ईश्वरही क्या है? क्योंकि उसका दूत होकर उसीके विरुद्ध होगया और ईश्वर उसको प्रथमही पकडकर बंदीगृहमें न डालसका न मारसका पुनःउसकी ईश्वरता क्या? जिसने इसको चालीस दिन दुःखदिया? ईसाभी उसका कुछ नहीं कर सका तो ईश्वरका बेटा. बनना हुआ,,

(नोट) अरब देश के दक्षिणभागमें एक नगर है.

[५] और एक बडा आश्चर्य दिखाई दिया अर्थात् एकस्त्री जो सूर्य पहिने है और चांद उसके पाँवतले है और उसकेशिरपर बारहतारोंका मुकुट है। और वह गर्भवती होके चिल्लाती है क्योंकि प्रसवकी पीडा उसे लगी है और वह जननेके पीडित है और दूसरा आश्चर्य स्वर्गमें दिखाई दिया और देखो एक बडा लाल अजगर है जिसके सात शिर और दशसींग हैं और उसके शिरोंपर सात राजमुकुट हैं और जिसकी पूँछने आकाशके तारोंकी एक तिहाई को खैंचकर उन्हें पृथ्वी पर डाला॥ योहन्ना प्रथमपत्र १२। आयतें १। २। ३। ४॥

[समीक्षक] स्वर्गमें भी बिचारी स्त्री चिल्लाती है उसका दुःख कोई नहीं सुनता न मिटासक्ताहै और उस अजगरकी पूँछ कितनी बडीथी जिसने तारोंको एकतिहाई पृथ्वीपर डाला भला पृथ्वी तो छोटी है और तारे भी बडे २ लोक हैं इस पृथ्वीपर एकभी नहींसमासक्ता कैसा आश्चर्य

[६] और वह बडा अजगर गिराया गया हाँ वह प्राचीन साँप जो दियावल और शैतान कहावता है जो सारे संसारका भरमाने हारा है॥ यो० प्र० प० १२ आ० ९॥

[समीक्षक] "क्या-जब वह शैतान स्वर्गमें था तब लोगोंको नहीं भरमाता था उसको जन्मभर बंदीमें घिरा अथवा मार क्यों न डाला उसको पृथ्वीपर क्यों डाल दिया ? जो सब संसारका भरमाने वाला शैतान है तो शैतानको भरमाने वाला कौन है ?यदि शैतान स्वयं भरम है तो शैतानके बिनाही भरमने हारे भरमेंगे और जो उसको भरमाने हारा परमेश्वर है तो वह परमेश्वर नहीं होसका है, जानतो यह पडता है कि ईसाइयोंका ईश्वरभी शैतानसे डरता होगा ? जगतमें शैतानका जितनाराज्य है उसके सामने सहस्रांशभी ईसाइयोंके ईश्वरका राज्यनहीं इसीलिये ईसाइयोंका ईश्वर उसे हटा नहीं सक्ता होगा"।

[७] जिसके सन्मुखसे पृथ्वी और आकाश भाग गये और उनकेलिये जगह न मिली और मैंने क्या छोटे क्या बडे सब मृतकोंको ईश्वरके आगे खडे देखा और पुस्तक खोलेगये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवनका पुस्तक खोलागया और पुस्तकोंमें लिखीहुई बातों मृतकोंका विचार उनको कर्मोंके अनुसार कियागया॥ यो०प्र०प०२० आ० ११।१२॥

[समीक्षक]-"भला पृथ्वी और आकाश कैसे भागसकेंगे और वह किसपर ठहरेंगे ? जिनके सामनेसे भगे उसका सिंहासन और वह कहां ठहरा ? और मृतकलोग परमेश्वरके सामनेसे खडे कियेगये तो परमेश्वरभी बैठा होगा वा खडा होगा? क्या यहांकी कचहरी और दुकानके समान ईश्वरका व्यवहार है जोकि पुस्तक लेखानुसार होता है और सबजीवोंका वृत्तांत ईश्वरने लिखा या उसके कर्मचारियोंने?

ऐसी २ बातोंसे अनीश्वरको ईश्वर और ईश्वरको अनीश्वर ईसाई आदि मतवालोंने बनादिया है ”।

समीक्षा–अब पाठक जानगये होंगे कि मुसलमान, ईसाई लोगोंके धर्मग्रंथोंमें जीव,प्रकृति,ईश्वर और कर्म फिलोसोफीका यथार्थ निर्णयहीनहीं कियागया है । यदि वर्णन होता तो ऐसी प्रमाणिक विरुद्ध बातें कैसे लिखीजातीं । हमारे धर्मग्रंथों वेद,उपनिषद् आदिमें लिखाहै कि ईश्वर प्रकृतिके परमाणुओंसे अपनी शक्ति द्वारा संसारकी रचना करताहै और एक अवधिके पीछे इन परमाणुओं को भिन्नकर देता है तो इस संसारका संहार होजाता है अर्थात् वही प्रकृति अथवा परमेश्वरकी मायाअपने सूक्ष्मरूप परमाणुओंमें मिलजातीहै इसीकोप्रलयकालकहतेहैं इतने समय तक जीव निद्रारूपमें अपने २ कर्मोंको साथलिये अनंत आकाशमें रहते हैं और एक अवधिके पश्चात् परमात्मा पुनःउन्हीं सूक्ष्म परमाणुओंको स्थूल रूपमें लाकर पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदिको रचता है और सब जीवोंको पुनःअपने २ पूर्व उन्हीं कर्मों द्वारा भोग भोगनेको चक्करमें आना पडता है जीव अपने २ कर्मोंके अनुसारही सुखी दुख होते हैं । जैसा यह पृथ्वीमंडल दीखता है इसीप्रकारके अनंत लोक लोकान्तर हैं जैसा कि गीताके पढनेसे विदित होसकताहै । विशेष हमलोग ईश्वरको किसी स्थान पर बैठाहुआ वही २ डाढीवाला वा अन्यरूपवाला नहीं मानते हम ईश्वरको निराकार सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक मानते हैं । उसको अपने कर्मचारी रखनेकी आवश्यकता नहीं कि वह जीवोंके कर्मोंके लेखे लिखावे जीवके साथ में अन्तःकरण ऐसा बनादिया है कि जो जीवके कर्मोंका लेखा रखताहै । और न हमलोग प्रलयकालतक जीवोंका कबरमें पडा रहना और एक दिन उठकर परमात्माके सामने जाकर हिसाव देना और मोहम्मद या ईसाके कहनेपर खुदाका उनके ऊपर दया करना मानते हैं । हमतो कहते हैं कि जीव एकशरीर छोडकर अपने कर्मानुसार दूसरा शरीर धारणकर लेता है इसी लिये हिन्दु[आर्य] लोग मृतकशरीरको जलादेते हैं । यह जलानेकी प्रथा हमलोगोंमें प्राचीनकालसे चलीआती है अब यूरोप, अमेरिकामेंभी बहुत लोगोंने अपने मृतकोंको जलाना प्रारंभ किया है । यूरोप अमेरिकाके सहस्त्रों मनुष्य ईसाई धर्मको छोडकर इससमय इसकेसमयमें हिन्दू(आर्य)धर्मके अनुयायीबनते जाते हैं ऐसा देखकर हमारे हिन्दू (आर्य)भाइयोंको हमारी प्राचीनयोग विद्या और वेदान्त विद्याकी खोजनेमेंतन,मन,धन लगा देना चाहिये एक दिन शीघ्रही आनेवालाहै कि यूरोप,अमेरिका आदिदेश निवासी हिन्दू [आर्य]वैदिकसिद्धान्तोंको मानने वाले होंजायगे ।

[पूर्ण]

अथ सप्तदशोऽध्यायः

॥ अर्जुन उवाच ॥

येशास्त्रविधिमुत्सृज्ययजंतेश्रद्धयान्विताः
तेषांनिष्ठातुकाकृष्णसत्वमाहोरजस्तमः ॥

दोहा—श्रद्धायुतयज्ञहिरचै, तजिवेदनकी नीति ॥
सत रज तम सौंथितिकहौ,कहियेतिनकीरीति

अब अर्जुन पूछते हैं कि हे कृष्ण ! जो किसी प्रकारसे शास्त्रकी विधिको तौ छोड देते हैं और श्रद्धापूर्वक यज्ञ करतेहैं उनकी स्थिति कैसी है ? वह सतोगुणी हैं, कि रजोगुणी है,कि तमोगुणी है,अर्थात् वे जो देवपूजनादिमें प्रवृत्त होते हैं सो उनकी प्रवृत्ति सतोगुणी है वा रजोगुणी है वा तमोगुणी है ! ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

त्रिविधाभवतिश्रद्धादेहिनांसास्वभावजा
सात्विकीराजसीचैवतामसीचेतितांशृणु॥

दोहा—श्रद्धानरकीतीनविधि, होतजुसहजसुभाय॥
सात्विक राजस तामसी, सुनियतिनकीदाय॥

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! परमेश्वरकी पूजासंबंधिनी श्रद्धा तौ एकही प्रकारकी है वह सात्विकी है परन्तु लोकाचारके अनुसार सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकारकी श्रद्धा होती है॰ यह श्रद्धा स्वभावजा होती है क्योंकि यह पूर्वजन्मके संस्कारोंसे उत्पन्न होती है उसका मै वर्णन करताहूं ॥ २ ॥

सत्वानुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ॥
श्रद्धामयोऽयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःसएवसः ३

दोहा—श्रद्धाधर्मजुपुरुषको, आप आपनोरूप ॥
सतरजतमजोजिहिंभजे, सोताहीकोरूप ॥३॥

हे अर्जुन ! सबकी श्रद्धा प्रकृतिके अनुसार होती है,जैसे जिसकी प्रकृति है वैसीही उसकी श्रद्धा है, इसलिये यह पुरुष श्रद्धामय होती है जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसाही है, इससे यहां तीनों प्रकारकी श्रद्धा दिखाई गई है जैसे सात्विकी श्रद्धावाला सात्विक, रजोगुणी श्रद्धावाला रजोगुण युक्त और तमोगुणी श्रद्धावाला तमोगुणविशिष्ट होता है ॥ ३ ॥

यजंतेसात्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः॥
प्रेतान्भूतगणांश्चान्येयजंतेतामसाजनाः

दोहा—देवनसेवैसात्विकी, राजसराक्षसयक्ष ॥
भूतप्रेतगणते यजैं, नरजुतामसीपक्ष ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! जो सात्विकी पुरुष हैं वे सत्वगुणविशिष्ट देवताओंका यजन करते हैं, जो रजोगुणी हैं वे यक्ष और राक्षसोंका पूजन करते हैं और जो अन्य तामसी पुरुष हैं वे प्रेत और भूतगणोंकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितंघोरंतप्यंतेयेतपोजनाः ॥
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥

दोहा–घोरतपस्याजेकरैं, जेनवेदमतिहोहिं ॥
भरेदंभअहँकारसौं, कामरागबलगोहिं ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! पाखंडसे मिले हुए, कपट और अहंकारसे युक्त, काम, विषयानुराग और आग्रहसे जो मनुष्य ऐसे घोर तपोंको करते हैं जिनका शास्त्रमें कुछ विधान नहीं है वे असुर हैं ॥ ५ ॥

कर्षयंतःशरीरस्थंभूतग्राममचेतसः ॥
मांचैवांतःशरीरस्थंतान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ६

दोहा–पंचभूतदेहमें, तिनकोवेदुखदेत ॥
हियमेंमोहूकोहनैं, तेहैं असुर अचेत ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! ऐसे असावधान पुरुष जिनको कुछभी ज्ञान नहीं है वे घोर तप कर करके शरीरमें वर्तमान जो पृथिव्यादि पंचमहाभूतोंका समूह है उसे त्रास देदेकर वृथा दुर्बल और क्षीण करदेते हैं और अन्तर्यामीरूपसे देहमें स्थित मुझकोभी दुर्बल और क्षीण करते हैं उनको तू निश्चय असुर अर्थात् ऐसा जान कि इन आसुरी कर्मोंहीमें उन्होंनें मोक्षका मार्ग निश्चय करलिया है ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपिसर्वस्यात्रिविधोभवतिप्रियः
यज्ञस्तपस्तथादानंतेषांभेदमिमंशृणु ७॥

दोहा–तीनभांतिआहारयह, सबकोरोचकहोय ॥
यज्ञदानतपभेदए, मोंपैसुनियेसोय ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! अन्नादि आहारभी तीन प्रकारका सब मनुष्योंको अ-

च्छा लगता है, वैसेही यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकारके हैं, इनके भेद सुन आशय यह है कि भगवान् उस बातको कहना चाहते हैं कि राजस,तामस आहार और यज्ञादिकको छोडकर सात्विकी बुद्धिका उपाय करै ॥ ७ ॥

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ॥ रस्याःस्निग्धाःस्थिराहृद्या आहाराःसात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

दोहा-सुंदरथिरअतिचीकनो,सात्विकप्रियआहार ।
आयुसत्व आरोग्यबल,प्रीतिबढावनहार ॥८॥

हे अर्जुन ! आयु,सत्व,बल,निरोगता,सुख और प्रीतिके बढनेवाले रसीले,चिकने,स्थिर अर्थात अपने रसांशसे बहुत कालतक देहमें रहनेवाले हृदयको हितकारी आहार सात्विक जनोंको प्रिय होते हैं ८॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः आहाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः॥

दोहा-दाहकरूपोउष्णकटु, तीच्छनखाटोखार ॥
शोकरोगदुखदेतहैं, राजसप्रिय आहार ॥९॥

हे अर्जुन ! कडवे, खट्टे,नमकीन, अत्यन्त गर्म, अत्यंत तीक्ष्ण, अत्यन्त रूखे और जलन उत्पन्न करनेवाले आहार रजोगुणवालोंको प्रिय लगते हैं, इनके सेवनसे खाते समय दुःख,भोजन करनेके पीछे अप्रसन्नता और परिणाममें रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ॥
उच्छिष्टमपिचामेध्यंभोजनंतामसप्रियम् १०

दोहा–जिहिंरांधेपरप्रहरगत,वासो उठ्योबुसाय ॥
जूठोऔरपवित्रनाहिं, भोजनतामसखाय॥१०॥

हे अर्जुन ! जिस अन्नको पक्व करनेके पीछे एक प्रहर बीत गया-होजिसमेंसे रस निचोड लियाहो, जो दुर्गन्धियुक्त हो, जो बासीहो, जो उच्छिष्ट अर्थात् किसीके भोजनमेंसे बच रहाहो और अपवित्रहो ऐसा भोजन तामसी प्रकृतिवालोंको प्रिय लगता है ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टोयइज्यते॥
यष्टव्यमेवेतिमनःसमाधायससात्विकः ॥

दोहा-लखिविधानसोंकीजिये,छांडि फलनकी आस
समाधान घर हीयमें,सात्विकयज्ञ विलास ११

हे अर्जुन! यज्ञ करनाही है,यह मनमें ठान जो विना फलप्राप्तिकी इच्छाके विधिपूर्वक यज्ञ किया जाता है वह यज्ञ सात्विकी कहता है॥

अभिसंधायतुफलंदंभार्थमपिचैवयत् ॥
इज्यतेभरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्धिराजसम् ॥१२

दोहा–करिकैफलकीकामना, औरदंभकीभाय ॥
ऐसेजोयज्ञहिकरै, राजसयज्ञसदाय ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जो यज्ञ फलकी कामनासे कपटयुक्त किया जाता है उसे राजस यज्ञ समझना ॥ १२ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितंयज्ञंतामसं परिचक्षते॥१३॥

दोहा–बिनुअन्नहिबिनुदच्छिना, बिनामंत्रविधिहीन॥
बिनुश्रद्धायज्ञहिकरैं. सोहै तामसलीन ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो यज्ञ शास्त्रविधिसे हीन, यज्ञोचित अन्नसे रहित, मंत्रहीन, दक्षिणारहित और बिना श्रद्धा जो यज्ञ किया जाता है वह तामस यज्ञ कहाता है ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनंशौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसाचशारीरंतपउच्यते ॥१४॥

दोहा–ज्ञानीगुरुद्विजदेवकों, पूजैशुचिमृदुहोय ॥
ब्रह्मचर्यहिंसातजै, तपशारीरकसोय ॥ १४ ॥

(अब तीन श्लोकोंमें कायिक, वाचिक और मानसिक तपोंको कहते हैं) हे अर्जुन ! देवता, द्विज, गुरु और तत्त्वज्ञानियोंका पूजन करना बाह्य अभ्यन्तर पवित्र रहना,सबसे नम्रता रखना,ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना,किसीको कष्ट न देना ये शारीरिक तप कहता है ॥१४

अनुद्वेगकरंवाक्यंसत्यंप्रियहितंचयत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनंचैववाङ्मयंतपउच्यते॥

दोहा–भयनकरैजेप्रियवचन, हितकारीसतभाय॥
करैवेदअभ्यासपुनि, वाचिकतपयादाय ॥१५॥

हे अर्जुन ! जिस वाक्यसे किसीके मनमें उद्वेग वा घबडाहट न

हो, जो सत्यहो, सुननेवालोंको प्रिय लगे, परिणाममें हितकारीहो और वेदपाठका निरन्तर अभ्यास ये वाचिक तप हैं ॥ १५ ॥

मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥

दोहा—मनप्रसादमुखमृदुबचन, इंद्रीनिग्रहमौन ॥
भावशुद्धियहकहतहैं, मानसतपसीतौन ॥१६॥

हे अर्जुन ! मनको प्रसन्न रखना, चित्तमें शान्ति रखना, मौन धारण करना, विषयोसे मनको रोकना,लौकिक व्यवहारमें अन्तःकरणको शुद्ध रखना यह सब मानसिक तप हैं ॥ १६ ॥

श्रद्धयापरयातसंतपस्तत्त्रिविधंनरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्त्विकंपरिचक्षते॥

दोहा—श्रद्धासोंनरतपकरै, सोईतीन्योभांति ॥
फलइच्छाछांडेकरै, सोईसात्विककांति ॥१७॥

(अब सात्विकादि भेदोंसे तीन प्रकारका तप कहते हैं) हे अर्जुन ! जिन मनुष्योंको फलकी कामना नहीं है वे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक जो कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारका तप करते हैं वह सात्विक कहाता है ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थंतपोदंभेनचैवयत् ॥
क्रियतेतदिहप्रोक्तंराजसंचलमध्रुवम् ॥ १८

दोहा—पूजाआदरमानपुनि, और दंभको काज ॥
सोतपराजसकहतुहै चंचलक्षणिकसमाज॥१८॥

हे अर्जुन ! जो तप आदरसत्कार पानेकी इच्छा, अपनी बडाई करानेके मनोरथ और दंभसे किया जाता है वह तप राजस अनित्य और क्षणिक कहाता है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनोयत्पीडयाक्रियतेतपः ॥
परस्योत्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृताम्॥

दोहा–देहहिदुखदैमूढ व्है, हठसौंतपजोहोय ॥
परकौंकष्टदिखावहीं, तामसतपव्हैसोय॥ १० ॥

हे अर्जुन ! जो तप अज्ञानके आग्रहसे, अथवा अपने शरीरको कष्ट देकर अथवा औरोंका मारण, मोहन उच्चाटनादि करनेके निमित्त किया जाता है वह तामस कहाता है ॥१९॥

दातव्यमितियद्दानंदीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशेकालेचपात्रेचतद्दानंसात्त्विकंस्मृताम्

दोहा–दानदेइ उपकार बिनु. पात्रविप्रकोंदेखि ॥
देशकालकोंजानिकै, सात्विकदानविशेषि२०

हे अर्जुन ! वह दान सात्विक कहाता है जो देनाही है ऐसा निश्चय करके ऐसे मनुष्यको दिया जाता है जिससे फिर बदलेमें कोई वस्तु लेनेकी इच्छा नहो, तथा देश काल और पात्रका विचार करके जो दान दिया जाता है वह सात्विक दान कहाता है ॥२०॥

यत्तुप्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्यवापुनः ॥
दीयतेचपरिक्लिष्टंतद्राजसमुदाहृतम् २१

दोहा—कीजै जोउपकारको, फलकीआशामानि ॥
जोदीजैअतिकष्टसों, ताकोंराजसजानि ॥२१॥

जो दान इस इच्छासे दिया जाता है कि दान लेनेवाला किसी दिन मेरे साथ उपकार करैगा, वा स्वर्गादिक फलकी इच्छासे दिया जाता है वा देते समय चित्तमें दुःख होता है वह दान राजस कहाता है

अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतम् २२

दोहा—विनादेसअरुकालविनु, दीजैनीचहिदान ॥
विपुआदरसत्कारविनु, तामसताहिवखान२२

जो दान निरादर और तिरस्कारसे दिया जाता है,वा देशकालका विचार कियेविना अयोग्योंको दिया जाताहै वह तामसी दानहै२२

ओंतत्सदितिनिर्देशोब्रह्मणस्त्रिविधःस्मृतः
ब्राह्मणास्तेनवेदाश्चयज्ञाश्चविहिताःपुरा ॥

दोहा—ॐततसत ए ब्रह्मके, नामजुतीनप्रकार ॥
विप्रवेदअरुयज्ञत्रिय, कीनेपहिलीवार ॥ २३ ॥

ओं, तत, सत् ये तीनों शब्द परमात्माके नामके अनुरूप निर्दिष्ट हैं इनमें अकार, उकार और मकारका स्वरूप जो ओं है सो यह ओं शब्द ब्रह्महीका नाम है और जगत् के कारण हेतुसे ज्ञानियोंको अपरोक्ष है इससे तत् शब्दभी ब्रह्मका नाम है और परमार्थ, सत्व, साधुत्व और प्रशस्तत्वादि करके जो सत् शब्द है वहभी ब्रह्मका नाम है, इससे यह त्रिविधनाम निकृष्टकोभी उत्कृष्ट करनेमें समर्थ है

इसीसे कहते है कि-विधाताने सृष्टिके आदिमें इस परमात्माके त्रिविधनामका उद्देश करके ब्राह्मण, वेद और यज्ञ निर्माण किये इससे 'ओंतत्सत्' इस नामके उच्चारण अतिही प्रशस्त है ॥ २३ ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्ययज्ञदानतपःक्रियाः
प्रवर्ततेविधानोक्ताःसततंब्रह्मवादिनाम् ॥

दोहा-क्रियायज्ञतपदानअरु, कहिपहिलेॐकार ॥
वेदवंतयोंकहतहैं, विधिविधानाविस्तार ॥२४॥

(अब इन तीनों शब्दोंकी भिन्न २ महिमा दिखाते हैं, क्योंकि ओं शब्दसे परमात्माका निर्देश है इससे ओं शब्दका उच्चारण करके जो यज्ञ, दान, तप आदि शास्त्रोक्त क्रिया की जाती हैं वे यथावत सङ्गोपाङ्ग न होनेपरभी सब भांति पूर्ण होती हैं ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसंधायफलंयज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्चविविधाःक्रियंतेमोक्षकांक्षिभिः॥

दोहा-ततयहकरिकैकरतहैं, क्रियायज्ञतपदान ॥
फलअभिलाषाछांडिकै, चाहतमुक्तिनिदान ॥

फलकी कामनाको त्यागकर जो मुमुक्षुजन 'तत्' शब्दका उच्चारणकरके यज्ञ, तप तथा अनेक प्रकारके दानोंके करनेमें प्रवृत्त होते हैं वे शुद्ध चित्त होजाते हैं और संकल्पके त्याग मुमुक्षु होजाते हैं इससे तत शब्दका उच्चारण बहुतही पवित्र है ॥ २५ ॥

सद्भावेसाधुभावेचसदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्तेकर्मणितथासच्छब्दःपार्थयुज्यते ॥

दोहा–शुद्धभावसतभावमें, सतकोकरतउचार ॥
और भले पुनि कर्ममें, सतकोगावतसार ॥२६

हे अर्जुन ! सत् शब्दका प्रयोग सद्भाव और साधुभावमें किया जाता है तथा माङ्गलिक विवाहादिक कर्ममेंभी सत् शब्द प्रयुक्त किया जाता है ॥ २६ ॥

यज्ञेतपसिदानेचस्थितिःसदितिचोच्यते ॥
कर्मचैवतदर्थीयंसदित्येवाऽभिधीयते ॥

दोहा–यज्ञदानतपकीजुथिति, ताहिकहतसतनाम ॥
ताकेजेजेकर्म हैं, ताकोसतविश्राम ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है उसे सत् कहते हैं तथा परमात्माके निमित्त जो कर्म किये जाते हैं वे यदि त्रिगुण और अङ्गहीन हों पर परमात्माके अति पवित्र ओं तत् सत् ' इन नामोंसे युक्त हों तो सर्वोत्कृष्ट होजाता हैं ॥ २७ ॥

अश्रद्धयाहुतंदत्तंतपस्तप्तंकृतंचयत् ॥
असदित्युच्यतेपार्थनचतत्प्रेत्यनोइह ॥

दोहा–श्रद्धाविनुहोमतयजत, देतसबैजुअकाज ॥
अर्जुनजोयहअसतहै, दुहूंलोकनहिंसाज ॥ २८
एकहिश्रद्धासात्विकी, मुख्यकहीसमुझाय ॥
और त्रिविधगुणभेदतें, कहैसत्रहेध्याय ॥ १ ॥
जबैराजसीतामसी, श्रद्धाकोतजिदेत ॥
रहैसात्विकीमेंतबै, तत्वज्ञानगहिलेत ॥ २ ॥

जोईअर्जुनसोंकह्यो, कृष्णसघनघनश्याम ॥
श्रद्धाविधीविवेकसों, वरन्योंआनँदराम ॥

हे पार्थ ! जो यज्ञ, दान, तप और अन्य कर्म विना श्रद्धाके किये जाते हैं वे सब असत् हैं,क्योंकि विनाश्रद्धाके विगुण और अङ्गहीन हैं और ऐसा होनेसे उनका कुछभी फल न परलोकमें है न इस लोकमें है किन्तु केवल अयशस्कर हैं तथा श्रद्धा इनके करनेमें शरीरको कष्ट देना और धन खराब करनाभी व्यर्थ है ॥ २८ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां श्रद्धात्रयविभागयोगोनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥



❀ विचार दर्पण ❀

❀ दर्शन ७। ❀

(वेदोंके उपदेश)

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं जिन्वमवसेहूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय ६ वर्ग १५ मंत्र ५ ॥

अर्थ-" हे सर्व स्वामिन् आपही चर और अचर जगत्के ईशान (रचने वाले) हो, सर्व विद्यामय,विज्ञान स्वरूप बुद्धिको प्रकाशित करनेवाले प्रिय स्वरूप हो, सबके पोषक हो, उन आपका हम अपनी रक्षाके लिये आह्वान करते हैं जिसप्रकार से आप हमारे विद्यादि धनोंकी वृद्धि वा रक्षा के लिये निश्चय रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप हमारी स्वस्थताके लिये निरंतर रक्षक हो, आपसे पालित हमलोग सदैव उत्तम कामोमे उन्नति और आनंद को प्राप्त हों " ॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे । अस्मभ्यमिंद्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ऋ १ ।७।१४।४ ॥

अर्थ-"हे इन्द्र (परमात्मन्) आपकी सहायतासे हमलोग दुष्ट शत्रुजनको जीतें, कैसा है वह शत्रु ? कि हमारे बलसे घिराहुआ है. अर्थात् हमारी सेनाने उस शत्रुको घेर रक्खा है। हे महाराजाधिराजेश्वर युद्ध २ में हमारी सेनाकी उत्तम रीतिसे कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्धमें क्षीण होके हम पराजयको न प्राप्तहों. किन्तु जिनको आपकी सहायता है उनका सर्वत्र विजय होता है। हे महाधनेश्वर हमारे शत्रुओंके धैर्य पराक्रमादि को प्रभग्न और रूग्ण करके नष्ट करदो, हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धनको सुखसे प्राप्तकरो अर्थात् आपकी करुणासे हमारा राज्य और धन सदा वृद्धिको ही प्राप्त हों" ॥

समीक्षा-आशय यह है कि काम क्रोधादि शत्रुओंके जीतने में परमात्मा से सहायता मांगनी चाहिये

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ यजुर्वेद अ० ३२ मं० १ ॥

अर्थ-"जो सब जगत्का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम अग्नि है, सर्वोत्तम ज्ञान स्वरूप, पूज्यतम प्रापणीय स्वरूप अग्नि शब्दका अर्थ है जिसका कभी नाश न हो और स्वप्रकाशस्वरूप है इससे परमात्मा का नाम आदित्य है। सब जगत का धारण करने वाला अनंत बलवान प्राणोंसेभी जो प्रिय स्वरूप है इससे ईश्वरका नाम वायु है। आनंदस्वरूप और स्वसेवकोंको परमानंद देनेवाला होनेसे परमात्माका नाम चन्द्रमा है। चेतन स्वरूप सब जगत्का कर्ता होनेसे शुक्र है, सबसे बडा होनेके कारण परमात्मा का नाम ब्रह्म है। धर्मात्मास्वभक्तोंको अत्यंत सुख और विद्यादि सद्गुणोंसे बढाने वाला होनेसे परमात्माका नाम आप "जल" है, वह सब जगत्का पति तथा स्वामी होनेसे प्रजापतिकहलाता। सबका पालन करनेवाला अन्य कोई नहीं है, उसीको हमलोग इष्टदेव तथा पालक मानें अन्यको नहीं" ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि। बलमसि बलंमयि धेहि ॥ ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ यजु० अ० १९ मं० ९

अर्थ-हे स्वप्रकाश! अनंत तेज! आप अविद्यान्धकारसे रहित हो, किंच सत्य विज्ञान तेजस्वरूप हो आप कृपादृष्टिसे मुझमें वही तेज धारणकरो, जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं और कभी न होऊं, अनंतवीर्य परमात्मन् आप पराक्रम स्वरूपहो, आप सर्वोत्तम पराक्रम मुझमें भी रक्खो आप बल स्वरूपहो मुझे भी बलदो, आप अनंत सामर्थ्यवान् हो मुझको भी सामर्थ्यवान करो; दुष्टों पर क्रोधकर्ता हो, मैं भी आपकी कृपासे दुष्टोंपर क्रोध करनेवाला बनूं आप अनंत सहन स्वरूप हो अतः मैं भी आपकी कृपासे उत्तम कामोंकी प्राप्तिमें आने वाले कष्टोंका सहन कर्ता बनूं; शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्माके तेजादि गुण कभी मुझमें से दूर हों, जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूं और आपके अनुग्रह से संसारमें भी सदा सुखी रहूं" ॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ सामवेद उत्तरार्चिके अध्याय१ सं०४मं०३॥

(अर्थ)"सदावृध) सर्वदा वृद्धिको प्राप्तहोने वाला (चित्र पूजनीय (सखा) मित्रभूत इन्द्र-परमात्मा (कया, ऊती) कैसीरक्षासे और (कयावृत) कैसेवर्तावसे (न.) हमारे (आभुवत्) समुख हो ? (उत्तर) [शचिष्ठया श्रेष्ठबुद्धियुक्त होनेसे "

समीक्षा-परमात्माने इसमंत्रमें प्रश्नोत्तररूपसे जीवों को यह उपदेश किया है कि परमात्माकी अनुकूलता अच्छे बुद्धियुक्त वर्तावसेही होसक्ती है अत हमको चाहिये कि हम सदा ऐसे कामों मे लगे रहे जिनसे प्रतिदिन बुद्धि की उज्वलता और बुद्धिही होती रहे ॥

जब भारतसतान बुद्धिप्राप्तिके साधनोंमें लगीहुई थी तब परमात्मा की भी अनुकूलता प्राप्तथी-अब आलस्य और इन्द्रियों के सुखों के आधीन होकर बेचारी बुद्धिको पक्षाघात [लकवा) रोगने पीडित कर लिया तो परमात्माकी कृपा भी हमसे दूर होगई, क्योंकि परमात्मा तो न्यायकारी है, वह मोह और अज्ञानसे सदा दूर रहने वालोंकीही सहायता करता है-

तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ अथर्व० कांड१५ अनुवाक् २ वर्ग ९ मंत्र २ ॥

सभ्य सभा मे पाहि ये च सभ्याःसभासदः अथर्ववेद-कांड१९अनु०७वर्ग ५५मंत्र६ ॥

(अर्थ)"उस राज्यधर्म को तीनों सभा और सेना मिलकर पालन करें., अर्थात् राजा और प्रजाके पुरुष मिलकर विद्यासभा, धर्मसभा और राज्यसभा नियतकरें जिससे सुखकी वृद्धि होती रहे

राजा सभासदों को आज्ञा देवे कि हे सभा के मुख्यलोगो तुम मेरी सभाकी धर्मयुक्त व्यवस्थाका पालन करो।

समीक्षा राजा सभाके आधीन रहे और सभा राजाके आधीन रहे। इस प्रकार राजा और "प्रजा प्रतिनिधिसभा" मिलकर राज्यके नियमादि बनायें और शासनकरें, यदि इस प्रकार मिलकर काम न होगा तो राज्यकार्यमे गडबड रहेगी ॥ [समीक्षा] जबसे भारतवर्षकी प्रजाको राज्य कार्योंमें भाग मिलना छूट गया तभीसे प्रथम मुसलमान लोग यहा आकर हमारे ऊपर राज्य करने लगगये। आजकल यूरोप, जापान, अमेरिका क राज्योंकी जड इसी कारण दृढ होरही है कि वहा प्रजाको पार्लियामेंट द्वारा राज्यकार्यमें भाग मिलरहा है। अब यहांपर भी कई देशीराजाओंने अपने २ राज्यों में "प्रजाप्रतिनिधि मडल" अर्थात् पार्लियामेंट स्थापित की हैं। वे राजा निम्नलिखित है महाराजा बडोदा, महाराजा मैसूर और महाराजा बीकानेर।

[उपनिषदोंके उपदेश]

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेनभुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्॥ईशोपनिषत् मंत्र १॥

(अर्थ)- जगत् में जो कुछभी है वह परमात्मा करके व्याप्त है अर्थात् कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहा परमात्मा न हो, इसलिये उस पर विश्वास रख, निस्पृह होकर जीवन व्यतीत करते हुए किसीके धनकी आकाक्षा मत करो ॥

इह चेदवेदीथ सत्यमस्ति नचेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीरा प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ केनोपनिषत् द्वि० खं० मं० ५॥

(अर्थ) यदि मनुष्यने परमात्माका यथार्थ ज्ञान इसी जन्ममें प्राप्त करलिया तो ठीक है नहीं तो बड़ी हानि उठानी होगी (क्योंकि न जाने मनुष्यदेह पुनः कब प्राप्त हो और कब ब्रह्मज्ञान प्राप्तिका अवसर मिले) जो विवेकीजन इसी जन्ममें प्राणीमात्र पर ध्यान देतेहुए (उन के सुख दुःखोंपर विचार करते हुए) वैराग्यको प्राप्त होकर परमात्माकी शरणमें आकर,अपने प्राणोंको त्यागते हैं, वह मरकर संसारके बन्धनोंसे छूट जाते हैं॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गपथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ कठोपनिषत् प्रथमोऽ तृतीयावल्ली मं० १४ ॥

हे मुमुक्षुजनो! उठो, जागो; ज्ञानीपुरुषोंके पास जाकर ज्ञानका मार्ग प्राप्त करो, यह मार्ग बड़ा दुर्गम है अर्थात् जिसपर चलनेमें बड़ा कष्ट होता है. इसीविद्वानलोग छुरेकी धारसा तीक्ष्ण बताते हैं

(समीक्षा)--प्रयोजन यह है की परमात्माकी भक्ति करने में जो विघ्न शीघ्र २ आया करते हैं वह वास्तवमें कर्ता के अशुभ प्रारब्धकर्मों काही फल है, जो विघ्नबाधारूप होकर शीघ्रतासे नाशको प्राप्त होरहे हैं।

इसलिए इस मंत्रमें उपदेश दियागया है कि तुम इन अस्थाई विघ्नोंके उपस्थित होनेपर बीच में मत रुको ; धर्मपथ प्रर चलेजाओ, एक दिन तुम्हारा अभीष्ट अवश्य सिद्ध होगा ॥

तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्। तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ प्रश्नोपनिषत् प्रथम प्रश्नः मं० १५।१६

(अर्थ) ब्रह्मकी प्राप्ति उन्हींको होसकी है जिनमें तप [मन और इंद्रियों को विषय विकारों से दूररखना) ब्रह्मचर्य [वीर्यरक्षा) और सत्य [यथार्थ भाषण) रूपीगुण हैं; शुद्धब्रह्मानंदको वही लोग प्राप्त होसके हैं, जिनमें कुटिलता (धर्मात्मा पुरुषोंसे विमुखता) अनृत [मिथ्या भाषण] और माया (छल कपट) नहीं होते ॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः। येनाक्रामन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ मुंडकोपनिषत् तृतीयमुंडके प्रथमखंडे मं० ६ ॥

[अर्थ] सत्यका ही अंतमें जय होता है,सत्य करके ही ब्रह्मज्ञान खुलता है,सब सांसारिक कामनाओंसे दूर होनेवालेही महात्माजन इस सत्य के सहारेसे ही सत्यस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होते हैं

ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्या नभूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव यच्चान्यत्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥ मांडूक्योपनिषत् मं० १ ॥

(अर्थ) जो कुछ दृष्टिगत है वह सब परमात्माकी ही विभूति समझो, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें परमात्माकी स्थिति रहती है अधिक क्या कहें यदि कोई वस्तु कालके वश में नहीं है तो वह परमात्माही है ॥

समीक्षा—परमात्माने भक्तोंको इस मंत्रसे यह उपदेश मिलता है कि किसी स्थानको किसी कालमें भी परमात्मासे शून्य मत समझो। किसी कविने ठीक कहा है।

जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है। हरशय [वस्तु] में हंगुल (फूल) में न तेरीसी रंगत न तेरीसी बू है॥

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्माप्रमदः इत्यादि॥ तैत्तिरीयोपनिषत् एकादशोनुवाकः मंत्र १॥

[अर्थ] समग्र वेदोंकी शिक्षा देकर आचार्य अन्तेवासी (जो शिष्य रातदिन विद्याध्ययन के निमित्त अपने घरको छोड़कर गुरुके घरपर ही ब्रह्मचारी होकर रहता है) को घर जाते समय उपदेश देता है कि, सदा सत्य बोलना, सदा धर्मानुकूल व्यवहार करना जो कुछ पढा है उसका अभ्यास रखना।

समीक्षा—प्राचीनकालमें नियम था कि जब शिष्य संपूर्ण विद्या पढचुकता था तो गुरु उसको अपने पाससे जाते समय उत्तम २ उपदेश दिया करताथा॥

शिष्य भी पुनः घरको लौटकर अपनी सामर्थ्यानुकूल गुरुदक्षिणा देता था, प्रतिमास फीस चुकानेका बोझ मातापिताके शिरपर नहीं रहता था जिस बोझके मारे आजकल सहस्रों नवयुवक इच्छा होते हुये भी यथेष्ट विद्या प्राप्त नहीं कर सके, ऐसी दशामें वह मूर्ख निर्धन रहकर अपनी और अपने देशकी क्या उन्नति कर सके हैं? शोक!

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। ऐतरेयोपनिषत् प्रथमः खंडः मंत्र १॥

(अर्थ) प्रलयकालमें एक परमात्माही आदिमें था और कुछ दिखाई नहीं देता था (प्रलयकाल अवधि समाप्त होजाने पर) उस परमात्माने विचारा कि मैं प्रजाको (उनके पूर्व कर्मानुसार उत्पन्न करूं)

समीक्षा—इस उपनिषत्‌में सृष्टिकी रचनाका वैज्ञानिक रीतिसे बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है यदि किसीको विस्तार पूर्वक सृष्टिकी रचना का यथार्थ वृत्तांत जानना हो तो ऐतरेयोपनिषत् को स्वयं पढे या किसी दूसरे से सुने।

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुंडरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदंतस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति। छांदोग्योपनिषत् अष्टम प्रपाठक मंत्र १॥

(अर्थ) जो इस ब्रह्मपुर (हृदय) में यह सूक्ष्म पुंडरीक (कमल) घर है और इसमें जो सूक्ष्म अंतवर्ती आकाश है उस आकाश में जो (ब्रह्म) है उसको ढूंढनाचाहिये और जानना चाहिये।

समीक्षा—यद्यपि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, परन्तु उन मनुष्योंके लिये जो अभी योगारूढ अवस्थाको प्राप्त नहीं हुये हैं इसमंत्रमें यह उपदेश दिया गया है कि अपनी मनोवृत्तियोंको स्थिर करने के लिये नित्य गुरूपदिष्ट मार्ग द्वारा अपने हृदयाकाशमें ब्रह्मके दर्शन करें अर्थात् अपनी मनोवृत्तियोंका ब्रह्माकार बनावें

ते य एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धासत्यमुपासते तेऽर्चिरमभिसंभवंति इत्यादि बृहदारण्यकोपनिषत् षष्ठोऽध्याये । द्वितीयं ब्राह्मणं मंत्र १५ ॥

(अर्थ) जो लोग देवयान और पितृयाण की विद्याओं को जानते हैं वह वनमें श्रद्धा पूर्वक ब्रह्मकी उपासना करते हुए देवयान मार्गद्वारा ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।

समीक्षा--यहां वन से अभिप्राय निर्जन वन या ग्राम से दूर कोई उत्तम एकान्त स्थान है।

अथ ये यज्ञेन दानेनतपसा लोकाञ्जयंति ते धूममभिसंभवंति। इत्यादि ॥ बृ० षष्ठोऽध्याये द्वि० ब्रा० मंत्र १६ ॥

(अर्थ) जो यज्ञ, दान, तपसे लोकोंको जीतते हैं वह धूमको प्राप्त होतेहैं। इत्यादि ॥

समीक्षा--उपरोक्त दोनों मंत्रोंमें देवयान और पितृयाण मार्गों का वर्णन किया गया है। यह विषय गीता अ० १० के श्लो० २४।२५।२६। की समीक्षा में समझाया गया है, मुमुक्षुजनोंको वहीं देख लेना चाहिये।

य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतङ्गा यदि दं दंदशूकम् ॥ बृ० अ० ६ द्वि० ब्रा० मं०१६॥

(अर्थ) जो मनुष्य इन दोनों मार्गोंमें से किसी एकको भी नहीं जानते हैं वह मरकर कीट पतङ्गादि पापयोनियों को प्राप्त होते हैं.

समीक्षा--इन उपरोक्त मंत्रोंमें यह दिखाया गया है कि देवयानसे गमन करनेवाले अर्थात् ज्ञानावस्था में मरनेवाले मोक्षको प्राप्त होते हैं और जो पितृयाणसे गमन करते है अर्थात् सांसारिक भोगोंकी वासनासे यज्ञ, दान, तपस्या करने के कारण इन्हीं भोग वासनाओं को लेकर मरते हैं वह बार २ जन्म मरणरूपी चक्रमें घूमते रहते हैं, परतु इस सोलहवें मंत्रकेअंतका भाग यहभी बताता है किजो मनुष्य अज्ञान और आलस्यमें पडे हुए इन उपरोक्त दोनों मार्गोंमेंसे किसीको भी प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते वह मरकर कीट पतगादि पापयोनियोंको प्राप्त होते हैं ॥

[षड्दर्शनोपदेश]

तस्य हेतुरविद्या ॥ योगदर्शन, साधन२। सूत्र २४ ॥

(अर्थ)आत्माके बन्धनका हेतु अविद्या है ॥

समीक्षा—जितने दुःख हैं उन सबका मूलकारण महर्षि पतञ्जलिकी सम्मतिमें अविद्या है अतः हम सबको चाहिये कि अविद्याके नाश करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करें।

अत्यन्तदुःखनिवृत्या कृतकृत्यता ॥ सांख्यदर्शन अ० ६ सूत्र ५ ॥

[अर्थ] मनुष्य अपनेको कृतकृत्य तभी समझे, जब अपने पुरुषार्थ द्वारा त्रिविध तापोंसे अत्यंत निवृत्ति प्राप्त करचुके ॥

त्रिविध ताप निम्नलिखित हैं:—

आध्यात्मिक—शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे होनेवाले दुःख.

आधिभौतिक—सिंह, सर्पादिक हिंसक जीवों या चोर, डाकू और शत्रुओंसे होनेवाले दुःख.

आधिदैविक—अतिवृष्टि अनावृष्टि और विद्युतादिद्वारा होनेवाले दुःख-

समीक्षा-उपरोक्त तीन प्रकारके दुःखोंसे अत्यन्त निवृत्ति तभी प्राप्त होसकती है, जब मनुष्य धर्मका सेवन करे । धर्मका लक्षण कणादमुनिने अपने वैशेषिक दर्शनमें किया है यथाः—

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिस्स धर्मः ॥ वैशेषिकदर्शन अध्याय १ सू० २ ॥

[अर्थ] जिस कर्मके करनेसे लौकिक और पारलौकिक सिद्धि प्राप्त हो वही धर्म है ॥

समीक्षा—ऐसे कर्म जिनसे हम इस लोकमें विद्या ऐश्वर्य्यआरोग्यता और स्वतन्त्रता आदि सात्विक पदार्थों की प्राप्ति करतेहुए मरण पीछे क्रमशः परमोत्तम गति मोक्षकी प्राप्ति हों वह धर्मशब्दसे बोले जाते है । गौतम मुनिने अज्ञान निवृत्तिसे मोक्षका होना माना है सो भी ठीकही है, क्योंकि जब मनुष्य का मिथ्या ज्ञान दूर होगा तभी वह धर्ममें प्रवृत्त होगा। गौतम मुनिका कथन है कि—

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनंतरापायादपवर्गः ॥ न्यायदर्शन अध्याय १ सू० २ ॥

(अर्थ) मिथ्या ज्ञानके नाश होनेपर दोषों (रागद्वेषादि) का नाश होता है, दोषोंकेनाश होनेपर प्रवृत्ति (धर्मविरुद्ध कामोंका करना)का नाश, प्रवृत्तिके नाश से जन्मका नाश और जन्मके नाशसे सम्पूर्ण दु.खों का नाश होता है अतः सम्पूर्ण दुःखोंका नाश होनाही मोक्ष है

समीक्षा—वेदान्ताचार्यमहर्षि व्यासजीकाभी ऐसा ही मत है अर्थात् धर्माचरणको मोक्षका द्वार मानते हैं यथाः—

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ॥ वेदान्तदर्शन अध्याय १ सू० ७ ॥

(अर्थ) उस परमात्मामें निष्ठावानपुरुषके लियेही मोक्षोपदेश किया गया है ॥

समीक्षा—परमात्मामें निष्ठा रखनेवाले वही पुरुष समझे जाते हैं जो उसकी आज्ञाओंको अर्थात् धर्मका पालन करते हैं और दूसरोंको ऐसा करने का उपदेश देते हैं । धर्माचरणसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और ज्ञानसे मुक्ति मिलती है । महर्षि जैमिनीजी महाराज भी धर्माचरणसेही मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं यह बात भारतवर्षके सब लोगों पर विदित है। उनका उपदेश है कि—

अथातो धर्मजिज्ञासा॥ पूर्वमीमान्सा अध्याय १ सूत्र १ ॥

अर्थ-(अथ) जब मनुष्योंको दु.खोंसे निवृत्तिकी इच्छा होनेपर यह ज्ञान होजावे कि धर्मही ऐसी वस्तु है जिसके आचरणसे दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होसकती है, तो उस ज्ञानके अनन्तरही के मनमें यह इच्छा हो कि (अत) इसलिये (धर्मजिज्ञासा कर्त्तव्या) हमें धर्मको जानना चाहिये ॥

समीक्षा—महर्षि जैमिनिजीका सिद्धांत है कि—मनुष्य कर्मकाण्डरूपी धर्माचरणसे शुद्धान्तःकरणी बनता है शुद्धान्तःकरणसे ज्ञानप्राप्ति होती है और ज्ञानसे मोक्ष मिलताहै ॥

[मनुस्मृति]

श्लोक—इन्द्रियाणांविचरतां विषयेष्वपहारिषु ॥ संयमेयत्न मातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥ २ । ८८ ॥

(अर्थ) विषयोंको सब प्रकारसे हानिकारक समझ कर विद्वान पुरुष इनमें विचरती हुई अपनी

इन्द्रियोंको रोके, जिस प्रकार रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको सारथी वशमें करनेका यत्न करता है उसी प्रकार यत्न करे॥

श्लोक--अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यंचाति भोजनम् ॥ अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ अ० २।५७॥

अर्थ--अधिक भोजन करना अर्थात् जिह्वा के वशमें आकर मिष्ट, स्वादिष्ट और गरिष्ठ पदार्थ मावे आदिकी बनी हुई वस्तुएं मात्रासे अधिक खाना रोगका हेतुहै,अवस्था(आयु)को घटाता है, कारण कि अजीर्णको उत्पन्न करके रोग और मरणका हेतु बनताहै इससे भजन स्मरण,यज्ञ आदि शास्त्रीय कर्मभी नहीं ठीक२ हो सक्ते,जिससे स्वर्ग आदिक उत्तम२ सुख प्राप्त नहीं हो सक्ते इनसे पवित्रताभी नहीं रहसक्ती इस लिये यह काम अपवित्रभी है और लोकमें भी निन्दनीय है क्योंकि लोग कहतेहैं कि जबइस मनुष्यकी एकजिह्वा इन्द्रीही वशमें नहीं तो और क्या करसक्ता है

श्लोक.--उत्पादक ब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ॥ ब्रह्मजन्महि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ २।१४६॥

(अर्थ) जन्म देने वाले और शास्त्रका उपदेश करने वाले पिताओं में पिछला अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि द्विजातियोंका जो दूसरा जन्म अर्थात् गुरुद्वारा विद्या अध्ययन रूप जो नई बुद्धि और नये २ विचार उत्पन्न करने वाला जन्म है, वही इस लोक और परलोकमें नित्य है। आशय यह है कि हमारे शास्त्रकारोंने दो जन्म माने हैं, पहिला तो माता के गर्भ से संसार में आना; इस जन्म को तो पशुओं के जन्मसे कुछ विशेष नहीं माना (देखो मनु२।१४७)क्योंकि जिस प्रकार पशु जन्मसे मूर्ख और शूद्र रहते हैं इसी प्रकार मनुष्य भी समझो, परन्तु दूसरा जन्म जो गुरू देता है वही उत्तम है और वही नित्य है॥

वस्तुतः मनुष्य तभी मनुष्य कहला सक्ता है जबकि गुरुरूप पिता द्वारा विद्यारूपी माताकी गोद में दूसरा जन्म लेता है॥

श्लोक--आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या जरामरा॥ २॥१४८॥

(अर्थ) वेदका पारगामी आचार्य जिस जातिमें शास्त्रकी विधि के अनुसार इस मनुष्यको वेद पढा कर उत्पन्न करता है वही इसकी सच्ची जाति समझो॥

समीक्षा--जो लोग यह समझते है कि हमने उत्तम कुलमें जन्म लेलिया अब हमको क्या भय है चाहे विद्यापढे चाहे न पढेचाहे शास्त्रीय उत्तम कर्म करें चाहे न करें हम उत्तम कुल की बडी प्रतिष्ठा पाते रहेंगे जोकि हमारे विद्वान पिता, पितामहादि पाते आये हैं, यह उनकी भूल है। प्राचीनकालमें यह शैली थी जैसा कि इसश्लोकमें वर्णन है, कि वेद वेदांगमें निपुण आचार्योंके समीप जाकर लोग पूर्ण विद्वान बनतेथे फिर परीक्षा लेकर जिस वर्णके योग्य वह आचार्य अपने शिष्योंको समझता था उसीवर्णमें रहनेका उसको अधिकार देता था. वह शिष्यभी आजीवन उस वर्णकी मर्यादाका पालन करताथा। तभी इसदेशमें सबप्रकारकी उन्नति हुआ करतीथी, अवनति अपना दर्शन भी नहीं दिखला सकी थी। द्विजशब्दही बताता है कि उत्तम मनुष्य वही हैं जिन के दो जन्म हों, अर्थात् एक जन्म माताके गर्भसे निकलना दूसरा जन्म गुरुकी सेवामें रहकर विद्याध्य

अवस्था समाप्त करनेपर गुणकर्मसे ब्राह्मण, क्षत्री आदि वर्ण धारण करके, तदनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करना. इसप्रकार पूर्वकालमें शूद्र मावापके जन्म लेकरभी लायकअपने गुणकर्मसे गुरूके, यहां वर्ण धारण करने के कारणही द्विज नाम प्रचलित हुआ ॥

श्लोक–यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः। यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ २ ॥ १५७

(अर्थ) जैसे काष्ठसे बनाहुआ हाथी, चर्मसे बनाया हुआमृग और विना पढा द्विजातिवर्णका मनुष्य, ये तीनों नाम मात्रको धारणकिये हुए हैं अर्थात् ये अपने नामके अनुसार कार्य नहीं करने से दर्शनमात्र के हो हैं ॥

श्लोक- अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः। अज्ञं हि बालमित्याहु पितेत्येव तु मंत्रदम् ॥ २ ॥ १५३ ॥

(अर्थ) मूर्ख है वही बालक है और वेद आदि सत्शास्त्रका बताने वाला है वही पिता है। मुनिलोग प्राचीनकालमें मूर्खको बालक अर्थात् विद्याहीन, निर्बुद्धि कहते थे और शास्त्रकाज्ञान देनेवालेको पिता अर्थात् इसलोक और परलोक के दुखोंसे रक्षा करनेवाला कहते थे ॥

श्लोक–धृतिःक्षमा दमाऽस्तेयं शौचमिंद्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ ६ ॥ ९२ ॥

(अर्थ) धैर्य (दुःखमें घबराना नहीं) क्षमा (जहां तक होसके, एकबार वा अधिक बार अपराध करने वालेको दंड न देना या न दिलाना) दम (मनको रोकना व बशमें करना) अस्तेय (किसी प्रकार की भी चोरी नहीं करना) शौच (शरीर और मनको पवित्र रखना) इन्द्रियनिग्रह (पापकर्मोंसे इन्द्रियोंको रोकना) धी (बुद्धिको शास्त्र के सत्य अथवा सूक्ष्म २ बातोंको जानने वाली बनाना) विद्या (इहलोकिक और पारलौकिक अनेक पदार्थोंको जानना जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारोंपदार्थ प्राप्त होसकें) सत्य (जैसा मानता हो और जैसा जानता हो उसको यथार्थ भाषणकरना या प्रगट करना) और अक्रोध (किसीसे उपदेशक कटुवचन अपने से छोटोंके अपराध पर अप्रसन्न न होना

समीक्षा–ये दश लक्षण धर्मके हैं हमने यहां बहुतही संक्षेपसे इनके अर्थ खोलनेकी चेष्टा की है, यदि किसी को विस्तारपूर्वक अर्थ जानने की इच्छा हो तो नवजीवन प्रेस काशीमें प्रकाशित पंडित केशवदेवशास्त्री कृत "धर्मके दश लक्षण" नामकी पुस्तक देखें ॥

श्लोक–दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतासमः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ६। ६६

(अर्थ) चाहे जिस आश्रममें मनुष्य स्थित हो न्यायप्रिय होकर विना पक्षपातके सबके साथ उत्तम व्यवहार करता हुवा उपरोक्त धृति क्षमा आदि धर्मोंको धारण करे। चाहे उस आश्रमके चिन्ह धारण न करे क्योंकि बाहर के चिन्ह यथा बडे २ तिलक धारण करना, हाथमें माला रखना, या बडी २ जटा बढाना, खडाउओंपर चलना, मृगछाले पर बैठना, या विशेषकर रंगे गेरुवे आदि भेष धारण करना इत्यादि धर्मके कारण नहीं होसकते, धर्म तो इन धृति क्षमा दि दश महाव्रतोंको अपने २ समय पर धारणकरनेका नाम है ॥

श्लोक–दुराचारोहि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ ४ ॥ १५७ ॥

(अर्थ) खोटे आचरण वाला पुरुष निन्दित दुःखका भोगने वाला; सदा रोगोंसे पीडित, और थोडी आयुका भोगने वाला होता है; इसकारण दुराचार (कुकर्म) को छोड सदाचारका आचरण करे

श्लोक–यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ४।१५९

(अर्थ) जो काम दूसरोंके वशमें हों, उनका यत्न करके त्याग करदे और जो २ अपने आधीन हों उनका उन कामोंको यत्न पूर्वक करे ॥

समीक्षा–विदेशी वस्तुओंपरही निर्भर रहनाएक प्रकारका परवश काम है।

श्लोक–सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥ ४।१६०

[illegible]

दुख [illegible]

[illegible]

तु वर्जयेत् ॥ ४ ॥ १६१ ॥

(अर्थ) जिस कर्मके करनेसे अपने अन्तरात्माको सन्तोष हो उसको यत्नसे करे और जिससे अन्तरात्माको संतोष प्राप्त न हो ऐसे कामोंको कदापि न करे।

(समीक्षा) इसश्लोकमें धर्म और अधर्मके लक्षण बताये हैं, यदि हम ध्यान पूर्वक अपने अंतःकरणकी वृत्तियोंको देखते जायें तो अवश्य पता लगेगा कि धर्मके कामोंके करने पर अन्तरात्मा प्रसन्न होता है और पापकर्मोंके करनेपर अंतरात्मामें एकप्रकारकी ग्लानि सी होतीहै; जो लोग चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि करते हैं उनके चित्तमें अवश्य प्रथमवार एक खटकासा होता है।

श्लोक–यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा। प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥ तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् । समीक्ष्यकारिणम् प्राज्ञं धर्मकामार्थ कोविदम् ॥ तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते। कामात्मा विषमः क्षुद्रो दंडेनैव निहन्यते ॥ मनुः अ० ७ श्लोक २५–२६–२७ ॥

(अर्थ) जहाँ कृष्ण (काले) वर्ण वाला, लाल नेत्र भयंकर पुरुषके समान पापों का नाश करनेवाला दंड विचरता है, वहाँ प्रजा पापी नहीं होसक्ती परन्तु बात यह है कि दंडका चलाने वाला पक्षपात रहित विद्वान होनाचाहिये ॥ १ ॥ जो उस दंडका चलानेवाला सत्यवादी, विचारके साथ काम करने वाला; बुद्धि मान्, धर्म, अर्थ, और कामकी सिद्धि करनेमें पंडित है; विद्वान लोग उसी राजाकोदंडका चलानेवाला कहते हैं। २। जो राजादण्डको अच्छेप्रकार, चलाता है, वह धर्म, अर्थ औरकामकी सिद्धिको बढाता है परन्तु विषयमें लम्पट कुटिल टेढाऐंडकरचलनेवाला] द्वेषी (दूसरकी सम्पत्तिको देखकर सहन न करनेवाला.) क्षुद्र, (छोटे हृदयवाला) नीचबुद्धि राजा उसीदंडसे मारा जाता है ॥ ३ ॥

श्लोक–सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्र

विद्र्हति ॥ १ ॥ दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ॥ त्र्यवरावापि वृत्तस्था धर्मं न चालयेत् ॥ २ ॥ त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्त धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ ३ ॥ ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेद विदेव च । त्र्यवरापरिषज्ज्ञेया धर्मसंशय निर्णये ॥ ४ ॥ एकोऽपि वेदविद्धर्मं यंव्यवस्येद् द्विजोत्तमः । स विज्ञेयः परोधर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ५ ॥ अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥ ६ ॥ यंवदंति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः । तत्पापंशतधाभूत्वातद्वक्तननुगच्छति ॥ ७ ॥

मनु. अ. १२ श्लोक १००-११० से ११५ पर्यंत.

(अर्थ) मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी मुख्यन्यायाधीश और राजा ये चारों सब विद्याओंमें पूर्णविद्वान होने चाहियें ॥ १॥

न्यूनसे न्यून दशविद्वानों अथवा बहुन्यूनतो तीन विद्वानोंकी सभा जैसी व्यवस्थाधर्मकी करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्थाका कोई भी उल्लंघन नहीं करे ॥ २॥

इस सभामें चारों वेद, मीमांसा (कानूनकीविचारविद्या, जिसको आजकल जूरिसप्रूडेंस कहते हैं,) न्यायशास्त्र, निरुक्त (वेदके शब्दोंका अर्थज्ञान) धर्मशास्त्र आदिके जाननेवाले

कहलाता ६ ॥५॥ यदि वेदोंका भलीभांति जानने वाला एकमात्र विद्वान एक बात का निर्णय कर दे तो उसको धर्मका निर्णय (फैसला) माने परन्तु सहस्रों मूर्ख मिलकर जिसबातका निर्णय करदें उसको राजा कभी न माने ।

समीक्षा—देखिये अगले समयमें विद्वानोंकी बात का कितना आदर और मान होता था, लोगजोमूर्ख होते थे और जो अपने पापकर्मोंको छिपानेके लिये झूठा धर्मका आडंबर रखकेलोगोंको बुरा कहकर और धमकी देकर ठगना चाहते थे, उनकी बातोंको कोई नहीं मानता था । आजकल बहु स्थानों पर देखनेमें आरहा है कि लोग अपने दूषणों को छिपानेके लिये और अपनी पोल खुल जानेके भय से उन्नति के कामों को रोकने के लिये अपने को सनातनधर्मी कहकर और उन्नति करने वालों को "नास्तिक [illegible] पाखण्डी" इत्यादि कहकर सच्चे सनातन धर्म को कलंक लगा रहे हैं। इसलिए सच्चे धर्मके प्रेमियों को चाहिये कि वे ऐसे मिथ्या नामधारी सनातनधर्मी बननेवालों की धमकीमें न आवें सच्चे प्राचीन सनातनधर्म के मार्ग पर चलते जायँ जैसा कि मनुमहाराजने इस श्लोकमें हमको आज्ञा दी है ॥ ५ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य (वीर्यरक्षा) सत्य भाषणादि व्रत और शास्त्रविद्या से शून्य (खाली) हैं और जन्मसे ही शूद्रवत् वर्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलनेसे भी सभा नहीं बनसक्ती दश पंद्रह की तो बातही क्या ॥ ६ ॥

जो मूर्ख लोग वेदोंको अर्थात् सभी धर्मशास्त्रोंको न जानकर जिसबात को धर्म कहें उसको कभी न मानना चाहिये, क्योंकि जो मूर्ख के कहे हुये धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकडों प्रकारके पाप लग जाते हैं, जैसा कि मारवाड आदि प्रांतोंमें विवाहादि

संस्कारों के सपर्द मूर्ख स्त्री और पुरुष "नेमचार" नाम के धर्म बताते हैं, वे बहुधा त्यागने योग्य हैं; इन को न त्यागा जाय गा तबतक दुःखोंमे छुटकारा कदापि नहीं मिलसकेगा

श्लोक-धर्म एव हतो हंति धर्मोरक्षतिरक्षितः।तस्माद्धर्मो नहन्तव्योमानोधर्मोवधीत्॥ ॥मनु०अ० ८ श्लोक० १५ ॥

(अर्थ) बुद्धिमानों को चाहिये कि धर्माचरणसे कभी न हटें क्योंकि ऐसा नियम है कि धर्माचरणसे मनुष्यों को सुख सम्पत्ति प्राप्त होते हैं और धर्म के विपरीत चलने से अर्थात् मिथ्याभाषण, परस्त्रीगमन, परधन हरण आदि पाप करने वालों का नाश होता है; इसलिये कल्याण की इच्छा करने वालों को अपनी जाति के सब मनुष्यों को धर्मात्मा बनाना चाहिये; जिससे देश की उन्नति हो, धर्माचरण करने वाले मनुष्य जाति में बढें यही उन्नतिका उपाय है।

[हितोपदेश]

श्लोक--विद्याददातिविनयंविनयाद्यातिपात्रताम् । पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततःसुखम् ॥ १ ॥

(अर्थ) विद्यासे मनुष्य बड़ा नीतिमान होता है नीतिमान होनेसे श्रेष्ठ, विद्वान और धार्मिक पुरुषोंकासगोतम रहनेके योग्य बनता है; इनकी संगतिसे सात्विक धनप्राप्त होताहै, धनप्राप्त होनेसे आत्मोन्नति, देशसेवा और जातिसेवास आदि धर्मके कामों को भले प्रकार करसक्ता है जिससे सदा सुखी रहता है ॥ १ ॥

श्लोक--अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्यदर्शकम् । सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥ २ ॥

(अर्थ) विद्यावाला मनुष्य प्रत्येक वस्तुको निश्चय पूर्वक जानसक्ता है; विद्याबलसे गप्त २ रहस्यों को जानलेता है (जैसा कि विद्याबलसे लोगोंने रेल, तार, मोटरगाड़ी, कल्पयंत्र आदि प्रकृतिके अनेक भेदोंको जानलिया और जानरहे हैं) जिसको विद्यारूपी नेत्र है वही आंखोंवाला है शेष विद्यारहित मनुष्य अंधेहा हैं ॥ २ ॥

समीक्षा-जिन मनुष्योंके घर धन सम्पत्ति हो और जिनकी सन्तान नवयुवकहो उनको तो अपनी सन्तानको अवश्यमेव पढ़ाना चाहिये; नहीं तो बड़ीहा हानि होगी जैसा कि लिखा है। यथा:-

श्लोक--यौवनंधनसम्पत्तिःप्रभुत्वमविवेकता।एकैकमप्यनर्थायकिमु यत्रचतुष्टयम्॥३॥

(अर्थ) युवा अवस्थाके साथ धनसम्पत्तिहो, लोगोंका प्रभुहो अर्थात् राजकुमार कहावेचाहे और साथ२ विद्या हीन हो; एक२भी साधन अनर्थ कराने वाला है, जबये चारों साधन एकही स्थानपर मिलजायें तो अनर्थका कुछ ठिकाना ही नहीं।

समीक्षा--सबको चाहिये कि अपनी संतानको विद्वान बनावें और जो लोग कहते हैं कि भागमें लिखा है सो होगा लड़कोंको विद्या पढ़ाने का क्यों कष्ट किया जाय, ऐसे मूर्खों की बात न सुनें ॥ ३ ॥

श्लोक-अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् । गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ ४ ॥

(अर्थ) इन छःहोंको समुद्रमें फटी नावके समान छोडदेना चाहिये। जो यज्ञोपवीत डालकर गुरु तो बनजावे और कुछ पढा न सके, न उत्तम उपदेश देसके ऐसे गुरु को, मूर्ख पुरोहितको, ऐसे राजा को जो दुष्टोंसे रक्षा न करे, शास्त्र विरुद्ध कटु वचन बोलने वाली अपनी स्त्रीको, जो गौओं को बनमें चरानेकी प्रतिज्ञा करे और अपना कर्तव्य पालन न करके ग्राममें रहनेकी इच्छा करे ऐसे ग्वालेको और जो नाई क्षौर (हजामत) आदि कामोंकी प्रतिज्ञा करके ग्राममें तो न रहे और बनोंमें ही खेती बाडी करनेकी इच्छा करे; ऐसे पुरुषोंकी प्रवीण (उडीक) में अपने काम न बिगडने दे।

श्लोक–इदं च त्वां सत्यपरं ब्रवीमि, पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्। न जातु कामान्न भयान्नलोभाद्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः॥ १॥ नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये. जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः। त्यक्त्वाऽनित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य: त्वं तोषपरो हि लाभः॥ २॥

(अर्थ) हे तात (प्यारे) तुमसे एक यह अत्युत्तम (सबसे श्रेष्ठ) मत कहता हूं कि कामसे, लोभसे, भयसे और जीवनकेभी लिये कभी धर्मको नहीं छोडना चाहिये॥१॥

क्योंकि धर्म नित्यहै और सुख दुःख अनित्यहैं अर्थात् कभी आते हैं कभी चले जाते हैं जीव (अपने शुद्धस्वरूपसे) नित्य है, इसको बन्धन में, रखने वाली शरीरादि उपाधियां अनित्य हैं, इसलिये हे राजन् ! अनित्य वस्तुओंमें मन न लगा कर नित्य की ओर ध्यान दो।

[चाणिक्यनीति]

श्लोक–गुणाः सर्वत्र पूज्यंते न महत्योऽपि संपदः॥ पूर्णेन्दुः किं तथा वंद्यो निष्कलंको यथाकृशः॥ १॥

(अर्थ) सब स्थानोंमें गुण पूजे जाते हैं बडी सम्पत्ति नहीं, पूर्णिमाका पूर्णभी चंद्रमा क्या वैसा वन्दित होता है जैसा विना कलंकके द्वितीयाका दुर्बलभी चंद्रमा॥

श्लोक–तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः॥ वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति॥ २॥

(अर्थ) तृण (घासतिनका) हलका है, तृणसे हलकी रूई है और रूईसे भी हलका याचक (मांगनेवाला) है, वायु रूईको तो अपने साथ लेजाती है, क्योंकि उसको यह भय नहीं है कि रूई मुझसे कुछ मॉगगी. परन्तु याचक को अपने साथ नहीं ले जाती इस भयसे कि यह कुछ मुझसे माग न लेवे।

श्लोक–पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि अन्नमाप सुभाषितम्। मूढैः पाशाणखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते॥ ३॥

(अर्थ) पृथ्वीपर जल, अन्न और प्रिय हितकारी वचन तीनही रत्न हैं, मूर्खोंने ... टुकडों को रत्न गिना है।

श्लोक—धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः ॥ विद्यारत्नेन हीनो यः स हीनः सर्व वस्तुषु ॥ ४ ॥

(अर्थ) दोहा—हीन नहीं धनहीन जन, धन थिर नाहिं प्रवीन ॥ हीनन और बखानिये, विद्या हीन सु हीन ॥

श्लोक—अंतःसारविहीनानामुपदेशो न जायते ॥ मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ॥ ५ ॥

(अर्थ) गंभीरता विहीन पुरुषोंको शिक्षा देना सार्थक नहीं होता । मलयाचलके संगसे बाँस चन्दन नहीं होजाता ॥

(समीक्षा) यदि उपदेष्टा लोगोंको उपदेश करते समय ऐसे मनुष्योंसे भी काम पड़े, जिनपर उनके उत्तम उपदेशका कुछभी प्रभाव न पड़े तो उनको खिन्न नहीं होना चाहिये, क्योंकि संसारमें सभी मनुष्य उत्तम नहीं होसक्ते, वर्षा तो सभी जगह होती है परन्तु ऊसर भूमि कभी फल नहीं देती फलदेने वाली भूमि दूसरीही होती है ॥

श्लोक—मुहूर्तमपिजीवेच्च नरःशुक्लेनकर्मणा ।नकल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना६

[अर्थ] उत्तम कर्मसे मनुष्योंको मुहूर्तभरका जीनाभी श्रेष्ठ है, दोनों लोकोंके विरोधी दुष्ट कर्मोंसे कल्प (कई लाख वर्ष) भरका भी जीना उत्तम नहीं है ॥

[तत्त्वार्थाधिगम सूत्र.]

[जैनसिद्धान्त का एक माननीय ग्रंथ]

कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः ॥ अ० १० सू० ३ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय होनाही मोक्ष है यह मोक्ष केवलज्ञान उत्पन्न होने वाले जीवोंको प्राप्त होता है ।

समीक्षा-जैनसिद्धान्तानुसार जो आत्मा अनादिकालसे कर्मबन्धनोंमें फसाहुआ अनादि कालसे ही जन्ममरण रूपी दुःखको भोग रहा है ! जिन संसारिक भोगोंको यह सुख मानेहुए है वह वास्तवमें दुःख रूप ही हैं ! क्योंकि वह अस्थायी, और विघ्न संयुक्त हैं । अतः जीवात्माको चाहिये कि ऐसा प्रबल पुरुषार्थ करेकि सम्पूर्ण कर्मोंको क्षय करके केवल ज्ञानके उदय होने पर मोक्ष भागी होजाए । मन, वचन, कायाकी सभी क्रिया कर्म शब्दसे बोली जाती हैं। जिस समय जो क्रिया होती है वह भविष्य में या तत्कालही आठ प्रकार का फल देनेवाली होतीहै । कर्ममें भिन्न २ फल देनेका गुणही "कर्म प्रकृति" कहा जाता है। जैन सिद्धान्तानुसार 'कर्म प्रकृतियां,, आठ हैं अर्थात् "मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय, वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु")। मुक्तावस्थामें आत्मा अपने शुद्ध स्वरूपमें होता है। वह उस अवस्थामें चराचर सब वस्तुओंको हस्तामलकवत् जानता है, देखताहै और अपने आत्म स्वरूपमें रमण करता है। या यों कह सके हैं कि अपने ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप शक्तियोंको पूर्ण रूपसे धारण किये रहताहै ।

जो कर्म जीवात्माको अपने स्वरूप से हटाकर सांसारिक भोग विलासों में फंसाते हैं वह मोहनीय कर्म हैं जो अठाईस प्रकारके होते हैं। जो कर्म जीवात्माकी ज्ञानशक्तिको ढांप लेते हैं वह ज्ञानावरणीय कर्म हैं यह पांच प्रकारके होते हैं। जो कर्म जीवात्माकी दर्शन शक्तिको ढक लेते हैं वह दर्शनावरणीय कर्म नौ (९ प्रकारके होते हैं।

जो कर्म जीवात्माकी भोग आदि शक्तियोंको ढकते हैं वह अंतराय कर्म कहलाते हैं वह पांच प्रकारके हैं। जो कर्म जीवात्माको सुख दुःखका भान कराते हैं वह वेदनीय कर्म कहलाते हैं। जो कर्म जीवात्माको शरीर इन्द्रियादिके धारण रखनेमें सहायक बनते हैं वह नाम कर्म हैं। इनके तिरानवे भेद हैं।

जो कर्म जीवात्माको उच्च नीच कुलमें जन्म दिलाने वाले हैं वह गोत्र कर्म कहलाते हैं इन के दो भेद हैं। जो कर्म किसी शरीर विशेष के साथ किसी अवधि विशेष तक जीवात्माका संयोग रखाते हैं वह आयुकर्म कहलाते हैं। इसके चार भेद हैं। इसप्रकार एकसो अड़तालीस [१४८] "कर्म प्रकृतियां" हैं।

हम विस्तार भयसे इन सब बातोंका विवरण यहां नहीं लिखसके. जिनको इस विषयमें अधिक ज्ञान प्राप्ति की इच्छा हो तो 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र,, और' 'आप्तनिश्चय लङ्कार,, ग्रंथोंको देखें मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्चकेवलम् ॥ अ०१० सू०१

अर्थ- मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय कर्मप्रकृतियों के क्षीण होनेपर वलके ज्ञान प्रगट होता है।

समीक्षा-कर्मक्षय और कर्म के उपशममें यह भेद कि "कर्मका क्षय" तो ऐसा है जैसे बीज की उगने रूप शक्तीको जला देना है और बीजका जल पृथ्वीका संयोग न होने देनेसे उसकी प्ररोह शक्तिको नष्ट नहीं करके उसको निर्वल रखनेके समान कर्मका उपशम" है परंतु जब कभी पृथ्वी और जल का संयोग प्राप्त होगा तभी बीज उग आयेगा इस लिये तपस्यादि साधनोंद्वारा कर्म प्रकृतियोंके क्षय करने से तथा मिथ्याज्ञान (अविद्या) कषाय (लोभ क्रोधादि) अविरति (हिंसादि कामोंमे न हटना) प्रमाद [मोक्षमार्गमें न लगना] और प्रवृत्ति [सांसारिककामोंमें लगना।

जैनशास्त्रोंमें प्रवृत्तिका दूसरा नाम योग है; इन पांच बन्धहेतुओंके अभावमें ही केवल ज्ञान उदय होता है अब हम एक और. सूत्र लिखकर इस प्रकरणका समाप्त करते हैं।

अनित्याशरणसंसारैकत्वाऽन्यत्वाशुचित्वास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ अ० ९ सू० ७ ॥

(अर्थ) अनित्यत्वानुप्रेक्षा, अशरणानुप्रेक्षा संसारानुप्रेक्षा, एकत्वानुप्रेक्षा, अन्यत्वा

[४] इस संसारमें मैं एकाकी (अकेला) ही हूं मेरा कोई भी स्वकीय [अपना] परकीय (दूसरा) नहीं है। इस रीतिसे रागद्वेषके अभाव होनेसे निःसंगताको प्राप्त जीव मोक्षके ही अर्थ प्रयत्न करताहै, यह चतुर्थ एकत्वानुप्रेक्षाहै । आत्माको शरीरसे पृथक् चिन्तनकरना चाहिए शरीर अन्य पदार्थ है, मैं शरीरादिसे विलक्षण पदार्थ हूं.शरीर तो इन्द्रियोंका विषय है और मैं अतीन्द्रिय हूं। शरीर जड है और मैं ज्ञानस्वरूप चेतन हूं। इसप्रकार यह अन्यत्वाऽनुप्रेक्षा व्याख्यात हुई ।। ५।।

यह शरीर अशुचि अर्थात् आशयों से अपवित्र है ऐसा चिंतन करना चाहिये श्लेष्माशय, पित्ताशय, तथा वाताशय तीन आशय होते हैं; श्लेष्मा,पित्त तथा वायु इन धातुओंसे शरीरकी स्थिति वा क्रिया होतीहै। यह तीनों भुक्त आहारको श्लेष्मास्थितिसे क्रमशः वीर्यदशा तक पहुंचाते हैं। ग्लानि होनेसे वह जीव शरीर के नाश तथा मोक्षकीप्राप्तिके लिये चेष्टा करता है. इस रीतिसे यह षष्ठ अशुचित्वानुप्रेक्षा कही गई ॥ ६ ॥

इसलोक तथा परलोकमें भी विघ्न कारक बडी २ नदियोंके प्रवाहके वेग सदृश अति उग्र अकुशल [मूर्ख] तथा शास्त्रकुशल दोनोंको भी कर्मोंके आगमनके द्वारभूत आस्रव [पापकर्मों का करना] रूप इन्द्रियोंको कल्याणमार्ग से खंडित करने वाली चिंतन करना चाहिये । यह आस्रवानुप्रेक्षा हुई ॥ ७ ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीत्याग) ब्रह्मचर्य (मैथुन त्याग) अपरिग्रह शरीरको स्थिर रखनेके लिये आवश्यकीय भोजनवस्त्रादिके अतिरिक्त सांसारिक पदार्थोंका त्याग,यह पांच महाव्रतों द्वारा मन,वाक्,काया के पापों को रोकना संवर कहलाता है;जो आत्मा संवृत है अर्थात् संवर गुण सहित है उस जीवको आस्रवके जो सब दोष कहे गये हैं वे सभी नहीं होते । इस प्रकार चिंतन करनेवाली शुद्धि संवरके लिये समर्थ होतीहै यह संवरानुप्रेक्षा व्याख्यात हुई ॥ ८ ॥

कर्मबन्धन पर चिन्तन करता हुआ प्राणी कर्मों का निर्जरण अर्थात् नाश करनेही में समर्थ होता है,इस रीति से निर्जरानुप्रेक्षा व्याख्यातहुई ॥ ९ ॥

उत्पत्ति, स्थिति, अन्यभावकी प्राप्ति तथा नाशसे युक्त यह संसार है ऐसा चिंतन करे । इसप्रकार विचार करते हुए जीवको तत्त्वज्ञानकी शुद्धता प्राप्त होती है । इस रीतिसे दशम लोकानुप्रेक्षा व्याख्यात हुई।।१०

अनादिकालसे सिद्ध इस संसारमें, अनेक वार जन्मोंको धारण करके, अनंत वार भ्रमणकरते हुए, अनेक प्रकारके दुःखों से पीडित; मिथ्यादर्शन आदिसे नष्टबुद्धि तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायभूत कर्मोंके उदयसे पराजित इसजीवको सम्यग्दर्शन आदिसे सर्वथा शुद्ध ज्ञानकी

प्राप्ति अतिदुर्लभ है, ऐसा चिन्तन करे । इस प्रकार बोधि [बोध] दुर्लभताका अनुचिंतन करते हुए इस जीवको बोधिकी प्राप्ति होती है और बोधकी प्राप्ति करनेसे प्रमाद अर्थात् अशुभ आचरण नहीं होता, इस प्रकारसे यह एकादश "बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा" वर्णित हुई ॥ ११ ॥

सम्यग्दर्शनका द्वारभूत अर्थात् सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका द्वार, पञ्चमहाव्रत रूप साधनोंसे संयुक्त, द्वादश अङ्गोंसे युक्त, सब जीव आदि नौ तत्त्वोंका उपदेश करनेवाला, गुप्ति आदिकी अतिशुद्ध मर्य्यादा सहित संसारसे उतारनेवाला, तथा मोक्षका प्रापक, यह जैनधर्म वैसा उत्तम है ऐसा चिन्तन सदा करना चाहिये । ऐसा करनेसे धर्ममार्गके अनुकूल अनुष्ठान करनेमें व्यवस्थिति होती है । इस रीतिसे यह द्वादश "धर्मस्वाख्यात तत्त्वानुप्रेक्षा" समाप्त हुई ॥ १२ ॥

[तुलसीकृतरामायण]

॥ चौपाई ॥

सोचिय विप्र जो वेद विहीना, तज निज धर्म विषय लय लीना ॥
सोचिये नृपति जो नीति न जाना, जिहिं न प्रजा प्रिय प्राण समाना ॥
सोचिय वैश्य कृपण धनवानू, जो न अतिथि शिवभक्त सुजानू ॥
सोचिय बटु निज व्रत परिहरहीं, जो नहिं गुरुआयसु अनुसरहीं ॥
वैखानस सोहि सोचन योगू, तप विहाय जिहिं भावे भोगू ॥

॥ दोहा ॥

सोचिय गृही जो मोह वश, करै धर्म पथ त्याग ।
सोचिय यती प्रपंचरत विगत विवेक विराग ॥

॥ चौपाई ॥

दामिनि दमक रहहि घनमाहीं, खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं ॥
बूंद निपात सहैं गिरि कैसे, खलके वचन संत सहैं जैसे ॥
काम वात कफ लोभ अपारा, क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जो तीनों भाई, उपजै सन्निपात दुःखदाई ॥

[भर्तृहरिकृतवैराग्यशतक]

छप्पय—सहे खलनके बैन इतेपर तिनहिं रिझाये, नैननको जलरोक शून्यमन मुख मुसकाये । देतनहीं कछु वित्त तेऊपर जोर दिखाये, करजर चात्र करोर भोरही दौरत आये ॥ सुनि "आश" प्यास तेरी प्रबल तू अति अद्भुत गति गहत । इहभांति नचायो मोहि अब और कहा कीरबो चहत ॥

छप्पय–उदै अस्त रवि होत आयुको क्षीण करत नित । गृहधंधेके माहिं समय बीतत अजानचित । आंखिन देखत जन्म जरा अरु विपति मरन नित तहुँ डरतनहिं नेक शंकहू नाहिं करत चित । जग जीव मोह मदिरा पिये छाके फिरें प्रमादमें ॥ गिरत उठत फिर२ गिरत विषय वासना स्वादमें ॥

कुण्डलिया–वेही निशि वेही दिवस वेही तिथि वे वार । वे उद्यम वेही क्रिया वेही विषय विकार । वेही विषय विकार सुनत देखत अरु सूँघत । वेही भोजन भोग जागि सोवत अरु ऊँघत । महा निलज्ज यहजीव भोगमें भयो विदेही । अजहूं पलटत नाहिं बाढत ग्रुण वेके वेही ॥

छप्पय–पृथ्वी परम पुनीत पलंग ताको मन मान्यो । तकिया अपनो हाथ गगनको तम्बू तान्यो । सोहतचंदचिराग बीजना करत दशों दिशि । वनिता अपनी वृत्ति संगही रहत दिवस निशि । अतुलित अपार सम्पति सहित सोवत हैं सुखमें मगन । मुनिराज महानृपराज ज्यों पौढे देखे हमदृगन ॥

छप्पय–धीरज जाको पिता क्षमा है जाकी जननी । सत्य वचन है मित्र दया है जाकी भगिनी ॥ शांति सुवाला नारि भूमितरु शैया सो है । संयम मनको बंधु वसन दिक् दिनकूँ मोहै । जिन ज्ञान सुधाको असन रहि सब एते परिजन लहैं । फिर योगीकी क्यों डर रहै सदा मुदित मन ह्वै रहै ॥

छप्पय–भोगरहे भरपूर आयु यह भुगत गई सब। तपो नाहिं तप मूढ अवस्थानपत भई अब । काल न कितहूं जात वयस यह चली जात नित । वृद्धभई नहिं आस वृद्ध वय भई छांडि हित । अजहूँ अचेत चित चेतकर देह गेहसों नेह तज । दुःख दोषहरन मंगलकरन श्रीहरि हरके चरण भज ॥

महात्माचरणदासजीकृतभक्तिसागर

॥ चौपाई

ब्राह्मण सो जो ब्रह्म पिछाने बाहर जाता भीतर आने ॥
पांचों वशकारि झूठ न भाखै । दया जनेऊ हृदये राखै ॥
आतमविद्या पढै पढावै । परमात्माका ध्यान लगावै
काम क्रोध मद लोभ न होई । चरणदास कहैं ब्राह्मणसोई॥

कवित्त–दीसत न वारपार पूरिरह्यो जगत सार, ऐसोही अटल नेक टारो ना टरत है । ताको तौ नहिं नाश ठौर ठौर रह्यो भास । जैसे रहत पुष्पवास पासही रहत है ॥ लोचन रह्यो समाय वेदहू सकै न गाय । पुस्तक लिखो न जाय जारो ना जरत है ॥ शुकदेवजीकी दया चरणदासको प्रकाश भयो जैसे मैं खोजिपायो पायो न परत है ॥

ग्रंथसाहिब हजारेकेशब्द.

सूहीमो० ३

पंचग्रंथी

(गुरुनानकजी प्रणीत)

जोगन सिंया जोगन डंडे जोगन भसमचढाईये जोगन मुंदी मूंड मुडाइये जोगन सींगी वाईये अंजन माहि निरंजन रहिये जोगजुगत इंवपाईये ॥ १ ॥
गल्ली जोग न होई, एक दृष्टि कर समसर जाने, जोगी कहिये सोई जोग न बाहर मढी मथाणी जोग न ताडी लाईये । जोग न देसदिसंतर भगिये, जोग न तीरथ न्हाईये ॥ अंजन माहि निरंजन० ॥ २ ॥
सत्गुर भेंटे तां सहसा टूटे, धावन वर्जे रहाईये निर्झर झरे सहज धुन लागे, घरही परचा पाईये। अंजन माहि० ॥ ३ ॥
नानक जीवत्येयां मरणहोय. ऐसाजोग कमाईये वाजे वाजहो सिंगी वाजे, तो निर्भो पद पाईये। अंजनमाहि० ॥ ४ ॥ २–घनाशरी मोहल्ला ९
साधो इहो जग भरम भुलाना, रामनामका सिमरन छोडया मायाहाथ बिकाना
रहा नमातापिताभाईसुत, बनितातंकेरसलपटाना
जोवन धन प्रभुता के मदमें अहिनिश रह दिवाना दीनदयाल सदा दुःखभंजनतासों मन न लगाना जन नानक कोटिनमें किन्हुगुरुमुखहोई छिपाना ३–तिलंग मु० ९ काफी
चेतन है तो चेतले निश दिनमें प्राणी । छिन २ अवध बिहात है फूटे घट ज्यों पानी [रहाउ] हरगुन का न गाव हो मूरख अज्ञाना झूठे लालच लागके नह मरन पिछाना ।
अजहू कछु बिगर्‌यो नहीं जो प्रभुगुन गावै ।कहो नानक तेहं भजनते निर्भय पदपावै

(फुटकर दोहा आदि)

(१) भारतीय कृषक पुकार

दोहा

विना ज्ञान विज्ञानके, कृषिजो करत सदाहिं । तेहि कारण दुखको लहैं, कृषजनभारत

नोट–(१) सिंया, शुङ्गी [२] मुंदी, मुद्रा [३] वाईये, वजाईये [४] अंजन माया (५) निरंजन, निर्लेप [६] गल्ली, वातोंसे [७] समसरा, समदृष्टि [८] मढी, मठमसाणी, ९ श्मसानसेवन [१०] ताडी नाटकमुद्रा [११] भेटे, मिले.

माहिं ॥ भारत के अग्रगानसों, यहाँ बिनय सब ठौर शिक्षा ज्ञान विज्ञानसों, करि प्रचार शिर मौर

(२) अमेरिकन कृषक का कथन

जो नर ज्ञान विज्ञानसों, कृषिको करत बनाय सुखी रहें वह जन्मभर, हृदय न दुःख समाय

(३) चारों वर्णोंका कथन

आर्यहि आदि समाज के, हमहैं चारों अंग बिना परस्पर प्रेमके, भयो रंगमें भंग ॥

४) पंचसमाजके आचार्योंका कथन

योग भक्ति गोरक्ष ये, मूल धर्म है एक । देश कालके भेदसों, शाखा भई अनेक ॥
मूरख जन अज्ञान वश,वर्णत भेद विचार।विद्योन्नति सब मिल करहु,होवहि वेद प्रचार

(पूर्ण)



पं० श्रीधर शिवलालात्मज पं किसनलालजीने
अपने ज्ञानसागर " यंत्रालयमें मुद्रित कर प्रकाशित
किया. स्थान माटुंगा बम्बई

अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

संन्यासस्यमहाबाहोतत्त्वमिच्छामिवेदितुम
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥

दोहा–त्यागतत्वजानौंचहत, कहियोजोभगवान॥
तत्वऔरसंन्यासको, न्यारोकरौबपान ॥ १ ॥

अर्जुन पूछताहै कि हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! (इन्द्रियोंके नियन्ता) हे केशिनिषूदन ! मैं संन्यास और त्यागके तत्त्वोंको भिन्न२ सुनना चाहता हूं आप कृपा करके कहिये ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

काम्यानांकर्मणांन्यासंसंन्यासंकवयोविदुः
सर्वकर्मफलत्यागंप्राहुस्त्यागंविचक्षणाः ॥

दोहा–कामयुक्तकर्मनितजें, कहैताहिसंन्यास ॥
कर्मफलनकोत्यागयह, त्यागकहतबुधिदास ॥

अर्जुनके प्रश्नके उत्तरमें भगवान् कहते हैं कि पंडितजन सकाम कर्मोंके छोड देनेको संन्यास कहतेहैं और सत्यासत्यकी विवेचना करने वाले पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंके फलत्यागको त्याग कहतेहैं ॥ २॥

त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपःकर्म नत्याज्यमितिचापरे ॥

दोहा–कर्मछांडियेंदोषते, कोउकहतयारीति ॥
यज्ञदानतपकर्मजिन, तजौऔरयहनीति ॥३॥

कितनेही ज्ञानीपुरुष यह कहतेहैं कि दोषवाला कर्म छोडदेना-चाहिये और कितनेही यहभी कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप आदि कर्मोंका त्याग करना उचित नहीं है ॥ ३ ॥

निश्चयंशृणुमे तत्र त्यागेभरतसत्तम ॥
त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधःसंप्रकीर्तितः॥

दोहा–याठौरहिपदअर्थतू, मेरौनिश्चयजानि ॥
तीनभांतिकौत्यागयह, अर्जुनचितमेंआनि ॥

हे भरतर्षभ ! हे पुरुषसिंह ! इस त्यागके विषयमें जो कुछ मैंने निश्चय किया है सो सुन, यह त्याग तीन प्रकारका कहा गया है४

यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत् ॥
यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमनीषिणाम् ॥

दोहा–यज्ञदानतपकर्म ए, कीजैंतजियेनाहिं ॥
यातेंपंडितजनइन्हें, गिनत पवित्रनमांहिं ॥५॥

हे अर्जुन ! यज्ञ, दान और तपादिक जो कर्म हैं उनका त्यागना ठीक नहीं है, किन्तु इनका करना अवश्य है, क्योंकि यज्ञ, दान और तप विवेकी पुरुषोंके चित्तको शुद्ध करते हैं ॥ ५ ॥

एतान्यपितुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाफलानिच
कर्तव्यानीति मेपार्थनिश्चितंमतमुत्तमम्॥

दोहा—फलछांडेसंगहितजै, कर्मकरैचितलाय ॥
अर्जुनयहमेरोजुमत, निश्चय उत्तमदाय ॥६॥

(परन्तु) हे अर्जुन ! ये कर्म आसक्ति और कर्मफलकी आशा छोडकर करने चाहिये, केवल ईश्वराराधनके निमित्त इन कर्मोंका करनाही मनको पवित्र करता है यह मेरा निश्चय है ॥ ६ ॥

नियतस्यतुसंन्यासःकर्मणोनोपपद्यते ॥
मोहात्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्तितः

दोहा—जोआवश्यककर्महै, ताकौंछांडिनदेय ॥
जोछांडेअज्ञानतम, सोतामसगहिलेय ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! नित्य जो संध्या और पंचमहायज्ञादि कर्म हैं इनका त्याग देना उचित नहीं है क्योंकि इनके करनेसे चित्त शुद्ध होकर मुक्तिके मार्गका अवलंबन होता है और जो मोहसे इनको त्याग देते हैं उनका यह त्याग तामसी कहाता है ॥ ७ ॥

दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्त्यजेत्
सकृत्वाराजसंत्यागंनैवत्यागफलंलभेत् ॥

दोहा—यहैजानिकर्मनितजै, मतिदेहीदुखहोय ॥
सोतोराजसत्यागहै, निरफल कहियेसोय ॥८॥

हे अर्जुन ! जो इन कर्मोंको दुःखरूप समझकर कि इनके करनेसे केवल शरीरको कष्ट होता है, छोड देते हैं वह त्याग राजस कहाता है, परन्तु इस त्यागसे त्यागफल कुछ नहीं मिलता है ॥ ८ ॥

कार्यमित्येवयत्कर्मनियतंक्रियतेऽर्जुन ॥
संगंत्यक्त्वाफलंचैवसत्याग:सात्त्विकोमत:

दोहा–करनोकर्मअवश्ययह, जानजुकीजेकर्म ॥
संग औरफलकूंतजै, सात्विकत्यागसुधर्म ॥९॥

हे अर्जुन ! यह कर्म अवश्य करना है यह जानकर नियत जो नित्यकर्म सो अवश्य करै और आसक्ति तथा कर्मफलकी आशाका परित्याग करदे, ऐसाही त्याग सात्विक कहाता है ॥ ९ ॥

नद्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥
त्यागीसत्त्वसमाविष्टोमेधावीछिन्नसंशय:

दोहा–बुरेकर्मनिंदैनहीं, भलेरहै नहिंलागि ॥
बुद्धिवंतसंदेहबिनु, यहैसात्विकी त्यागि ॥१०॥

अब सात्विक त्यागीके लक्षण कहते हैं, हे अर्जुन ! जो सात्विक गुणोंसे युक्त है, बुद्धिमान् है जिसके संशय दूर होगयेहैं ऐसा त्यागी अकुशल कर्मोंसे द्वेष नहीं करता है और कुशल कर्मोंसे प्रीति नहीं करता है अर्थात् जिन कर्मोंसे शरीरको किसी प्रकारका कष्ट पहुंचता है उनको करनेमें अरुचि नहीं दिखाताहै और जिनकर्मोंसे शरीरको सुख पहुंचता है उनके करनेमें रुचि नहीं करता है ॥ १० ॥

नहिदेहभृताशक्यंत्यक्तुंकर्माण्यशेषत: ॥
यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते

दोहा–देहवंतसों कर्म ए, नाहीं छाडे जाँहि ॥
कर्म फलनिको जो तजे, सोई ज्ञानी मांहिं ॥

हे अर्जुन ! देहधारी संपूर्ण कर्मोंको करता रहता है परन्तु कर्मफलोंको त्याग देता है वही त्यागी है ॥ ११ ॥

अनिष्टमिष्टंमिश्रंचत्रिविधंकर्मणः फलम् ॥
भवत्यत्यागिनांप्रेत्यनतुसंन्यासिनांक्वचित

दोहा–स्वर्गनरकअरुभूमिमय, त्रिविधकर्मफलजानि
कर्मवंतकोहोतहै, संन्यासी नहिं मानि ॥ १२ ॥

अनिष्ट (अनचाही वस्तुका मिलना), इष्ट (चाही वस्तुका मिलना) मिश्र (चाही अनचाही वस्तुओंका मिलना) ये तीन प्रकारके कर्मफल कर्मफलाभिलाषियोंको मरनेपर मिलते हैं और जो संन्यासी हैं उनको ये नहीं मिलते हैं ॥ १२ ॥

पंचैतानिमहाबाहोकारणानिनिबोधमे ॥
सांख्येकृतांतेप्रोक्तानिसिद्धयेसर्वकर्मणाम्

दोहा–अर्जुन मोपै सुनियतू, कारणहैं ए पांच ॥
कह्यो सांख्य सिद्धांतमें, कर्म सिद्धको सांच ॥ १३ ॥

हे महाबाहो! संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके जो पांच कारण जो सांख्य सिद्धान्तमें कहे हैं उनको तू सुन ॥ १३ ॥

अधिष्ठानंतथाकर्ताकरणंचपृथग्विधम् ॥
विविधाश्चपृथक्चेष्टादैवंचैवात्रपंचमम् ॥

दोहा–अधिष्ठान कर्ताजुहै, और करन बहुभाय ॥
नानाविधि व्यापार अरु, पंचम दैव गिनाय ॥ १४ ॥

अब उन पांच कारणोंको कहते हैं १ अधिष्ठान अर्थात् शरीर, २ कर्त्ता अर्थात् जीव, ३ करण अर्थात मन और चक्षुरादि इन्द्रियोंके कार्य, ४ प्राण अपानादिक पांच वायुओंकी चेष्टा और५ इन्द्रियोंका प्रेरक दैव अर्थात् अन्तर्यामी ये पांचों सिद्धिके कारण हैं ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभतेनरः ॥
न्याय्यंवाविपरीतंवापंचैतेतस्यहेतवः ॥

दोहा-मन अरुवचनशरीरसों, कर्मकरतयासाज॥
भलौबुरौ कोऊ करौ, इन बिनसरैनकाज ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! शरीर, वाणी और मनके द्वारा मनुष्य जिस न्याय अथवा अन्याय्य कर्मको करता है उसके हेतु येही उक्त पांचों कारण हैं ॥ १५ ॥

तत्रैवंसतिकर्तारमात्मानंकेवलंतुयः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्नसपश्यतिदुर्मतिः ॥

दोहा-जे नर आतम एकको, देखत हैं कर्तार ॥
ते कछु वे देखत नहीं, हैं वे मूढ गँवार ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! उक्त पांच कारण हैं ऐसा निश्चय होनेपर भी जो केवल अपने आत्माको कर्त्ता मानता है वह दुर्बुद्धि यथार्थ ज्ञानका जाननेवाला नहीं है इससे यथार्थ बातको नहीं देखता है ॥ १६ ॥

यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ॥
हत्वापिसइमाँल्लोकान्नहंतिननिबध्यते ॥

जाकी बुद्धिनलिप्तहै, अहंकारनहिंजाहि ॥
सोइनलोकनको हनै, हनेनबंधनताहि ॥ १७ ॥

हे अर्जुन! जिसको यह अहंकार नहीं है कि मैं कर्ताहूं और जिसकी बुद्धि कर्मोंमें लिप्त नहीं है वह इन सब लोकोंको मारता है तौ भी उसे मारनेका पाप नहीं लगता है इसका यह आशय है कि तुम जो इस संग्राममें मनुष्योंके बधसे डरते हो सो जो तुम अहंकारको त्याग कर्म फलमें अलिप्ततासे जो इनका बध करो (जो) तौ कुछ पाप नहीं होगा ॥ १७ ॥

ज्ञानंज्ञेयंपरिज्ञतात्रिविधाकर्मचोदना ॥
करणंकर्मकर्तेतित्रिविधःकर्मसंग्रहः ॥ १८

दोहा-प्रेरकतीनों कर्मके, ज्ञानज्ञेयज्ञातार ॥
करण कर्म कर्ता कहे, संग्रह तीन प्रकार ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! यज्ञादि कर्तव्य कर्मोंका जानलेना ज्ञान है जानने योग्य कर्म ज्ञेय है, और शास्त्रोक्त रीतिसे जान लेनेवाला परिज्ञाता है, ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता इन तीनोंसे कर्मकी प्रवृत्ति होती है तथा इन्द्रियादिक करण कर्म और करनेवाला कर्ता ये तीनों कर्म करनेके संग्रह हैं अर्थात इन तीनोंसे कर्मकी प्रवृत्ति होती है ॥ १८ ॥

ज्ञानंकर्मचकर्ताचत्रिधैवगुणभेदतः ॥
प्रोच्यतेगुणसंख्यानेयथावच्छृणुतान्यपि

दोहा-त्रिविध होत गुन भेदते, ज्ञानकर्म करतार ॥
सांख्य शास्त्र में जे कहे, तेसुनिलेयाबार ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! सांख्य शास्त्रमें भी गुणोंके भेदसे ज्ञान, कर्म और कर्ता तीनही प्रकारके कहे गये हैं उनको भी यथावत् सुन ॥ १९॥

सर्वभूतेषुयेनैकंभावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तंविभक्तेषुतज्ज्ञानंविद्धिसात्विकम्

दोहा–जो करिदेखैजीवमें, अविनाशीइहिभाय ॥
न्यारे में न्यारे नहीं, सात्विकज्ञानबताय ॥२०

हे अर्जुन ! जिसज्ञानके द्वारा स्थावर जंगमादि संपूर्ण भिन्न भिन्न प्राणियोंमें अभिन्न और अविनाशी एकही भाव दिखाई देता है अर्थात् जिस ज्ञानसे छोटे बडे सब एकही दिखाई देते हैं वही सात्विक ज्ञान है ॥ २० ॥

पृथक्त्वेनचयज्ज्ञानंनानाभावान्पृथग्विधान्
वेत्तिसर्वेषुभूतेषुतज्ज्ञानंविद्धिराजसम् ॥

दोहा–नानाभावइनमें लखैं, न्यारो न्यारो ज्ञान॥
भिन्न लखैं सब जीवको, राजस ज्ञानसुज्ञान ॥

हे अर्जुन ! जिस ज्ञानसे संपूर्ण देहोंमें रहनेवाला एकही क्षेत्रज्ञ भिन्न भिन्न दिखाई देता है वह राजस ज्ञान है ॥ २१ ॥

यत्तुकृत्स्नवदेकस्मिन्कार्येसक्तमहैतुकम् ॥
अतत्वार्थवदल्पंचतत्तामसमुदाहृतम् ॥

दोहा–पूरनजानो एकमें, विनुकारनरेमित्त ॥
तत्वअर्थविनुअल्पमति, तामसज्ञानसुमित्त ॥

जिस ज्ञानसे एकही देह अथवा एकही प्रतिमामें संपूर्णरूपजाना जाता है अर्थात् यह कि शरीर ही आत्मा है और प्रतिमाही ईश्वर है जो ज्ञान निर्मूल है, जिस ज्ञानमें परमार्थरूप जो ईश्वर उसका अवलंबन नहीं है, ऐसे ज्ञानको तामस ज्ञान कहते हैं ॥ २२ ॥

नियतंसंगरहितमरागद्वेषतःकृतम् ॥
अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्विकमुच्यते ॥

दोहा-संगरागअरुद्वेषबिनु, नियतकर्मजोकोय ॥
तजिफलइच्छाकीजिये, सात्विककर्मसुहोय ॥

अब तीन प्रकारके कर्म कहते हैं, हे अर्जुन! जो कर्म नित्य किया जाताहै जिस कर्ममें मनुष्य आसक्त नहीं होता है, जो विना किसी प्रकारके राग द्वेषके किया जाता है और जिस कर्ममें फलप्राप्तिकी बाधा न हो, वह कर्म सात्विक कहाता है ॥ २३ ॥

यत्तुकामेप्सुनाकर्मसाहंकारेणवापुनः ॥
क्रियतेबहुलायासंतद्राजसमुदाहृतम् ॥

दोहा-जोकीजैकरिकामना, कैधौंकरिअहँकार ॥
जामेंश्रमहैअतिघनो, सोराजसनिरधार ॥२४॥

हे अर्जुन! जो कर्म फलकी इच्छासे किया जाता है वह राजस कर्म है ॥ २४ ॥

अनुबंधंक्षयंहिंसामनपेक्ष्यचपौरुषम् ॥
मोहादारभ्यतेकर्मयत्तत्तामसमुच्यते ॥

दोहा--पौरुषहिंसाशुभअशुभ, द्रव्यखरचनविचार॥
जोकीजै अज्ञानतै, तामस कर्मनिहार ॥ २५ ॥

अनुबंध (आगामि जन्ममें इस कर्मका फल शुभ होगा वा अशुभ), धनव्यय, हिंसा और अपनी सामर्थ्यके विचारे बिना,जो कर्म किया जाता है उसे तामस कर्म कहते हैं ॥ २५ ॥

मुक्तसंगोऽनहंवादीधृत्युत्साहसमन्वितः॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारःकर्तासात्विकउच्यते

दोहा--धरिधीरजउत्साहसों, तजैसंगअहँकार ॥
निर्विकारसिधअसिद्धसम, सत्वकर्मकरतार ॥

अब तीन प्रकारका कर्ता कहते हैं, जो कर्ममें आसक्त नहीं होता है, जिसको अपने कर्तापनेका अभिमान नहीं है, जो धीरज और उत्साहसे युक्त है, जो कामके सिद्ध होने अथवा असिद्ध होनेमें विकार रहित है अर्थात कामके होजानेपर प्रसन्न नहीं होता है और न होनेपर शोकग्रस्त नहीं होता है वही कर्ता सात्विक है ॥ २६ ॥

रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्मकोऽशुचिः
हर्षशोकान्वितःकर्ताराजसःपरिकीर्तितः॥

दोहा--रागीचाहतकर्मफल, लुब्धकहिंसकहोय ॥
हर्षशोकसंयुतअशुचि, राजसकर्तासोय ॥२७॥

हे अर्जुन ! जो स्त्रीपुत्रादिकोंमें स्नेहयुक्त होकर कर्मकरनेमें आसक्त होता है, जिसे कर्मफलके प्राप्त होनेकी इच्छा है, जो लोभी है, जो औरोंका बध करने वा उनको पीडा पहुंचानेमें उत्सुक रहता है,

जो अपवित्र है; जो हर्ष और शोकसे युक्त है, वह कर्ता राजस कहाता है ॥ २७ ॥

अयुक्तःप्राकृतःस्तब्धःशठोनैष्कृतिकोऽलसः
विषादीदीर्घसूत्रीचकर्तातामसउच्यते ॥

दोहा–सबदिनरहैविवेकबिनु, सदाआलसीनित्त ॥
दीरघसोचनवैनहीं, अरु विषादयुतचित्त ॥१॥
थोरेदिनके कामको, बहुत लगावे वार ॥
ताहीसों सबकहत हैं, यहतामसनिरधार॥२८॥

हे अर्जुन ! जो शास्त्रोक्त विधियोंमें असावधान होता है विवेकसे रहित होता है, स्तब्ध अर्थात् किसीसे नम्र नहीं होता है, जो शठ होता है जो औरोंका अपमान करनेवाला होता है, आलस्यसे युक्त होता है शोकसे भराहुआ रहता है और जो कामको यथासमय न करके समयका टाला करता है वह कर्ता तामस कहाता है ॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदंधृतेश्चैवगुणतस्त्रिविधंशृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेणपृथक्त्वेनधनंजय ॥

दोहा–बुधिअरुधीरजतीनविधि, होतजुगुनकेभाय॥
न्यारोन्यारोसबकहत, हौंअबतुह्मैंसुनाय ॥२९

हे धनंजय ! सात्विक, राजस और तामस इन तीनों गुणोंके कारण बुद्धि और धृतिके भी तीन भेद हैं इनको मैं पूर्ण रीतिसे भिन्न २ कहताहूं उन्हें सुन ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचकार्याकार्येभयाभये ॥
बंधंमोक्षंचयावेत्तिबुद्धि:सापार्थसात्विकी

दोहा—काजअकारजभयअभय, औरप्रवृत्तिनिवृत्ति
जानैबंधनमुक्तिजो, सात्विकबुधिकीवृत्ति ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! जो बुद्धि कर्तव्य कर्मोंमें प्रवृत्ति और अकर्त्तव्य कर्मों में निवृत्तिको जानती है, कार्य और अकार्यको जानती है, भय और अभयको जानती है, तथा बंध और मोक्षको जानती है वह सात्विकी बुद्धि है ॥ ३० ॥

ययाधर्ममधर्मंचकार्यंचाकार्यमेवच ॥
अयथावत्प्रजानातिबुद्धि:सापार्थराजसी॥

दोहा—धर्मअधर्मनिकोलखै,काजअकारजजानि॥
जैसेहैं तैसेनहीं, बुद्धिराजसी मानि ॥ ३१ ॥

हे पार्थ ! जिस बुद्धिद्वारा धर्म, अधर्म और कार्य अकार्यका यथावत् ज्ञान नहीं होता है वह बुद्धि राजसी कहाती है ॥ ३१ ॥

अधर्मंधर्ममितियामन्यतेतमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्चबुद्धि,सापार्थतामसी

दोहा—जानैंपापहिपुण्यकारि दंभअज्ञानीहोय ॥
लखैअर्थविपरीतसम, बुद्धितामसीसोय ॥३२॥

हे अर्जुन ! अज्ञानरूप अंधकारसे ढकीहुई जो बुद्धि कर्मको अधर्म समझती है और संपूर्ण वस्तुओंको उलटा समझती है वह तामसी कहाती है ॥ ३२ ॥

धृत्यायया धारयतेमनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्विकी

दोहा-जासों इंद्रीरोकिके, एजुक्रियाअरुमान ॥
योगयुगतनिहचलमहा, धीरजसात्विकजान ॥

हे पार्थ ! जो अव्यभिचारिणी अर्थात् किसी और वस्तुपर न ल-लचानेवाली धृति एकाग्रतासे मन, प्राण और इन्द्रियोंके कर्मोंको धारण करती है वह सात्विकी धृति कहाती है ॥ ३३ ॥

ययातुधर्मकामार्थान्धृत्याधारयतेऽर्जुन ॥
प्रसंगेनफलाकांक्षीधृतिःसापार्थराजसी ॥

दोहा-धर्मअर्थअरुकामको, जोधारतचितचाय ॥
चाहैफलहिप्रसंगसों, धीरजराजसभाय ॥३४॥

हे अर्जुन ! फलकी इच्छा करनेवाला फलप्रसंगसे जिस धृतिके द्वारा धर्म, अर्थ और कामको धारण करता है वह धृति राजसी कहाती है ॥ ३४ ॥

यथास्वप्नंभयंशोकंविषादंमदमेवच ॥
नविमुंचतिदुर्मेधाधृतिःसापार्थतामसी ॥

दोहा-जोभयशोकविषादमद,सुपनमांहिठहरानि
दुष्टबुद्धिछांडैनहीं, धृतिजुतामसीजानि ॥ ३५॥

हे अर्जुन ! जिस धृति द्वारा अज्ञानी पुरुष स्वप्न, भय, शोक, वि

षाद और मदको छोडते नहीं किन्तु ग्रहण करते है वह धृति तामसी कहाती है ॥ ३५ ॥

सुखंत्विदानींत्रिविधंशृणुमेभरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमतेयत्रदुःखांतंचनिगच्छति ॥

दोहा–अबअर्जुनमोंपैसुनो, सुखकेतीनप्रकार ॥
जाकेअभ्यासहिकिये, दुखकोहोइ निवार॥३६

हे भरतर्षभ ! अब मैं तीन प्रकारके सुखोंको कहताहूं इस सुखका अभ्यासकरनेसे बडा आनंद होताहै और दुःखका नाशभी होजाताहै

यत्तदग्रेविषमिवपरिणामेऽमृतोपमम् ॥
तत्सुखंसात्त्विकंप्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्

दोहा–पहिलेतोविषसौलगै,बहुरिअमृतसोजोय ॥
सोसुखसात्विकहैकह्यौ. बुद्धिप्रसादतेहोय ३७॥

हे अर्जुन ! जो सुख पहिले विषके समान लगता है, और परिणाममें अमृतके समान सुखदायी होता है वह आत्मबुद्धिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न हुआ सुख सात्विक कहाता है ॥ ३७ ॥

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामेविषमिवतत्सुखंराजसंस्मृतम् ॥

दोहा-इंद्रियविषयसंयोगसुख, पहिलेअमृतसमान
पाछेजोविषसौलगै, सोराजससुखमान ॥३८॥

हे अर्जुन ! इन्द्रियगण और विषयोंके संयोगसे उत्पन्न हुआ सुख प्रथम अमृतके समान होताहै और परिणाममें विषके समान होता है उसे राजसी सुख कहते हैं ॥ ३८ ॥

यदग्रेचानुबन्धेचसुखंमोहनमात्मनः ॥
निद्रालस्यप्रमादोत्थंतत्तामससमुदाहृतम्॥

दोहा–पहिलेअरुपाछेसुखद, मोहितकरैजुदेह ॥
आलसनिद्रातेंउठै,तामसकहियेएह ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! जो सुख आगे और परिणाममें भी आत्माको मोहता है तथा निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न होता है उसे तामसी सुख कहते हैं ॥ ३९ ॥

नतदस्तिपृथिव्यांवादिविदेवेषुवापुनः ॥
सत्वंप्रकृतिजैर्मुक्तंयदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः

दोहा–सोपुहिमीमेंनहिंकछू, सुरमेंअरुआकाश ॥
सत्वजुइनतीन्योगुनानि, बँध्योनिमायापास ॥

हे अर्जुन ! जो प्राणी प्रकृतिसे उत्पन्न सत्वादि इन तीनों गुणोंसे निर्मुक्त हो ऐसा न तो कोई पृथ्वीमें है न स्वर्गमेंहै न देवताओंमेंहै

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणां च परंतप ॥
कर्माणिप्रविभक्तानिस्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

दोहा–द्विजक्षत्री अरु वैश्यको, औरशूद्रकोकर्म ॥
निजस्वभावगुणसोंभयो, न्यारेन्यारेधर्म ४१

हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारोंके कर्म प्रकृतिसे उत्पन्न सत्वादि गुणोंके कारण पृथक् पृथक् बनाये गये हैं ४१

शमोदमस्तपःशौचंक्षांतिराजर्वमेवच ॥
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यंब्रह्मकर्मस्वभावजम्

दोहा–शमअरुदमतपशौचपुनि, क्षमानम्रताभाव
आस्तिकज्ञान विज्ञानयह, ब्रह्मज कर्मस्वभाव

अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके स्वभावसे उत्पन्न अलग कर्मोंका वर्णन करते हैं–हे अर्जुन ! शम (मनका निग्रह). दम बाह्येन्द्रियोंकी शान्ति,) तप (शारीरिक तपस्या), शौच (अन्तःकरणकी पवित्रता), क्षान्ति(क्षमा), आर्जव (नम्रता) ज्ञान (शास्त्रज्ञान), विज्ञान (अनुभवसे उत्पन्न ज्ञान) और आस्तिक्य (परलोकादिमें सत्यबुद्धि) ये सब ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४२ ॥

शौर्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यंयुद्धेचाप्यपलायनम्
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रंकर्मस्वभावजम् ॥

दोहा–शूरतेजधीरजचतुर, युद्धमांहिनपलाय॥
ठकुराईरुउदारता, क्षत्रीकर्मसुभाय ॥ ४३ ॥

शौर्य (शूरवीरता), तेज, धीरज, चतुराई, युद्धसे न भागना, दानदेना और ईश्वरभाव (प्रजाको नियमबद्ध रखनेके लिये दंड आदि देनेकी शक्ति) ये सब क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म हैं ॥४३॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम्
परिचर्यात्मकंकर्मशूद्रस्यापिस्वभावजम्

दोहा–लगनिबुद्धिकहुनाकरै, जीतेमनतजिआस॥
परमसिद्धिनहिंकर्मकी, पावैकरिसंन्यास ४९॥

हे अर्जुन ! जिसकी बुद्धि किसी वस्तुमें आसक्त न हो, जिसको किसी प्रकारका अहंकार नहींहै, जिसकी कर्मफलसे स्पृहा दूर होगई है, ऐसा पुरुष त्यागरूप संन्याससे निष्कर्म अर्थात सब कर्मोंसे निवृत्तिरूप सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥

सिद्धिंप्राप्तोयथाब्रह्मतथाप्नोतिनिबोधमे ॥
समासेनैवकौंतेयनिष्ठाज्ञानस्ययापरा ५०

दोहा–सिद्धिपायपरब्रह्मको, जैसेपावैसार ॥
कह्योजुहौंसंक्षेपसों, निष्ठाज्ञानअपार ॥ ५० ॥

हे कौन्तेय ! जो निष्कर्मरूप सिद्धिको पाकर जिस तरह ब्रह्मको प्राप्त होता है सो मैं संक्षेपसे कहताहूं तू सुन, यह ईश्वरीय ज्ञानकी परानिष्ठा है ॥ ५० ॥

बुद्ध्याविशुद्धयायुक्तोधृत्यात्मानंनियम्यच ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वारागद्वेषौव्युदस्यच

दोहा–युक्तरहैशुधिबुद्धिमें, धीरजसोंनिरधार ॥
शब्दआदिविषयनतजै, रागद्वेषकोंमार ॥५१॥

जिस प्रकार ब्रह्मकी प्राप्ति होती है सो कहते हैं कि हे अर्जुन! जो पुरुष सात्विकीबुद्धिसे युक्तहै, जिसने धृति अर्थात धारणासे अपनी आत्माको वशीभूत कर लियाहै, शब्दरूप रसादिक विषयोंका परित्याग करदिया है और राग और द्वेष दूर कर दिये हैं वही ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

विविक्तसेवीलध्वाशीयतवाक्कायमानसः
ध्यानयोगपरोनित्यंवैराग्यंसमुपाश्रितः ॥

दोहा—रहैदुर्योएकांतमें, लघुभोजनमनजीति ॥
ध्यानयोगअंतरसदा, वहवैरागकिरीति ॥५२॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष एकान्तमें वास करता है, थोडा भोजन करताहै, जिसने वाणी, काया और मन वशमें कर रक्खे हैं, जो नित्य ही ध्यान योगमें तत्पर रहता है और मनमें दृढ वैराग्य रखताहै वही ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥

अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंपरिग्रहम् ॥
विमुच्यनिर्ममःशांतोब्रह्मभूयायकल्पते ॥

दोहा—क्रोधपरिग्रहकामबल, दर्पऔरअहँकार ॥
ममतातजिनिर्मलरहै, शांतिब्रह्ममयसार ॥५३

हे अर्जुन ! जो अहंकार, बल (अपना पराक्रम), दर्प, काम, क्रोध, वस्तुओंका संग्रह इन सबको छोड ममताको त्याग शान्तचित्त होजाता है वही ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

ब्रह्मभूतःप्रसन्नात्मानशोचतिनकांक्षति ॥
समःसर्वेषुभूतेषुमद्भक्तिंलभतेपराम् ॥

दोहा—ब्रह्मजुभयोप्रसन्नमन, शोचनकरैनचाह ॥
सबजीवनकोसमलखै, पावैभक्तिप्रवाह ॥५४॥

हे अर्जुन ! जो ऊपर कहे हुए तीनों श्लोकोंके भावानुसार ब्रह्ममें

निश्चलचित्त रहता है, मनको प्रसन्न रखताहै, न किसी गई वस्तुका शोच करता है, न किसी वस्तुकी इच्छा करता है और संपूर्ण प्राणियोंमें समबुद्धि रखता है वही मेरी परमोत्तम भक्तिको पाता है ॥

भक्त्यामामभिजानातियावन्यश्चास्मितत्त्वतः
ततोमांतत्त्वतोज्ञात्वाविशतेतदनंतरम् ॥

दोहा-मोकोजानोभक्तिकरि, जितनौंहौंजिहिंभाय
मोहिजानिकैतत्वसौं, ब्रह्मरूपह्वैजाय ॥ ५५ ॥

हे अर्जुन ! उस श्रेष्ठ भक्तिद्वारा मेरे सर्वव्यापी रूपका प्रमाण और मेरे सच्चिदानंदघनस्वरूपको तत्वसे जानताहै,इस तत्वज्ञानके उत्पन्न होनेपर फिर मुझमें प्रवेश होता है अर्थात् मेरे परमानंद रूपको प्राप्त होजाता है ॥ ५५ ॥

सर्वकर्माण्यपिसदाकुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः॥
मत्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वतंपदमव्ययम् ॥

दोहा-मोकर्मनिकोंनितकरै, मेरोआश्रयपाय ॥
मोप्रसादतेजारहै, अक्षयपदकोंजाय ॥५६ ॥

केवल मेराही आश्रयरखनेवाला पुरुष जो सदा नित्य और नैमित्तिक कर्मोंको करता भी रहता है तो भी मेरी कृपासे वह अनादि और अनन्त पदको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

चेतसासर्वकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्परः ॥
सिद्धियोगमुपाश्रित्यमच्चित्तःसततंभव ॥

दोहा–मनसोंमोमेंकर्मधरि, मोतत्परताळेय ॥
बुद्धियोगकोंसेइकै, मोहीमेंचितदेय ॥ ५७ ॥

हे अर्जुन ! इससे अपने मनको मुझमें लगाकर सावधानहो, सब कर्मोंको मुझमें अर्पणकर ज्ञानयोगका आश्रय ले निरन्तर अपना चित्त मुझमें स्थिर करदे ॥ ५७ ॥

मच्चित्तःसर्वदुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथचेत्त्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनंक्ष्यसि ॥

दोहा–मोप्रसादतेंदुखसबै, तरिजैहैनिरआस ॥
अहंकारतेंबिनुसुनें, लहियेतूजुबिनाश ॥ ५८ ॥

हे अर्जुन ! जो तू अपना चित्त मुझमें लगायो रक्खेगा। तो मेरी कृपासे इस संसारके दुःखोंसे तरजायगा और जो तू अहंकारके कारण मेरी शिक्षा न मानेगा तो तू नष्ट होजायगा ॥ ५८ ॥

यदहंकारमाश्रित्यनयोत्स्यइतिमन्यसे ॥
मिथ्यैषव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति

दोहा–लरौंनहींतूजोकहत, अहंकारको मानि ॥
यहतुवनिश्चैझूठहै, प्रकृतिकरावतआनि ॥ ५९ ॥

जो तू अहंकारका आश्रय लेकर यह समझताहै कि मैं युद्ध न करूंगा, यह तेरा व्यवसाय मिथ्या है (ऐसातो होही नहीं सकता), तेरा जातिस्वभावही तुझे युद्धमें प्रवृत्त करावेगा ॥ ५९ ॥

स्वभावजेनकौंतेयनिबद्धःस्वेनकर्मणा ॥
कर्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपितत

दोहा–अर्जुनअपनेकर्मसो, तूबांध्योहैनित्त ॥
करयोनचाहेमोहतें, परवशकरिहौचित्त ॥६०॥

हे अर्जुन ! जिस कामको तू अज्ञानसे नहीं करना चाहता है वही कर्म तुझको परवश होकर करना पडेगा, क्योंकि तू अपने स्वभावजन्य क्षत्रियधर्मसे बंधा हुआ है ॥ ६० ॥

ईश्वरःसर्वभूतानांहृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया ॥

दोहा–ईश्वरसबकेहीयमें, अर्जुनरहतसमूढ ॥
जीवभ्रमावतुहैसदा, करिमायाआरूढ ॥ ६१॥

हे अर्जुन ! ईश्वर संसाररूपी चक्रपर बैठेहुए संपूर्ण प्राणियोंको अपनी मायासे घुमाता हुआ उनके हृदयमें निवास करता है ॥६१॥

तमेवशरणंगच्छसर्वभावेनभारत ॥
तत्प्रसादात्परांशांतिंस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम्

दोहा–होहुसदावाकीशरन, अर्जुनतूममभाय ॥
अविनाशीथिरशांतिपद, ताप्रसादतेपाय ६२॥

हे भरतवंश, अर्जुन ! सब प्रकारसे तुम उसी ईश्वरकी शरणमें जाओ उसीके अनुग्रहसे तुमको परमशान्ति प्राप्ति होगी और अविनाशी पदको प्राप्त होओगे ॥ ६२ ॥

इतिते ज्ञानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥
विमृश्यैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ६३॥

दोहा–ज्ञानकह्योतोसोंजुमैं. जोजनप्रगटजुनाहिं ॥
जोजानैंसोईजुकरि, धरिबिचारजियमाहिं६३

हे अर्जुन ! यह गुप्तसेभी गुप्त ज्ञान मैंने तुझको सुनाया है इन सबको अच्छी तरह सोच विचारकर जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर॥

सर्वगुह्यतमंभूयःशृणुमेपरमंवचः ॥
इष्टोऽसिमेदृढमतिस्ततोवक्ष्यामितेहितम्

दोहा–जोकछुहैसबतेपरे, परमबचनसोमानि ॥
तूदृढबुद्धीमित्रमम, ताहितकहौंबषानि ॥६४॥

हे अर्जुन ! और भी एक अत्यन्त गोपनीय बात कहताहूं उसे सुन, तू मुझको अत्यन्त प्याराहै इसीसे तेरी भलाईके लिये कहताहूं॥

मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु॥
मामेवैष्यसिसत्यंतेप्रतिजानेप्रियोऽसिमे॥

दोहा–मोकोंयजतूसत्ययह, नमिमोमेंमनराषि ॥
अंतसमैंहोमोहिमैं, प्यारेतुमयहसाषि ॥ ६५ ॥

हे अर्जुन! तू मुझहीमें चित्त लगा,मेरीही भक्ति कर,मेराही पूजन कर,मुझीको नमस्कार कर,जो तू ऐसा करैगा तो मुझीमें आकर मिलजायगा तू मेरा प्यारा है इससे मैं सत्य प्रतिज्ञाकरके कहताहूं६५॥

दोहा–सबधर्मनिकोंत्यागिकें, मोसरनहितूआय
दूरिकरोंसबपापकों, शोकतजोयाभाय ॥६६॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण विधि विधान और धर्मोंको छोडकर एक मेरी शरणमें आ, मैं तुझे संपूर्ण पापोंसे मुक्त करदूंगा जो तेरे मनमें यह शोच है कि अब इनके मारनेका पाप लगेगा इसका भी शोच मत कर, मैं तेरे सब पाप दूरकर दूंगा ॥ ६६॥

इदंतेनातपस्कायनाभक्तायकदाचन ॥
नचाशुश्रूषवेवाच्यंनचमांयोऽभ्यसूयति ॥

दोहा–जाकेतपनहिंभक्तिनहिं, औरशुश्रुषानाहिं ॥
तासें तूयहजनिकहे, जेमोद्वेषीआंहिं ॥ ६७॥

हे अर्जुन ! जो ज्ञान मैंने तुझे सुनाया है वह ऐसे आदमियोंसे कहे जानेके योग्य नहीं है जो तपस्वी नहीं है, मेरा भक्त नहीं है, जो ईश्वरकी शुश्रूषा नहीं करता है और जो मेरी निन्दा करता है ॥६७॥

यइदंपरमंगुह्यंमद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिंमयिपरांकृत्वामामेवैष्यत्यसंशयः

दोहा–मो भक्तनसोंजोकहै, परमदुरयोयहज्ञान ॥
सोमेरीभक्तिहिलहै, मोमेंरहेनिदान ॥ ६८॥

हे अर्जुन ! जो इस अत्यन्त गोपनीय ज्ञानको मेरे भक्तोंको सुनावैगा वह मेरी परम भक्ति पाकर अन्तमे निश्चयही मुझमें लीन होजायगा ॥ ६८ ॥

नचतस्मान्मनुष्येषुकश्चिन्मेप्रियकृत्तमः
भवितानचमेतस्मादन्यःप्रियतरोभुवि ॥

दोहा—मोकोंप्यारेबहुतवह, हौंप्यारोहूंताहि ॥
वहमनुरापैजीयमें, हौंरापौंहियमांहि ॥६९॥

हे अर्जुन ! जो गीताका उपदेश करता है वे मनुष्योंमें उससे अधिक मेरा कोई प्रिय करनेवाला नहीं है और न पृथ्वीमें उससे अधिक कोई प्यारा होगा ॥ ६९ ॥

अध्येष्यतेचयइमंधर्म्यंसंवादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेनतेनाहमिष्टःस्यामितिमेमतिः॥

दोहा—धर्मवादजोहमकियो, पढैजोकोऊजानि ॥
ज्ञानजज्ञतिनहोंजज्यो, यहमेरोमतमानि७०॥

हे अर्जुन ! जो कोई हमारे तुह्मारे इस धर्मसंबन्धी संवादको पढैगा वह ज्ञानयज्ञद्वारा मेरा यजन करैगा यही मेरा मत है ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयश्चशृणुयादपि योनरः ॥
सोऽपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्

दोहा—श्रद्धायुतदूषनविना, याहिसुनैजोकोय ॥
पुण्यवंतलोकनिलहै, मुक्तजुताकोंहोय ॥७१॥

हे अर्जुन ! जो कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक गीताको पढताहै और निन्दक नहीं है वह मुक्त होकर उन शुभलोकोंको जाता है जहां पुण्य करनेवाले रहते हैं ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतंपार्थत्वयैकाग्रेणचेतसा ॥
कच्चिदज्ञानसंमोहःप्रणष्टस्तेधनंजय ७२

दोहा–चित्तएकहीह्वैसुन्यौं, तैंअर्जुनयहधर्म ॥
मिथ्यौमोहअज्ञानको, औरछुटैचितभर्म ॥७२॥

हे पार्थ! जो उपदेश मैंने तुझे दिया है वह तैंने एकाग्रचित्तसे सुना है वा नहीं? और हे धनंजय! इसके सुननेसे तेरा अज्ञानजन्य मोह दूर हुआ वा नहीं? ॥ ७२ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

नष्टोमोहःस्मृतिर्लब्धात्वत्प्रसादान्मयाच्युत
स्थितोऽस्मिगतसंदेहःकरिष्येवचनं तव ॥

दोहा–मोहगयोआईसुरति, एहोश्रीभगवान ॥
गयोदूरसंदेहअब, तुमआज्ञापरधान ॥७३॥

यह सुन अर्जुन कहने लगा कि हे अच्युत! आपके अनुग्रहसे मेरा मोह जाता रहा है. ज्ञान प्राप्त होगया है और अब मुझे किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहा है अब मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूंगा

॥ संजय उवाच ॥

इत्यहंवासुदेवस्यपार्थस्यचमहात्मनः ॥
संवादमिममश्रौषमद्भुतंरोमहर्षणम् ७४॥

दोहा–हरिअर्जुनकीबातए, सुनीजुमैंयाभाय ॥
अचरजरूपअनूपअति, रोमहर्षचितचाय ७४

अब संजय कहता है कि हे धृतराष्ट्र ! मैंने महात्मा वासुदेव और अर्जुनका यह अद्भुत संवाद सुना, इसके सुननेसे शरीर रोमांचित होरहा है ॥ ७४ ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहंपरम् ॥
योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयम्

दोहा–परमदुर्‍योमतयहजुहौं,सुन्यौंव्यासपरसाद
योगीश्वरश्रीकृष्णजू, निजमुखकियोबिवाद॥

हे धृतराष्ट्र !-व्यासजीकी कृपासे साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके स्वयं मुखसे निकलते हुए इस परम गोपनीय योगको मैंने सुना ॥ ७५ ॥

राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्यसंवादमिममद्भुतम्
केशवार्जुनयोःपुण्यंहृष्यामिचमुहुर्मुहुः ॥

दोहा–बारबारसुमिरतजुहौं,वासंवादहिराज ॥
हर्षहोतमोकोमहा, अतिपवित्रकेसाज ॥७६॥

हे राजन् ! केशव भगवान् और अर्जुनके इस परम अद्भुत और पुण्यकारक संवादको स्मरण करकरके बार बार हर्षित होताहूं और मेरे रोमांच खडे होते हैं ॥ ७६ ॥

तच्चसंस्मृत्यसंस्मृत्यरूपमत्यद्भुतंहरेः ॥
विस्मयोमेमहान्राजन्हृष्यामिचपुनःपुनः

दोहा–अद्भुतरूपश्रीकृष्णको,सुमिर२ हौंताहि ॥
हर्षहोत मे ~ विस्मयमानतवाहि॥

हे राजन्! भगवान्के उस अद्भुत विश्वरूपका स्मरण करकरके मुझको बडा विस्मय होताहै और हर्षके मारे बार बार मेरे रोम खडे हुये आते है ॥ ७७ ॥

यत्रयोगेश्वरःकृष्णोयत्रपार्थोधनुर्धरः ॥
तत्रश्रीविजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥

दोहा–योगीश्वरश्रीकृष्णजू,अर्जुनहैजाठौर ॥
तहांविजयअरुनीतिहै, राजसंपदाऔर॥७८॥
कृष्णकृपातेंहोतहै, भक्तियुक्तकोध्यान॥
तातेबंधनतैंछुटै, यहगीतारथजान ॥ १ ॥
इहिंअठराअध्यायमें, कह्योमोक्षसंन्यास॥
अर्जुनसोंश्रीकृष्णजू,जानिआपनोदास ॥ २ ॥
कह्योमोक्षसंन्यासजो, कृष्णकमलदलश्याम ॥
उरमेंधरिगिरिधरनको, वरन्योआनंदराम ॥३॥
यहगीताअद्भुतपरम, श्रीमुखकियोवषान ॥
वारवारनिरधारकिय, पराभक्तिकोज्ञान ॥ ४ ॥
भक्तिवश्यश्रीकृष्णजू, यहैकरीनिरधार ॥
भक्तिकरोबहुभांतिसो, यहैवेदकोसार ॥५ ॥
भगवद्गीताकोउपढै, औरसुनैचितलाय ॥
पावैभक्तिअखंडसो, श्रीहरिसदासहाय ॥ ६ ॥
गीताप्रतिदिनउच्चरै, सदास्वच्छमनमाहिं ॥
मनसावाचाकर्मणा, तिनसमकोऊनाहिं ॥ ७ ॥

॥ विविध रागरानियो भजन भक्तिसागर. । राग देवगंधार (१) ॥

मनुवाँ रामके व्यौपारी । अबकेखेप भक्तिकी लादी वणिज कियो तें भारी ॥ पांचों चोर सदा मगरोकत इनसोंकर छुटकारी । सतगुरुनायकके संगमिलिचलहूकस केनहिंरी ॥ दो ठग मारगमाहिं मिलेंगे एक दानक एक नारी ॥ जबघाकौं पेच न लइयो रहियोआप संभारी हरिके नगरमें जा पहुंचोगे पैहो लाभ अपारीचरणदास तोकों समझावै ये मनवौरवारी ॥ १ ॥

(२) रागआसावरी ।

साधो भक्ति नफा कारलीजे । दिन २ काया छीजे ॥ मदन तजै तोवधुरामनमें कपट तजै तो कासी । और तीर्थ सब ही जगन्हाया नाहिं छुटी यमफांसी ॥ भाक्तिके तिरवेणी।जे बिरले जन कोई न्हावें । सुठरा हे।यसो नित उकि परसो निठुरा जान न पावें ॥ कायामंदिरमें हरि कहिये वेद पुराण बतावें । इत उत भूले लोग फिरत हैं धोखेको शिर नावैं ॥ यंतर टोना मूढ हलावन ताकूं सौन न मानो । तजिके सार असार गह्यो है तापर भयो सयानो ॥ चरणदास शुकदेव कहत हैं निजकरि मूल गहीजे । पारब्रह्म जिन सृष्टि उपाई ता ओरी चित दीजे ॥ २ ॥

(३) राग कल्याण ।

सतगुरु पांचों भूत उतारो । जन्म २ के लागे हि आये दे मंतर अब तिन्हें विडारो । काम क्रोध मोह लोभ गर्व नें मन बौराय कियो अघ भायो जिनके हाथ पां त्रिय मेरो घेरी घेरा बहुत दुख पायो ॥ एकघरी मोहि छाडत नाहीं लहरि चढाय के बहुत तिवावो । कपि ज्यों घर २ द्वार नचावें उत्तम हरिको नाम छुटावो ॥ अबके शरण गही है तुम्हरी चरणहिंदास अजाने । किरपा करि यह व्याधि छुटावो गुरु शुकदेव सयाने ॥ ३ ॥

(४) राग विलावल ।

प्रभुजी शरण तिहारी आयो । जो कोई शरण तिहारी नाहिं भर्मि२दुख पायो ॥ औरनके मन देवीदेवा मेरेमन तुहि भायो । जबसों सुरति संभारी जगमें और न शीश नवायो ॥ नरपति सुरपति आश तिहारी यह सुनकर मैं धायो । तीरथ बरत सकल फल त्यागे चरणकमल चित लायो ॥ नारदमुनि अरु शिव ब्रह्मादिक तेरो ध्यान लगायो ॥ अब हरि क्यों न गहो बांह मेरी तुम काहे विसरायो । चरणदास कहें करता तू हो गुरु शुकदेवबतायो ॥ ४ ॥

(५) राग रामकली–

चारि वरणसों हरिजन ऊँचे । भये पवित्र हरिके सुमिरे तनके के सूचे ॥ जो न पतीजै साखि बताऊं शबरीके झूंठे फल खाये । बहुत कर्मी होई रहने तिनके घर रघुपति नाहिं आये ॥ भीलनी पाव दियो सरितामें शुद्धभयो जल सब कोई जाने । मंद हतो सो निर्मल हुओ अभिमानी नर खिसाने ॥ ब्राह्मण क्षत्री भूपहुते बहु ना बो शंख श्वपच जब आयो । वाल्मीकि मर्कीन्हा जग२ कारभगोपरा गाया ॥ जातिवरण कुलसोई नीको जाके सो परकाशा । गुरु शुकदेव कहत है तो को हरिजन चरणदासा ॥ ५ ॥

इति विचार दर्पण अ दर्शन समाप्त.

॥ विविध रागरानियों भजन भक्तिसागर. ।-राग देवगंधार (१) ॥

मनुवाँ रामके व्योपारी । अबकेखेप भक्तिकी लादी वनिज कियो तैं भारी ॥ पांचों चोर सदा मगरोकत इनसोंकर छुटकारी । सतगुरुनायकके संगमिलिचलकुमस कैंनहिंरी ॥ दो ठग मारगमांहिं मिलेंगे एक कनक एकनारी॥सावधानहो पेच न सहयो रहियोआप संभारी हरिके नगरमें जा पहुंचोगे पैहो लाभ अपारी चरणदास तोको समझावे ये मनवाँरवारी ॥१॥ (२) रागआसावरी ।

साधो भक्ति नफा कारलीजे । दिन २ काया छीजे ॥ मदन तजे तोमथुरामनमें कपट तजे तौ कासी । और तीर्थ सब ही जगन्हाया नाहिं छुटी यमफांसी॥भालतले तिरवेणी।।जे बिरले जन कोई न्हावे । सुगुरा होयसो नित उठि परसे निगुरा जान न पावे ॥ कायामंदिरमें हरि कहिये वेद पुराण बतावें । इत उत भूले लोग फिरत हैं धोखेको शिर नावें ।. यंतर टोना मूड इलावन ताकूं सौंच न मानों । तजिके सार असार गह्यो है तापर भयो सयानों ॥ चरणदास शुकदेव कहत हैं निजकरि मूल गहीजे । पारब्रह्म जिन सृष्टि उपाई ता ओरी चित दीजे ॥ २ ॥

(३) राग कल्याण ।

सतगुरु पांचों भूत उतारो । जन्म २ के लागे हि आये दे मंतर अब तिन्हें विडारो । काम क्रोध मोह लोभ गर्व नें मन बौराय कियो अप भायो जिनके हाथ परो जिय मेरो घेरी घेरा बहुत दुख पायो ॥ एकघरी मोहि छाडत नाहीं लहरि चढाय के बहुत नचावो । कपि ज्यों घर २ द्वार नचावे उत्तम हरिको नाम छुटावो ॥ अबके शरण गही है तुह्मरी चरणहिंदास अजाने । किरपा करि यह व्याधि छुटावो गुरु शुकदेव सयाने ॥ ३ ॥

(४) राग विलावल ।

प्रभुजी शरण तिहारी आयो । जो कोई शरण तिहारी नाहिं भर्मि२दुख पायो॥ औरनके मन देवीदेवा मेरेमन तुहिं भायो । जबसों सुरति संभारी जगमें और न शीश नवायो ॥ नरपति सुरपति आश तिहारी यह सुनकर मैं धायो । तीरथ बरत सकल फल त्यागे चरणकमल चित लायो ॥ नारदमुनि अरु शिव ब्रह्मादिक तेरो ध्यान लगायो ॥ अब हरि क्यों न गहो बांह मेरी तुम काहे विसरायो । चरणदास कहें करता तू ही गुरु शुकदेवबतायो ॥ ४ ॥

(५) राग रामकली–

चारि वरणसों हरिजन ऊँचे । भये पवित्र हरिके सुमिरे तनके उज्वल मन के सूचे ॥ जो न पतीजै साखि बताऊं शबरीके झूंठे फल खाये । बहुत ऋषीश्वर हांई रहते तिनके घर रघुपति नहिं आये ॥ भीलनी पाव दियो सरितामें शुद्धभयो जल सब कोई जाने । मंद हतो सो निर्मल हुओ अभिमानी नर भये सिवाने ॥ ब्राह्मण क्षत्री भूपहुते बहु बाजो शंख श्वपच जब आयो।बाल्मीकि यज्ञपूरणकीन्हो जय२ कारभगोयश गायो ॥ जातिवरण कुलखोई नीको जाके यो भक्ति परकासा । गुरु शुकदेव कहत हैं तो को हरिजन सेवचरणही दासा ॥ ५ ॥

इति विचार दर्पण अ.ठवाँ दर्शन समाप्त.

जाहिरात

पांडवगीता मूल —) तथा भाषाटीका	
अवधूतगीता भाषाटीका-	।)
सत्यबोध-भाषाटीका—	≡)
योगवशिष्ठ सम्पूर्ण भाषाटीकासहित मूल्य२०)	
योगवशिष्ठ गुटका भाषामें मूल्य	॥)
एकादश-स्कंध दोहा चौपाई चतुरदास	१)
अध्यात्मप्रकाश भाषा	≡)
सुन्दर विलास सुन्दरदासकृत	।=)
ज्ञानसमुद्र सुन्दरदासकृत	।)
तत्त्वविज्ञान भाषाटीक —	≡)

धर्मशास्त्र ग्रंथः

मनुस्मृती-भाषाटीकावडीमलेज३।) रफकार॥)	
व्रतराजमूल-मात्र रफ	२)
व्रतराजभाषाटीका छपकर तैयारहै	
लगेच ७) रफका	६)
शौचनिर्णय मूल्य	=)
तिथि निर्णयमूल =॥ तथा भाषा टीका	।)

योग मार्ग ग्रंथाः

शिवस्वरोदय भाषाटीका	।≡)
स्वरोदयसार चरणदासकृत	≡)
योगसरोदय	=)
ब्रह्मवेध—जिससेब्रह्मबोधहोता	॥)

पुराण ग्रंथाः

भागवत मूलमंत्रखुलेपत्रों का	२)
भागवत भाषाटीका	१०)
दसमभाषाटीका	३॥)
भागवत माहात्म्य मूल	।≡)
गोवर्धनोद्धारणकथा भा टी.	१)
जयन्तीमहात्म्य भाषाटीका.	।≡)
एकादशी भाषाटीका	१)
चान्द्रायणव्रत कथाभाषा टीका	≡)
कार्तिक माहात्म भा टी	१)
मार्गशीर्ष भा० टीका-	≡)
वैसाखमाहात्म भ.षाटीका	१)
श्रावणमाहात्म भाषाटीका	१)
भाद्रपदमाहात्म भाषा टीका	॥)
पुरसोतम माहात्म भाषा टीका	१)
सत्यनारायण मूल ≡)तथा भाषा टीका	।)
सत्यनारायण७अध्यायमूल ≡) भाषा टीका	।)
ध्यानदीपक भाषाटीका	—)॥
केशकल्पद्रुम	।)
वैद्य, हृदय भाषा टीका	॥।)
पाकरत्नाकर-रसोई बनानेकीविधिहै।	=)
अमृतसागर-बडा कोष सहित	२)
कुटुम्बचिकित्सा	१)
अर्कप्रकाश-भाषाटीका	१)
रसराज महादधि४भाग प्रत्येकभागका	॥।)
योगचिन्तामणि-भा.टी.	१)
लोलिम्बराज-भाषाटीका	१)
पशुचिकित्सा भाषा	१)
अभिनवनिघंटु दूसराभाग	२॥)
अभिनवनिघंटुपरिशिष्ट भाग	।)
वैद्यवतंस	—)
परिक्षा चिमन	=)
चिकित्सा चिमन	=)
चिकित्सा रत्न	=)
चिकित्सा चक्रवर्ती	१)
डाकटरी-चिकित्सा	॥)
त्रिदेशी वैद्य	॥।)
युनानेके हकीम	=)
लंडनके डाक्टर	।=)

रामानुज-संप्रदायी ग्रंथाः

राम महिम्न मूल	—)॥
रामपटल पद्धति भा.टी.	।)
चौवीस गायत्री भाषा टीका	।)
सिद्धांत पटल	=)
भजन रत्नावली	१)

अनुष्ठान मंत्रग्रंथाः

माहेश्वरी-तंत्र भाषा टीका	।)
नित्यतंत्र-भाषा टीका	॥।)
रुद्री— मूल मोटे अक्षर का दाम	।)
नित्यकर्म प्रयोगमाला—ब्राह्मणों को	
अवश्यलेनाचाहिये मूल्य	।≡)